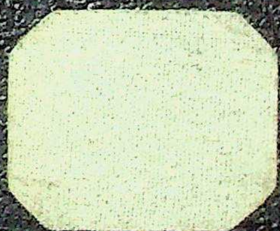
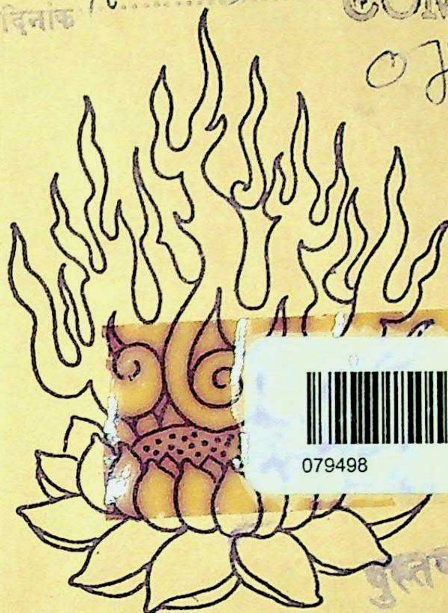
AGNISHIKHA 1983 G.K.V.





उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

जनवरी १९८३ वर्ष १३, अंक ६, पूर्णांक १५०

विषय-सूची

आपने मित्रों और बंधु-बांधवोंको नये वर्षके उपहारस्वरूप पुरोधा और अग्निशिखा भेजिये। दोनोंका आजीवन चंदा ३००.०० और एक वर्षका १८.०० है।

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता:
संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

*

There is a purpose in life — and it is the only true and lasting one — The Divine.

Turn to Him and the emptiness will go.

Blessings

जीवनका एक प्रयोजन है — और वही एकमात्र सच्चा और स्थायी प्रयोजन है — वह है भगवान्। 'उन'की ओर मुड़ो तो रिक्तता चली जायेगी।

आशीर्वाद।

— श्रीमां

संपादकीय :

वरदान

नया वर्ष हमारी दहलीजपर खड़ा मुस्करा रहा है। जिस तरह मनुष्य अपने जन्म दिवसपर परम प्रभुके अधिक निकट जा पाता है, उनसे अप्रत्याशित वरदान प्राप्त कर सकता है, उसी तरह संसारके, धरतीके नये जन्म दिवसपर हम जगत्के वासी अपने परम पितासे सच्चे दिलसे प्रार्थना करके संसार और मां धरित्रीके लिये वरदान मांग सकते हैं।

हम क्या वर मांगें? सुख? सुविधा? . . . ऐसा न हो कि हम नगण्य वस्तुओंकी मांग करके इस स्वर्णिम अवसरको गंवा दें। इस दिन भगवान् उदार हाथोंसे इस संतप्त पृथ्वीको वरदान देने आते हैं, हम अपनी मां धरतीके लिये वर मांगें। इसीमें हमारा कल्याण होगा।

हम मांके लिये शांतिकी याचना करें ताकि संसारके सब देश प्रगति कर पायें। हम सामंजस्यके लिये मांग करें ताकि प्रत्येक देशका वासी अन्य देशोंके वासियोंके साथ सहानुभूतिकी रुपहली डोरसे बंध जाय। हम सारे संसारके लिये भगवान्से उत्कट प्रेमका वरदान चाहें ताकि वह प्रेम पृथ्वीकी सुवर्ण मेखला बन जाय और मनुष्योंमें कठिनाइयोंसे जूझने और उनपर विजय पानेकी अदम्य शक्ति और साहस आये। पलायन नहीं, साहस; यही हमारा मंत्र होना चाहिये।

— अनुबेन

अपने बारेमें माताजी

दो चीजें हैं जिन्हें आपसमें मिलाना नहीं चाहिये, तुम जो हो और तुम जो करते हो यानी, तत्त्वतः, तुम जो हो और बाहरी जगत्‌में तुम जो करते हो। वे एक दूसरेसे बहुत अलग होती हैं। मुझे मालूम है कि मैं क्या हूं। और लोग जो भी सोचें या कहें या जगत्‌में चाहे कुछ क्यों न हो, वह सत्य अछूता और अपरिवर्तित तथ्य बना रहता है। वह अपने प्रति सच्चा है और जगत्‌की स्वीकृति या निषेधसे उस सद्‌वस्तुमें कुछ बढ़ता-घटता नहीं। मैं जो हूं वह होते हुए, मैं जो करती हूं वह एक और ही बात है। वह उन चीजोंके वातावरण और परिस्थितियोंपर निर्भर है जिनमें और जिनके द्वारा मुझे काम करना है। मैं जो सत्य ले आयी हूं उसे मैं जानती हूं, लेकिन उसमें से कितना इस जगत्‌में अभिव्यक्त होता है, यह स्वयं जगत्‌पर निर्भर है। मैं जो लायी हूं उसे ग्रहण करनेके लिये जगत्‌में क्षमता और संकल्प होने चाहिये। वरना मैं चाहे सबसे ऊंचा और अनिवार्य सत्य भी ले आऊं तो भी उस चेतनाके लिये उसका अस्तित्व तक न होगा जो उसे न तो पहचानती है न ग्रहण करती है। उस चेतनावाली सत्ताको इससे तनिक भी लाभ न होगा।

तुम कहोगे कि अगर वह सत्य, जिसे मैं लाती हूं, परम और सर्वशक्तिमान् है तो वह अपने-आपको स्वीकार करनेके लिये जगत्‌को बाधित क्यों नहीं करता, वह जगत्‌के विरोधको तोड़ता क्यों नहीं, वह मनुष्यसे जबरदस्ती उस शुभको क्यों स्वीकार नहीं करवाता जिससे वह इनकार करता है? लेकिन जगत् न तो इस तरीकेसे बना था और न ही वह इस तरीकेसे आगे बढ़ता और विकसित होता है। सृष्टिका मूल है स्वतंत्रता। चेतनामें एक स्वतंत्र चुनाव है जिसने अपने-आपको वस्तुगत जगत्‌के रूपमें प्रक्षिप्त किया है। यह स्वतंत्रता उसके मूलभूत स्वरूपका ठीक लक्षण है। अगर जगत् अपने परम

सत्यको, अपने उच्चतम शुभको अस्वीकार करता है तो वह अपने स्वतंत्र चुनावके आनन्दमें करता है। और अगर उसे मुड़कर उस सत्य और उस शुभको पहचानना है तो यह भी स्वतंत्र चुनावके उसी आनंदमें करना होगा। अगर कहनेपर ही भटका हुआ जगत् ठीक रास्तेपर आ जाए, अगर चीजें चुटकी भरमें चमत्कारद्वारा हो जाएं तो जगत्को बनानेका कोई अर्थ न होगा। सृष्टिका मतलब है विकासका खेल : वह देश और कालमें एक यात्रा है, सोपानों और स्तरोंद्वारा एक गति है। वह बाहरकी तरफ, अपने स्रोतसे दूर किसीकी ओर जानेवाली गति है। इसी सिद्धान्त या योजनापर वह सृष्टि खड़ी है। इस योजनामें, एक भी तत्वको अपनी स्वाभाविक गतिविधिको त्यागकर बाहरसे आनेवाली आज्ञाका पालन करनेकी कोई अनिवार्यता नहीं है। ऐसी अनिवार्यता सृष्टिके छन्द को तोड़ देगी।

और फिर भी, अनिवार्यता है। अपने स्वभावका वह रहस्यमय दबाव उसे सभी कठिनाइयोंमेंसे आगे ले जाता है और फिर, उसके मूलभूत स्रोततक वापस ले आता है। जब हम कहते हैं कि भागवत कृपा सब कुछ कर सकती है और उसे करना भी चाहिये तो हमारा मतलब ठीक इसीसे होता है। भागवत कृपा वापसी और पहचानकी प्रक्रियाको और तेज कर देती है। लेकिन यात्रा करनेवाले तत्त्व यानी, आत्माकी तरफसे सचेतन सहयोग, प्रारंभिक स्वीकृति और—निरंतर आज्ञापालनको जगाना चाहिये। यही, भौतिक स्तरपर उस शक्तिकी स्थापनामें मदद करता है जो पहलेसे ही विद्यमान है और भीतर और ज्यादा सूक्ष्म तथा ऊंचे स्तरोंपर हमेशा काम करती रही है। खेलकी यही योजना है, परिस्थितियोंकी यही पद्धति जिसमें खेल खेला जा रहा है। भागवत कृपा सचेतन और इच्छुक सहयोगियोंमें और उनके द्वारा काम करती है, मूर्त रूप लेती है। ये खुद क्रियाशील शक्तिके अंग बन जाते हैं।

मैं जिस सत्यको लाती हूं वह पृथ्वीपर अभिव्यक्त होगा और मूर्त रूप लेगा क्योंकि वह पृथ्वी और जगत्की अनिवार्य नियति है।

समयका प्रश्न असंगत है। एक दृष्टिसे मैं जिस सत्यके बारेमें कह रही हूं कि वह अभिव्यक्त किया जायगा वह पहलेसे ही पूरी तरह अभिव्यक्त हो चुका है, पहलेसे ही चरितार्थ और स्थापित हो चुका है। वहां समयका सवाल नहीं उठता। वह सनातन और शाश्वत चेतनामें सदा उपस्थित रहता है। उस सनातन संतुलन और इह-लोकके समयके संतुलनके बीच एक प्रक्रिया है, मानो अनुवादका एक खेल है। उस शून्यकी नाप बहुत सापेक्ष है, नापनेवाली चेतनाके साथ या हर एकके छोटे या बड़े मानदण्डके साथ सापेक्ष। लेकिन वह समस्याका सार नहीं है। सार यह है कि वहां सत्य क्रियाशील है, भौतिक रूप लेनेकी प्रक्रियामें है, केवल तुम्हारे अंदर उसे देखनेके लिये आंखें और उसका स्वागत करनेके लिये आत्मा होनी चाहिये।

एक शिष्यके जन्म दिनपर

'क' को मेरे आशीर्वाद सहित

मेरे प्यारे बालक, यह वर्ष तुम्हारे लिये परम अन्वेषणका वर्ष हो।[1]

(९ सितंबर, १९३७) —माताजी

मनकी अचंचलतामें, अपने हृदयमें और सब जगह परम प्रभुकी उपस्थितिके प्रति खुलो; स्थिर मन और हृदयमें भगवान् अचल जल-में सूर्यकी तरह दीखते हैं।

(९ सितंबर, १९३८) —श्रीअरविंद

दिन रात निरंतर परम उपस्थिति मौजूद रहती है।

नीरवताके साथ अंदरकी ओर मुड़ना काफी है और हम उसे पा लेते हैं।

---

[1]मूलतः फ्रेंचमें लिखा था।

इस वर्ष तुम्हारी यही अनुभूति हो।
मेरे प्यारे बालकको प्रेम और आशीर्वाद।
(९ सितंबर, १९३८) —माताजी

उच्चतर चेतनामें ऊपर उठो, उसका प्रकाश प्रकृतिका नियंत्रण और रूपांतर करे।
(९ सितंबर, १९३९) —श्रीअरविंद

भागवत प्रेम तुम्हारा लक्ष्य हो।
पवित्र प्रेम तुम्हारा मार्ग हो।
अपने प्रेमके प्रति हमेशा सच्चे रहो तो सभी कठिनाइयोंको जीत लोगे।
मेरे प्यारे बालकको प्रेम और आशीर्वाद।
(९ सितंबर, १९३९) —माताजी

हृदयके आत्मदानके द्वारा निश्चेतनामें भी परम उपस्थिति और परम प्रभाव उपस्थित होगा और वे सत्ताके सभी क्षेत्रोंद्वारा प्रकृतिको सच्चे प्रकाश और चेतनाके लिये तैयार करेंगे।
(९ सितंबर, १९४०) —श्रीअरविंद

आज तुम्हारे लिये जो वर्ष समाप्त हो रहा है वह प्रगतिका वर्ष था; जो वर्ष शुरू हो रहा है उसमें, की हुई प्रगतिको सुस्थापित, पूर्ण और समग्र बनना है।
मेरे प्यारे बालकको मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।
(९ सितंबर, १९४०) —माताजी

हमेशा अपनी आन्तरिक अभीप्सापर जोर दो; वह तुम्हारे हृदयमें गहराई और स्थिरता प्राप्त करे; हृदयके साथ-साथ उसकी अभीप्साके विकासद्वारा मन और प्राणकी बाहरी बाधाएं अपने-आप हटती जायेंगी।
(९ सितंबर, १९४१) —श्रीअरविंद

मेरे प्यारे बालक,

जब कभी तुम्हें आध्यात्मिक सहायताकी आवश्यकता हो, मैं हमेशा वह सहायता—चाहे वह कोई भी रूप क्यों न ले—देनेके लिये उपस्थित हूं।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

(९ सितंबर, १९४१) —माताजी

मन और हृदयको खुला और अंदर और ऊपरकी ओर मुड़ा रखो ताकि जब अंदरसे स्पर्श आये या ऊपरसे प्रवाह उतरे तो तुम उसे ग्रहण करनेके लिये तैयार रहो।

(९ सितंबर, १९४२) —श्रीअरविंद

मेरे प्यारे बालक,

ऐसा हो कि यह वर्ष तुम्हारे लिये सभी परिस्थितियोंमें मुस्करानेकी शक्ति लाये। क्योंकि मुस्कान कठिनाइयोंपर उसी तरह कार्य करती है जिस तरह सूर्य बादलोंपर — वह उन्हें तितर-बितर कर देती है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

(९ सितंबर, १९४२) —माताजी

प्रकाशके प्रति मुड़नेमें सतत दृढ़ताकी सबसे अधिक मांग की जाती है। हम जितना सोचते हैं, प्रकाश उसकी अपेक्षा हमारे ज्यादा नजदीक है और किसी भी क्षण उसका मुहूर्त आ सकता है।

(९ सितंबर, १९४३) —श्रीअरविंद

मेरे प्यारे बालक, यह रहा इस सालका कार्यक्रम : अपनी समग्र सत्ताको अपनी उच्चतम चेतनाके चारों ओर एक करो और अपने मनको बेतरतीबीसे काम न करने दो। संदेह कोई ऐसी क्रीड़ा नहीं है जिसे खुल खेला जाय : यह ऐसा विष है जो बूंद-बूंद करके अंतरात्माको क्षीण करता है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

(९ सितंबर, १९४३) —माताजी

भागवत कृपाके लिये अंतरात्माको तैयार रखना, ताकि जब वह आये तो अंतरात्मा उसे ग्रहण करनेके लिये तैयार रहे।

(९ सितंबर, १९४४) —श्रीअरविंद

भागवत कृपा मौजूद रहती है — अपने द्वारको खोलकर उसका स्वागत करो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

(९ सितंबर, १९४४) —माताजी

जो काम हमारे अंदर और जगत्के अंदर किया जाना है उसके लिये एक आग्रहपूर्ण संकल्प सबसे अधिक आवश्यक है। इसका निश्चित आध्यात्मिक परिणाम होता है चेतनाका विकास और भागवत प्रकाश और शक्तिके स्पर्शके लिये अंतरात्माकी तैयारी।

(९ सितंबर, १९४५) —श्रीअरविंद

ऐसा हो कि जो शांति फिरसे धरतीपर आनेकी कोशिश कर रही है वह अपने-आपको तुम्हारे हृदयमें विजयी होकर प्रतिष्ठित करे; तुम्हारे जन्मके इस दिनके लिये मैं अपने समस्त आशीर्वादके साथ यही शुभकामना कर रही हूं।[1]

(९ सितंबर, १९४५) —माताजी

प्रकृति पूरी तरह तभी मुक्त होती और ऊपरसे आनेवाले सत्यको

---

[1]मूलत: फ्रेंचमें।

प्रत्युत्तर देती है जब भागवत प्रकाश उस निश्चेतनामें प्रवेश करे जो हमारी सत्ताको घेरे रहता है और हमारे अंदर सत्य चेतनाकी अभिव्यक्तिको रोकता या सीमित बनाता है, जब वह अवचेतनामेंसे उभरनेवाले उन्हीं उद्दीपकोंके निरंतर पुनरावर्तनोंको और बारबार आनेवाली आदतोंको रोक देती है।

(९ सितंबर, १९४६) —श्रीअरविंद

अपना स्वप्न छोड़ दूंगा मैं उज्ज्वल रजत-पवनमें।
नील-स्वर्ण परिधान पहनकर ज्योति अलौकिक धारे
रूपांतरित इसी पृथ्वीपर तव मनोज्ञ, मंगलमय
धर कर देह करेंगे विचरण जीवित सत्य तुम्हारे।

"एक देवताका श्रम" (ए गाड्स लेबर) से मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

(९ सितंबर, १९४६) —माताजी

ज्ञानकी स्पष्टता और आंतरिक स्व-अंतर्दर्शन, अहंका निग्रह, प्रेम स्वार्थहीन और समर्पित कामोंमें पूर्ण सतर्कता, ये योगके रथके चार पहिये हैं। जिसके पास ये हैं यह पथपर सुरक्षित रूपसे प्रगति करेगा

(९ सितंबर, १९४७) —श्रीअरविंद

"हिय ज्वलन्तसे मेरे कुछ भी
छिपा नहीं है नीचे ऊपर;
मन अपार मम नीरवतामय;
गायन मम आनन्द सघनकी
ललित कला उत्तम रहस्यमय;
मम उड़ान इच्छा अमर्त्यकी।"[1]

---

[1]श्रीअरविंद: 'नील विहग' (ब्लू बर्ड) से।

आशा है कि एक दिन वह तुम्हारी अनुभूति होगी।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

(९ सितंबर, १९४७) —माताजी

माताजीने कहा:

उद्धारकी ओर

जैसा कि मैं बहुत बार कह चुकी हूं सृष्टि परम प्रभुका अपने-आपको स्थूल रूप देना है ताकि वे अपने-आपको देख सकें। यह करते समय — आत्म-विषयीकरण और आत्म-विभाजनके समय — वह दूर-दूर बिखर गए। एकमात्र अनन्तताने अपने-आपको अनन्त अणुओंमें बदल लिया। इतना ही नहीं, अपने-आपको दूर करते समय चेतना अपने-आप से ठीक उल्टी बन गयी। चेतना अचेतना-में परिवर्तित हो गयी, आत्मा जड़ बन गयी, आनन्द पीड़ामें बदल गया, ज्ञान अज्ञानमें और प्रकाश अंधकारमें बदल गया। असीम सर्वव्यापकता भगवान्‌का स्वरूप थी, अब वह अहंकारकी गांठोंमें उलझ गयी जिनपर यह निश्चेतन सृष्टि खड़ी है। इस पूर्ण नकार-के, अपने मूलके प्रति विश्वके इनकारके बीचों-बीच भागवत प्रेम अवतरित हुआ और वहां बस गया ताकि भटकी हुई सृष्टिको उसके खोए हुए घर तक वापस ला सके। भागवत प्रेम निश्चेतनामें उलझ गया, फंस गया, उसके साथ एक हो गया। अपनी कृपा रूप में भगवती जननी इसी तरह निश्चेतन विश्वको अपने पदार्थसे भर-पूर करके उसे फिरसे अपने मौलिक स्वरूपमें ला सकती थी। इस अवतरण या जड़ पदार्थके साथ भागवत मिलनका पहला प्रभाव या स्पष्ट चिह्न है भौतिक शरीरमें आत्मा या चैत्य तत्त्वका जन्म। जड़ भौतिकमें जड़ा हुआ, मृत दीखनेवाले कणमें वास करता हुआ

चेतनाका बिन्दु ही है जो चारों ओरकी अचेतनाके साथ अपनी क्रिया और प्रतिक्रियाके द्वारा निरन्तर रूपसे विकसित होता रहता है, और साथ-ही-साथ अपने प्रकाशको उस अंधकारमें फैलाकर उसे धीरे-धीरे अपनी मौलिक स्थितिमें परिवर्तित कर देता है।

सृष्टिका मूल है व्यष्टिकरण — अविभाजित और अविभाज्य एकमेव पुरुषसे बहुकी अभिव्यक्ति। इसका मतलब था हर एक व्यष्टिके लिये स्वतंत्रता। व्यष्टि स्वतंत्रताकी इकाई बन गया। फिर भी, तात्कालिक परिणाम बाहरी रूपसे बहुत सफल नहीं रहा। क्योंकि व्यष्टि रूप इकाईने एक ऐसा मार्ग चुना जो उसके मूलसे ठीक विपरीत था। व्यष्टिकरण ऐसा हुआ मानो अनन्त इकाईसे एक तत्त्व बाहर दौड़ पड़ा और अपनी रफ्तारमें यथासंभव दूर, दूसरे ध्रुवमें जा गिरा। इसी तरह एकमात्र आत्मा जड़ पदार्थके अनगिनत कणोंमें बदल गयी। अब सवाल पैदा हुआ भटके हुए तत्त्वोंको अपने स्रोत और मूलतक वापिस ले आनेकी समस्याका। यह घोर परिश्रमका काम था। और परम पुरुषके सिवाय दूसरेके बसका न था। और उनको धीरे-धीरे तैयारी करने, क्रमशः नसैनी चढ़ने (जिसके द्वारा सृष्टि नीची फिसल जाती थी), परिश्रमके साथ आगे बढ़ने और गुप्त उद्देश्यको प्राप्त करने, विचलन और पतनकी रक्षा करनेके लिये कई युग लग गए और अब भी लग रहे हैं। टेढ़े-मेढ़े रास्तों, लंबे सर्पिल और कठोर प्रयाणोंद्वारा क्रमविकासकी आत्मा सैंकड़ों युगोंतक परिश्रम करती रही। भागवत कृपाने इस यंत्रका उपयोग किया।

मौलिक व्यष्टि अहंका एक संकेन्द्रित बिन्दु था, जो अपनेमें पूरे तौर पर अपनेमें ही व्यस्त था। इसलिये लेन-देनकी स्थिति पैदाकी गयी ताकि जीवन्त रहनेका मतलब हो दूसरों द्वारा जीवन्त रहना। मानव समाज इसी तरह शुरू हुआ। अकेले मानव प्राणीको अपने हितके लिये ही अपने अकेलेपनसे बाहर निकलना पड़ा, एक साथी लेकर, क्रमशः परिवारका पालन-पोषण करना पड़ा। अहंकारकी वह दीवार उस हदतक तोड़ दी गयी, उसका क्षेत्र बढ़ गया। अहं-

का यह विस्तार चलता रहा — अब भी चल रहा है — और इकाई बढ़ती जा रही है। परिवारसे मानव अहं जाति तक बढ़ा और जातीय अहंसे अब राष्ट्रमें बढ़ रहा है। मौलिक व्यष्टि रूप इकाइयों की जगह ज्यादा बड़े-बड़े समूह बन रहे हैं। अब राष्ट्र भी पास-पास आ रहे हैं, एक दूसरेमें प्रवेश कर रहे हैं और बहुत-सी बातोंमें सारी मानवजाति एक ही समूहके रूपमें आगे बढ़ने लगी है। इस तरह व्यक्तिने मानवजातिकी इकाईमें अपना स्थान जान लिया है। कुछ ही समयमें उसे सारी सृष्टिको एक ही अस्तित्वके रूपमें देखना होगा जिसमें और जिसके द्वारा उसे जीना है। इस तरह विश्व अपनी मौलिक अविभाज्य एकताको फिरसे प्राप्त कर रहा है, लेकिन प्राप्त करते समय उसे कुछ लाभ हुआ है। क्योंकि अब वह मौलिक रूप रंगहीन एकता न होकर अभिव्यक्तिमें ज्यादा समृद्ध और बहुल एकता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति इससे भी परे बढ़ सकता है। अपनी व्यष्टिगत चेतनामें ही नहीं बल्कि समष्टिगत चेतनामें भी उसे मुड़कर सीधा अपनी मौलिक एकताकी ओर जाना चाहिये और अब वह जानेमें समर्थ भी है। वह स्वयं भगवान्‌के साथ सीधा संपर्क स्थापित कर सकता है, उनके साथ मिलकर ऐक्य पा सकता है जिनसे निकलकर वह भटक गया था। आरोहणके क्षेत्र उसके भीतर हैं और बाहरके उन क्षेत्रोंके साथ समस्वर हैं जिनमेंसे अपने विश्व अपने क्रमविकासमें गुजर रहा है। सृष्टिमें भागवत उद्देश्यको पूरा करनेके लिये भागवत कृपाने यही प्रक्रिया अपनायी है।

'अहम्' या 'मैं' की सबसे पहली भावना दूसरों या दूसरी चीजोंके विरोधमें अपने-आपे तक ही सीमित और बंधी रहती है। तभी व्यक्तिमें कमी का भाव आता है, और वह उन चीजोंकी मांग करता है जो उसके पास नहीं हैं। अपनी ही इच्छाके अनुसार, अपने व्यक्तिगत स्वतंत्र संकल्पका मजा लेनेके लिये वह मनुष्यों और चीजोंसे अलग हो गया है। और अब उपभोगके लिये बढ़ने और विकसित होनेके लिये, यहां तक कि जीनेके लिये भी वह उनसे सामग्री

मांगनेको बाधित होता है। इसके विपरीत अगर तुम अपने-आपको विशाल बनाओ, सबके साथ एक हो जाओ, तब तुम्हें सारी चीजें अपने अंदर ही मिलेंगी, तुम्हें बाहर जाकर उनकी खोज करनेकी जरूरत नहीं होगी, तुम्हारे अंदर कमी या आवश्यकताकी भावना नहीं होगी। किसी निश्चित उद्देश्यके लिये, या अमुक परिस्थितिमें अमुक स्थान या समय पर जिस चीजके लाने या उपयोग करनेकी आवश्यकता होगी वह उसी समय वहीं प्रस्तुत हो जाएगी। फिर भी, तुम अपने असली 'मैं' को खो नहीं बैठते। तुम्हारा 'अहं' दूसरे 'अहमों' में अपना अहं पाता है और बाकीके सभी 'अहं' उस 'अहं' में होते हैं जिसे तुम अपना-आपा समझते हो। तुम अपने पुराने अहंको, उस संकरे छोटे व्यक्तिको खो बैठते हो और उसे वैश्व तथा परात्पर अहंमें रूपांतरित कर देते हो। भगवान् हैं वह अहं और वह व्यष्टिगत व्यक्ति। वास्तवमें परम और सत्यतम अर्थमें केवल भगवान् ही वह हैं।

मधुर पावन आंसू

आत्मा जो आंसू बहाती है वे पवित्र होते हैं, मधुर होते हैं। वे भगवान्के कहने पर आते हैं और उनकी उपस्थितिसे धन्य होते हैं। वे स्वर्गसे आयी ओसके समान होते हैं। क्योंकि वे पवित्र होते हैं, सहज होते हैं और निर्दोष रूपसे स्वतंत्र हृदयसे उमड़ आते हैं। भावना एकदम निर्गुण, बिलकुल अहंरहित होती है : आत्मदेनकी, पूर्ण सरल आत्म देनकी केवल एक तीव्र गतिविधि होती है। असहायमें, जिस व्यक्तिमें बच्चेका पूर्ण समर्पण और सरलता है, जिसमें घमण्डका अभाव है उस व्यक्तिमें आंसू स्वाभाविक अभिव्यक्ति होते हैं। ऐसे आंसू अपने स्वरूपमें सुन्दर और स्वभावसे हितकर होते हैं। अतः, वे मानो स्वर्गके ओस कण हैं और अपने साथ स्वस्थ करनेवाले

गुणको ले आते हैं। ऐसे आंसू 'निरर्थक' आंसू नहीं होते, जैसा कि एक अंग्रेज कविने उदास मनःस्थितिमें कहा है, बल्कि वे हैं सशक्त, सहजबोध, प्रभावकारी ऊर्जा जो चैन सुख और शांति लाती है। वह केवल पवित्र ही नहीं बल्कि पवित्रकारी है, यह भावना जो प्रशांत तीव्रता, अभीप्सा और समर्पणसे बनी है: वह अमिश्रित है और पुरस्कार तथा बदलेमें किसी भी मांग या आवश्यकतासे मुक्त है। वह इतनी निर्गुण है कि अभीप्सा उस वस्तुसे स्वतंत्र है जिसके कारण वह अस्तित्व रखती है।

अपनी आत्माके चरम संकट कालमें, जब तुम्हारे सामने कोई रास्ता न हो, तब अगर तुम अपनी पूरी सत्ताकी सरलताके साथ, आत्मदेनकी बाढ़की तरह अपने-आपको दे दो, उनको दे दो जो तुम्हारी शरण हो सकते हैं — अंतमें केवल भगवान् हो ही सकते है — और जो तुम्हारी तीव्र और प्रबल सचाईका पूरी तरह प्रत्युत्तर दे सकते हैं, तो तुम्हें मालूम नहीं कि तुम कितने महान् प्रत्युत्तरको बुला रहे हो, कितने दिव्य आशीर्वाद को अपने अंदर और चारों तरफ ला रहे हो।

"मैंने भोज तैयार किया।"[१]

यह भोज मैंने मनुष्योंके लिये तैयार किया था। दुःख और कष्ट-भरे जीवनके बदले, अंधकार और अज्ञानकी जगह मैं उनके लिये ज्योति, आनन्द और स्वाधीनताका जीवन लेकर आयी। मैंने इस कामके लिये बहुत परिश्रम किया और जब वह तैयार हो गया तो मैंने मानवजातिको उसमें भाग लेनेके लिये निमंत्रित किया। लेकिन मनुष्यने अपनी मूर्खता और हठके कारण मना कर दिया। उसे जरूरत ही न थी। उसे अपने अंधेरे, दुःख भरे बिलमें रहना ही पसंद था। अब मैं अपने भोजका क्या करती? मैं उसे नष्ट नहीं कर सकती थी, उसे बरबाद नहीं कर सकती थी। मैंने उसे अपने प्रभुके चरणोंमें

[१] "प्रार्थना और ध्यान" ३ सितंबर, १९१९

अर्पित कर दिया। उन्होंने इस भेंटको स्वीकार कर लिया। केवल वे ही उसका रस ले सकते हैं और उसे आदर सम्मान दे सकते हैं।

यह रूपांतरका, धरतीपर दिव्य जीवनका भोज है। स्वभावत: मनुष्य उसके योग्य नहीं है। वह उसे अपने मूल्य या अपने प्रयास-के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता। स्वयं भगवान्‌को ही उसे नीचे लाना पड़ेगा। उन्हें अपने-आप अभिव्यक्त होकर यहां अपना जीवन प्रतिष्ठित करना होगा। उसके बाद ही मानव-जन्तु उस नवीन सौंदर्य-के महत्त्वको जान पाएगा और अपना समर्पण निवेदित करेगा।

यह भोज तैयार करना आसान न था। मुझे 'क्रास' का पूरा भार उठाना पड़ा और केलवेरी[1] पर चढ़ना पड़ा। ईसा जब सूली लेकर अपनी नियतिकी ओर चढ़ रहे थे तो उन्हें बहुत बार ठोकरें खा-खाकर गिरना और फिर-फिर उठना पड़ा था। उसी भांति इस सत्ताको भी बहुत-से छल-कपट और मोहभंगकी अवस्थाओंमेंसे, बहुत-से कष्टकर और हिंस्र अनुभवोंमेंसे गुजरना पड़ा। यह कोई सरल, सहज यात्रा न थी। यह अत्यन्त कष्टकर और भयानक चढ़ाई थी। लेकिन सुरंगके अंतमें हमेशा प्रकाश होता है। केलवेरी-और सूली की पूर्णाहुति हुई पुनर्जीवन या मृतोत्थानमें। ईसाके दिव्य आवेगका परिणाम हुआ दिव्य पुरस्कार। यहां भी सारे विरोधी उतार-चढ़ाव पार करनेके बाद रूपांतरकी परिणति है। परम जय-की पूर्णता पानेके लिये पूरी मृत्युकी घाटीको पार करके अंतिम शिखर तक चढ़ना पड़ता है। उसके लिये अविद्याके सभी लोकोंको, मानव चेतनाके सारे क्षेत्रको पीछे छोड़कर, मनुष्य जिस अपूर्णतासे बना है उसे छोड़कर ऊपर उठना होगा, तभी वह भागवत प्रकृतिको अपने शरीर और अपने पदार्थके रूपमें पा सकेगा।

*

---

[1] वह स्थान जहां ईसाको क्रास-रूपी सूलीपर चढ़ाया गया था।

सूली या क्रास सब प्रकारके कष्टों और कठिनाइयोंका, भगवान्की ओर चढ़नेके लिये आवश्यक त्याग और आत्म-अनावरणका प्रतीक है। ईसाई कथाके अनुसार आरोहण और पुनरुत्थानका प्रतीक है केलवेरी।

हमारी साधनामें यह रूपांतर है। इसी तरह क्रास हमारे यहां रूपांतरित चेतनाका प्रतीक है। इसमें ऊपरी हिस्सा, पड़ी रेखाके ऊपर आड़ा हिस्सा परम प्रभु या परात्पर चेतनाका प्रतीक है जो सृष्टिसे ऊपर है। बीचकी पड़ी रेखा वैश्व चेतनाके विस्तारका प्रतीक है — इसे वैश्व दिव्य चेतना कह सकते हैं और निचले हिस्सेकी आड़ी लकीर अभिव्यक्तिमें अंतर्भूत वैयक्तिक भगवान्का प्रतीक है। तुम देखोगे कि हम जिस फूलको 'रूपांतर' कहते हैं वह क्राससे मिलता-जुलता है।

चेतनाका तादात्म्य

माताजीकी 'ध्यान और प्रार्थना' नामक पुस्तकमें हमेशा परम प्रभुके साथ तादात्म्यकी बात होती है। चेतनाका एक और प्रकारका तादात्म्य भी होता है, विशेष रूपसे चीजों और सत्ताओंके साथ, बाहरी जगत्के साथ। उसकी ओर भी प्रार्थनाएं निरंतर संकेत करती हैं। फिर भी, वास्तवमें, चेतना एक ही होती है। वही सब जगह है। सभी वस्तुओंमें, विश्व भरमें और उससे भी परे। जब उसके चारों ओर कोई सीमा बांधी जाती है, कोई ढांचा खड़ा किया जाता है तो एक व्यष्टिगत चेतना बन जाती है या बनती प्रतीत होती है। मनुष्यका अहं, वैश्व चेतनासे अपने-आपको काटता हुआ वह बिन्दु ही, भगवान्से इस तरह अलग हो गया है। उसी अहम्से, उसी पृथक्कारी चेतनासे यह मांग की जाती है कि वह सीमाओंको तोड़कर एकमात्र चेतनाके साथ अपनी स्वाभाविक एकताको फिरसे पा ले। और जब वह यह कर पाती है तो कहा जाता है कि उसने

परम प्रभुसे साथ तादात्म्य पा लिया है। इसके अतिरिक्त जब चेतना अलग होकर विभिन्न केन्द्रोंमें व्यष्टि रूप धर लेती है तब भी छिपकर वह सभी विवि धरूपोंमें, छोटे-से-छोटेसे लेकर बड़े तक, सबमें, उपस्थित रहती और काम करती है। वही चेतना अणुमें, पत्थरमें, पौधेमें, जानवरमें, पृथ्वी, सूरज और नक्षत्रोंमें, समस्त विश्वमें जीवन धारण करती है। हर एक वस्तुके गर्भमें, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, सजीव हो या निर्जीव, सचेतन हो या अचेतन, यह चेतना होती है और वे वस्तुएं विविध प्रकारोंसे उसको ठोस रूप देती और अभिव्यक्त करती हैं। उदाहरणके लिये, अपने देश भारतको लो — जब तुम 'भारत' कहते हो तो उससे तुम्हारा क्या आशय होता है? या भारतका मतलब है भौगोलिक सीमा है या सीमाके भीतर जो भूमि है वह? या भारतका मतलब है उसके पहाड़, उसकी नदियां, जंगल, खेत और जानवर, या उस देशके वासी, या यह सब मिलकर भारत कहलाता है? नहीं, वह कोई और ही चीज हैं। वह चेतनाका एक केन्द्र है जिसका ढांचा है वह विशिष्ट भौगोलिक सीमा। वही उसके पर्वतों और मैदानोंमें वास करती है। उसकी वनस्पतियोंमें स्पन्दित होती है, और पशु जीवन-में जीती और विचरती है। और वही उसके लोगोंके मन और अभीप्साके पीछे है, उसकी संस्कृति और सभ्यताको प्रेरित करती है और उसे हमेशा उच्चतर प्रकाश और उपलब्धियोंकी ओर धकेलती है। केवल भारत ही नहीं, पृथ्वीपर हर एक राष्ट्रकी अपनी चेतना होती है और वही उसके जीवन और संस्कृतिका केन्द्रीय मर्म होता है। केवल इतना ही नहीं, पृथ्वीकी भी, समग्र पृथ्वीकी अपनी चेतना होती है और वह उस चेतनाका मूर्त रूप होता है। पृथ्वीके क्रम-विकासका मतलब हैं उस चेतनाकी वृद्धि और अभिव्यक्ति। इसी प्रकार सूरजकी भी अपनी सौर चेतना होती है, एक सौर सत्ता जो उसकी नियतिका निर्धारण करती है। आगे बढ़कर, विश्वकी भी एक वैश्व चेतना होती है, एक और अविभाज्य जो उसे आगे बढ़ाती है

और उसका पथ-पदर्शन करती है। और उससे भी परे परात्पर चेतना होती है, सृष्टि तथा अभिव्यक्तिके बाहर।

चूंकि चेतना हर जगह मूलतः एक ही है इसलिये अपनी चेतनाके द्वारा तुम किसी दूसरी रचना, वस्तु, सत्ता या जगत्‌की चेतनाके साथ तादात्म्य पा सकते हो। उदाहरणके लिये तुम अपनी चेतनाको किसी पेड़की चेतनाके साथ एक कर सकते हो। एक दिन शामके समय टहलने निकलो, देहातमें एक शांत जगह ढूंढो। एक बड़ा पेड़ चुनो — उदाहरणके लिये आमका पेड़ — और उसके तनेसे पीठ लगाकर बैठ जाओ। अपने-आपको नीरव बनाओ, शांत रहो और प्रतीक्षा करो। तुम्हारे अंदर जो हो रहा हो उसे देखो या अनुभव करो। तुम्हें लगेगा कि कोई चीज तुम्हारे अंदर ऊपरकी तरफ उठ रही है, नीचेसे ऊपरकी ओर, और तुम्हारी नस-नसमें दौड़ रही है। कोई ऐसी चीज जो तुम्हें एक साथ सुखी, संतुष्ट और शक्तिशाली बनाती है। वृक्षमें जो रस उठ रहा है उसके साथ तुम संपर्कमें आए हो, वह प्राणिक ऊर्जा, वृक्षमें वह रहस्यमय चेतना, जो आरामदेह, शांतिपूर्ण और स्वास्थ्यप्रद है। हां, थके हुए मुसाफिर उस वृक्षके तले बैठते हैं, उसकी फैली हुई शाखाओंपर पक्षी बसेरा लेते हैं, और दूसरे जानवर, यहां तक कि सत्ताएं भी (तुमने उन प्रेतात्माओंके बारेमें सुना होगा जो पेड़ पर रहती हैं) वहां आश्रय लेती हैं। यह केवल शीतल या सुखद छायाके लिये नहीं, केवल भौतिक सुविधाके लिये नहीं, बल्कि उसकी प्राणिक शरण तथा सुरक्षाके लिये होता है। पेड़ इतने जीवन्त, इतने संवेदनशील होते हैं कि वे किसी पालतू जानवर, यहां तक कि मनुष्यकी तरह मैत्रीपूर्ण हो सकते हैं। उनकी फैलती हरियालीके तले तुम्हें आराम, सुरक्षा और शक्ति मिलते हैं।

मैं तुम्हें एक उदाहरण दूंगी। हमारे किसी बगीचेमें एक पुराना आमका पेड़ था — वह बहुत ही पुराना, रूखा-सूखा और जर्जर था। लगता था आज मरा या कल मरा। सभी लोग उसे काट देनेके

पक्षमें थे, ताकि उस जगहको साफ-सुथरा करके फूल और तरकारी लगाए जा सकें। मैंने वृक्षकी ओर देखा। अचानक मैंने सूखी छालके अंदर पेड़के बीचों-बीच हल्के धुंधले प्रकाशकी एक पतली-सी रेखा देखी। उसका रंग कुछ हल्का हरा-सा था और वह ऊपरको उठ रही थी, बहुत सजीव थी वह। मैं वृक्षकी चेतनाके साथ एक हो गयी और उसने मुझसे विनती की कि उसे काटा न जाय। वह वृक्ष आजतक जिन्दा और काफी हरा-भरा है। जब मैं करीब १३-१४ सालकी थी, तब मैं पैरिससे कुछ दूर, 'फौंतेन ब्ल' नामक वनमें जाया करती थी। वहां ऊंचे-ऊंचे बलूत वृक्ष थे जो शायद कई शताब्दियों पुराने होंगे। यद्यपि तब मैं ध्यानके बारेमें कुछ नहीं जानती थी फिर भी, मैं अकेली बैठती और इर्द-गिर्दके जीवनको, हर एक वृक्षमें एक जीती-जागती उपस्थितिको अनुभव करती थी जो मुझे हमेशा स्वास्थ्य और सुखका भाव देती थी।

एक और उदाहरण एक दूसरे प्रकारका तादात्म्य दिखायेगा। यह एक अनुभूति है जिसके बारेमें मैंने बहुत बार बात की है। मैं अंतर्मुख बैठी ध्यान कर रही थी। मुझे लग रहा था कि मेरा भौतिक शरीर विलीन हो रहा है, या बदल रहा है: वह ज्यादा-ज्यादा विशाल बनता जा रहा था, क्रमशः मानवी लक्षण खोकर गोलकका आकार ले रहा था। हाथ, पैर, सिर बाकी नहीं रहे। सब कुछ गोल बन गया, ठीक पृथ्वीके आकारका। मैं रूप और द्रव्यमें पृथ्वी बन गयी। सभी पार्थिव वस्तुएं मेरे भीतर उपस्थित थीं, जिन्दा जानवर और मनुष्य मेरे अंदर विचर रहे थे, पेड़ पौधे और सभी जड़ पदार्थ मेरे अंश, मेरे शरीरके अंग थे। मैं साकार भौतिक चेतना थी।

लेकिन मुख्य चीज है कहीं भी या सब जगह स्थित यह व्यक्तिगत चेतना बनना और साथ ही उस उच्चतर वैश्व और परात्पर परम चेतनाको बनाए रखना, एक ही साथ उच्चतम सीमा तक दोनों पद्धतियोंमें सचेतन होना।

केन्द्रीय चेतना

अक्सर यह अनुभूति होती थी : परम प्रभुके साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता था, लेकिन ज्यों ही चेतना स्थिर होकर परमानन्दमें विलीन होनेको होती कि उसे बुलाया जाता और वह फिरसे बाहरी जगत्की ओर, साधारण चेतनाके सामान्य मामलोंकी ओर मुड़नेके लिये बाधित होती थी। मानो, मुझे यह सिखाया जा रहा था कि भौतिक जगत्के जीवनको भूलकर, उसे त्यागकर परे चले जाना मेरे लिये नहीं था, बल्कि इहलोक और परलोकमें संपर्क, घनिष्ठ संपर्क बनाए रखना, दोनोंको एक ही चेतनासे बांधे रखना मेरा काम था। प्रक्रिया कुछ-कुछ ऐसी है : बाहरी जगत्से अपनी चेतनाको खींचकर तुम अंदरकी तरफ मुड़ते हो। तुम अपने शारीरिक क्रियाकलाप और शारीरिक इन्द्रियोंसे दूर हट जाते हो। इस तरह तुम क्रमशः जीवनकी और मनकी सभी गतिविधियोंके सभी स्तरोंसे दूर हटते जाते हो। तुम गहराईमें पैठते हो और ऊंचाईमें उठते हो, यहां तक कि उच्चतम शिखरतक जा पहुंचते हो। वह शिखर है — पूर्ण नीरवता, एकमात्र सद्वस्तुके साथ एक अविभाज्य एकता। अतीतके सभी महान् आध्यात्मिक संप्रदायोंका यही उद्देश्य था। हमें भी यह सिद्धि प्राप्त करनी है। लेकिन हमारे लिये यह आधार है, निस्सन्देह अनिवार्य आधार, लेकिन फिर भी, आरंभ बिन्दु। श्रीअरविंदने हमेशा कहा है कि जहां दूसरे योग समाप्त होते हैं वहांसे हमारा योग आरंभ होता है। क्योंकि हमारा उद्देश्य केवल उच्चतम सद्वस्तुको, परे की चेतनाको प्राप्त करना ही नहीं, बल्कि उसे उतारना है, भौतिक जगत्में उसे एक जीती-जागती और सच्ची वास्तविकता बनाना है। पुराने योग जगत्की रक्षा करना तो चाहते थे, लेकिन जगत्के उस पार जाकर परम पुरुष और सत्यको सिद्ध करके, कभी न लौटकर केवल अपनी ही मुक्ति सिद्ध करते थे। इसलिये जगत् वहका वही बना रहा। केवल दो-चार ही उससे

बच पाए। हमारा योग ऊंचाइयों पर सिद्ध चेतनाको पार्थिव जीवनमें उतारकर उसे पार्थिव जीवनकी शाश्वत संपत्तिके रूपमें स्थापित करनेकी कोशिश करता है।

कुंजी है, उस बिन्दुको खोजना, जहां ये दो सिरे मिलते हैं, चेतनाके उन दोनों स्तरों — परात्पर और अभिव्यक्तका — मिलन स्थल जहां दोनों केवल परस्पर विरोधी ही नहीं होते, बल्कि एक ही सत्यके पहलू और अभेद्य रूपसे एक होते हैं। ऊपर उठते हुए वह अभिव्यक्त जगत्की सीमा, रेखा है, उसका अन्तिम बिन्दु है और अनभिव्यक्तका पहला बिन्दु। अगर तुम उस बिन्दुको खोज सको, तो तुम्हें दो विरोधी चीजोंमें, ब्रह्म या जगत्में चुनाव नहीं करना पड़ता। जब वह बिन्दु चूक जाय तभी तुम चुनाव करनेके लिये बाधित होते हो। कुछ लोग सीमाके पार, स्थिर चेतनाको चुनते हैं, वह शाश्वत पवित्र सत्ता, जो आत्मलीन और आत्म निर्भर है। कुछ और जिनमें, उसे चुननेका साहस नहीं होता, जगत्की ओर मुड़ते हैं और उसके अंधकार, अज्ञान, परिश्रम, दुःख, दुर्बलता और कष्टमें फंसे और डूबे रहते हैं। लेकिन जैसा कि मैं कह चुकी हूं, समस्याका यह समाधान — अगर इसे समाधान कहा जा सके — न तो जरूरी है, न अनिवार्य।

फिर भी, चेतनाकी संयोगात्मक और निर्णायक अवस्थाको (जो वास्तवमें आधारभूत अतिमानसिक चेतना है, जैसा कि श्रीअरविंद कहते हैं) प्राप्त करनेके लिये पहली शर्त है इस बातके प्रति सचेतन होना कि जगत्, यानी, भौतिक चेतनाका अपने-आपमें कोई अस्तित्व नहीं है। अपने-आपमें वह कुछ नहीं है। प्रार्थनामें है, "वह कुछ नहीं जानती, कुछ नहीं कर सकती, कुछ नहीं है।" इस अनुभूतिको केवल एक मानसिक बोध, आंतरिक चेतनामें बोध नहीं होना चाहिये। बल्कि शरीरको, भौतिक अस्तित्वको ही सचेतन होना चाहिये और उस सचेतनतामें उसे इस सत्यको देखना और अनुभव करना चाहिये कि अपने-आपमें वह शून्य है, अनस्तित्व है। जब

वह अतिमानसिक चेतनाका मूर्तता या वाहन बन जाएगा, जब वह उसके सच्चे पदार्थसे भरपूर हो जाएगा तब वह देखेगा कि वह सच्चा है, परम रूपसे सच्चा।

आत्माके पद

भगवान्का अस्तित्व तीन पदोंमें है। १) अस्तित्व, २) चेतना, ३) परमानन्द। शुद्ध अस्तित्व, शुद्ध चेतना और शुद्ध आनन्द — सत्-चित्-आनन्द : ये हैं वे तीन मौलिक तत्व जिनसे जगत् बना है। वे हर एक चीजमें, हर एक सत्तामें, अस्तित्वके हर एक स्तर और क्षेत्रमें उपस्थित हैं। सच्चिदानन्द वह परम सद्वस्तु है जो सबके पीछे विद्यमान है, यहां इहलोकमें भी, मनके पीछे, जीवनके पीछे, शरीरके पीछे भी है। और इनमेंसे हर एक क्षेत्रके हर आकारके पीछे है। वही हर एकको बनाए रखता है। इसलिये उसे पानेके लिये, मानसिक प्राणिक और भौतिक अस्तित्वको छोड़कर ऊपर उठनेकी, परे जानेकी कोई जरूरत नहीं। साधारणतः जब तुम सच्चिदानन्दकी खोज करते हो तो उसे विश्वके बाहर, सृष्टिके ऊपर और परे, परात्परमें ढूंढते हो। वास्तवमें, तुम जहां खड़े हो वहींसे उसे पा सकते हो, मन, प्राण, यहां तक कि शरीरमें भी। तुम्हें केवल अंदर खींच कर अपने अंदर डुबकी लगानी होगी, पीछे हटना होगा। वह हमेशा वहां रहता है। मौतिक अस्तित्वमें या उसके द्वारा सच्चिदानन्द प्राप्त करना दूसरे तरीकोंकी अपेक्षा कठिन या विरल नहीं है। उसे वहां निरंतर और सचेतन रूपसे बनाए रखना, उसे एक भौतिक जीती-जागती संपत्ति बनाना ज्यादा कठिन है। यही कार्य है जिसे सिद्ध करना है और जिसके लिये श्रीअरविंद आए हैं।

निःस्वार्थ कार्यकर्ता

प्रार्थना कहती है, "मैं अपने सचेतन मनको खोजती हूं और उसे कहीं नहीं पाती . . ." साधारणतः तुम अपने बारेमें सचेतन होते हो या जब कभी तुम कोई चीज करते हो तो पीछे यह चेतना रहती है, "मैं यहां हूं, मैं कर रहा हूं।" और अगर 'मैं हूं' का भाव न हो, तो तुम कुछ नहीं कर पाते। अगर मैं अपने-आपको काम करते न देखूं या अनुभव न करूं तो सहज रूपसे सभी क्रियाकलाप बन्द हो जाता है। लेकिन वह है साधारण चेतनाका स्वरूप। आध्यात्मिक चेतनामें चीजें और प्रकारकी हैं। आध्यात्मिक चेतनाका मतलब है वह चेतना जिसमें 'मैं कर रहा हूं' या 'मैं हूं' का भाव अदृश्य और विलीन हो जाता है। सचमुच काम मेरे द्वारा, 'अहम्' द्वारा नहीं, बल्कि प्रकृतिद्वारा, बाहरी तौरसे निम्नतर प्रकृतिद्वारा और गुप्त रूपसे उच्चतर प्रकृतिद्वारा किया जा रहा है। जब 'अहम्' विलीन हो जाता है, तो जो शक्ति काम कर रही थी, वह करना जारी रखती है, केवल अज्ञानमें अज्ञानके द्वारा उससे जुड़ा हुआ 'अहम्' का भाव नहीं रहता। या 'अहम्' क्रियाशील शक्तिमें विलीन हो जाता है, उसके साथ एक हो जाता है, जो चीज सचेतन है वह व्यक्तित्व या व्यक्तिगत 'अहम्' नहीं बल्कि क्रियाकी शक्ति है।

एक तरुण साधकका माताजी और श्रीअरविन्दके साथ पत्र-व्यवहार

भगवान् क्या हैं ?

भगवान् वह हैं जिनसे सब कुछ आता है, जिनमें सब कुछ निवास करता है और जीवनमें अंतरात्माका लक्ष्य है, अभी बादलोंसे आच्छादित भगवान्‌के सत्यको फिरसे पाना। परम सत्यमें भगवान् निरपेक्ष, अनन्त शांति, चेतना, जीवन, शक्ति और आनन्द हैं।

क्या भगवान् एक बहुत बड़ी शक्ति नहीं हैं जो प्रकाश और सत्यकी अवस्थाओंमें काम करती है ?

भगवान् एक बड़ी शक्तिसे अधिक हैं। तुम जो कुछ कहते हो वह सब तो भगवान् हैं ही साथ ही उस सबसे अधिक भी।

(३१ मई, १९३३) —श्रीअरविंद

आज मैंने माताजीके चेहरेके चारों ओर प्रकाश देखा। वह क्या था ? वह मेरी कल्पना थी या कोई वास्तविक चीज ?

माताजीके चारों ओर हमेशा प्रकाश रहता है।

हम ईर्ष्याको कैसे पहचान सकते हैं और कैसे उससे पिंड छुड़ा सकते हैं ?

पहचानना आसान है। वह जब कभी आये उसे दूर फेंक देना चाहिये।

(१ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

अभीप्साका क्या अर्थ है ?

यह सत्तामें भगवान् या भागवत चेतनाकी उच्चतर चीजोंके लिये पुकार है। ('अभीप्सा' करनेका अर्थ हमेशा यही होता है उच्चतर चीज़ोंको बुलाना।)
(४ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

क्या मैं समर्पणका अर्थ जान सकता हूं ? समर्पण कैसे किया जाय ?

समर्पण है अपने-आपको भगवान्‌के हाथोंमें देना, तुम जो कुछ हो, या तुम्हारे पास जो कुछ है उसे भगवान्‌को देना और किसी भी चीजको अपना न मानना, केवल भगवान्‌की इच्छाका पालन करना और किसीकी इच्छाका नहीं, अहंकारके लिये नहीं, भगवान्‌के लिये जीना।
(६ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

आज सवेरे साढ़े दस बजे मैंने स्वागत कक्षमें शान्त आध्यात्मिक वातावरणका अनुभव किया। जब मैं बाहर निकला तो 'क्ष' ने जो उस समय फाटकपर बैठा था, मेरे साथ बातें करना शुरू किया। तब मैंने देखा कि मेरे अंदर आध्यात्मिक प्रभाव घट गया।

स्पष्ट है कि जब ऐसी अनुभूति हो तो मौन रहना ज्यादा अच्छा है।

सम्वेदन क्या है और उसे सुन्दर सामंजस्यपूर्ण ढंगसे व्यक्त करनेका क्या तरीका है ?

यह चेतनामें खुलनेवाली अभिव्यक्तिकी शक्तिपर निर्भर है।
(७ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

हम प्राणिक आवेशों और कामनाओंके पूर्ण रूपसे स्वामी कैसे बन सकते हैं ?

उनसे अपने-आपको दूर रखो, उनके आगे मत झुको, उनके अनुसार क्रिया न करो, उन्हें आते ही अस्वीकार कर दो।

माताजीके चारों ओरके प्रकाशका रंग कैसा है ? आज मैंने नीला प्रकाश देखा।

माताजीका विशेष प्रकाश सफेद है। लेकिन और सब रंग भी उन्हींके हैं।
(८ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

कुछ स्वप्नोंका अर्थ होता है और कुछका नहीं, क्यों ?

जो स्वप्न अवचेतनाके संस्कारोंके ऊटपटांग अवचेतन (मन, प्राण शरीर) संयोजनसे बनते हैं उनका या तो कोई अर्थ नहीं होता या कोई ऐसा अर्थ होता है जिसे पाना कठिन है। और अगर वह जान भी लिया जाय तो वह खास जानने लायक नहीं होता। अन्य स्वप्न सीधे रूपमें या तो मन, प्राण या सूक्ष्म भौतिक जगतोंकी घटनाएं होते हैं या अधिक विस्तृत मन, प्राण और सूक्ष्म शरीरके स्तरसे आते हैं और उनका कुछ अर्थ होता है जिसे स्वप्नकी आकृतियां बतलाना चाहती हैं।

प्राणमय लोक क्या है ?

जीवन शक्तियोंका, संवेदनों, कामनाओं, गतिशील आवेगों आदिका लोक।
(९ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

हम सतत सचेतन कैसे रह सकते हैं ?

मनमें हमेशा अचंचल और सचेत रहो।

हम स्वप्न किस अवस्थामें देखते हैं ?

तुम नींदमें हमेशा ही स्वप्न देखते हो।

हम स्वयं अपने स्वामी कैसे बन सकते हैं और आत्म-नियंत्रण कैसे रख सकते हैं ?

अपना अवलोकन करो ताकि तुम्हारे सचेतन हुए बिना कोई चीज न होने पाये। अपने-आपको आन्तरिक स्वीकृतिके बिना प्रकृतिको शक्तियोंद्वारा परिचालित न होने दो। हमेशा माताजीकी इच्छाका पालन करो। शक्तियोंकी गतिविधिको तुम्हारे स्वीकृति या अस्वीकृति माताजीके सत्यके अनुकूल हो।

(१० जून, १९३३) —श्रीअरविंद

माताजीने मुझसे कहा, "तुम्हारी दृष्टि शक्तियोंकी गतिविधिको देखना शुरू कर रही है।" वे किस दृष्टि और कौन-सी शक्तियोंकी बात कर रही थीं ?

आन्तरिक दृष्टि, जो भी शक्तियां कार्यरत हों। आन्तरिक दृष्टि वस्तुओंको देख सकती है — वह उनके साथ ही वस्तुओंमें कार्य करनेवाली शक्तियोंके स्पन्दनोंको भी देख सकती है।

माताजीका संगीत सुननेसे हमें क्या मिलता है ?

इसका उत्तर तो तुम्हें देना चाहिये।

(११ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

प्राणिक समर्पण क्या है और हम अपना प्राण भगवान्‌को कैसे अर्पित कर सकते हैं ?

समस्त प्राणिक प्रकृति और उसकी गतिविधियोंको भगवान्‌के प्रति इस तरह अर्पण करना कि उसे शुद्ध किया जा सके, फिर केवल सत्य गतिविधियां रह जायेंगी जो भागवत संकल्पके अनुकूल होंगी और सभी अहंकारजन्य कामनाएं और आवेग गायब हो जायेंगे।

(१२ जून, १९३३) —श्रीअरविंद

जीवनका सच्चा लक्ष्य

हम धरतीपर क्यों हैं ?

भगवानको पानेके लिये, जो हममेंसे हर एकके अंदर और सभी चीजोंमें हैं।

*

बस एक ही चीज महत्त्वपूर्ण है, वह है भगवान्‌को पाना।

हर एकके लिये और समस्त जगत्‌के लिये हर चीज उपयोगी हो सकती है यदि वह भगवान्‌को पानेमें सहायक हो।

*

जीवन भगवान्की खोज करनेके लिये है, जीवन चरितार्थ होता है भगवान्को पाकर।

*

हमारे जीवनकी एकमात्र आवश्यकता यही हो – भगवान्को पाना।

*

हां, 'भागवत उपस्थिति'की चेतनामें रहना ही एकमात्र चीज है जिसका मूल्य है।

(जून, १९३५)

*

एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है, अपने अंदर और अपने लिये वही चाहना जो भगवान् चाहते हैं।

(५ अप्रैल, १९३५)

*

व्यष्टिगत आत्मा और समष्टिगत आत्मा एक ही हैं, हर एक जगत्में, हर एक सत्तामें, हर एक वस्तुमें हर अणुमें 'भागवत उपस्थिति' मौजूद है और मनुष्यका लक्ष्य है उसे अभिव्यक्त करना।

(३० अक्तूबर, १९५१)

*

हम भागवत इच्छाको अभिव्यक्त करनेके लिये धरतीपर हैं।

(२७ जुलाई, १९५४)

*

एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है वह लक्ष्य जिसे प्राप्त करना है, मार्गका कोई महत्त्व नहीं है और प्रायः उसे पहलेसे न जानना ज्यादा अच्छा है।

(१५ नवंबर, १९५४)

*

हम चाहे जो करें, हमें सदा अपने लक्ष्यको याद रखना चाहिये।

(७ दिसंबर, १९५४)

*

धरतीपर हमारे जीवनका लक्ष्य है भगवान्‌के बारेमें सचेतन होना।

*

जीवनका सच्चा उद्देश्य :

भगवान्‌के लिये जीना या 'सत्य'के लिये जीना या कम-से-कम अपनी अंतरात्माके लिये जीना।

और सच्ची निष्कपटता —

भगवान्‌से बदलेमें किसी लाभकी आशा किये विना 'उनके' लिये जीना।

(२० जनवरी, १९६४)

*

मेरी सच्ची नियति क्या है?

सच्ची नियति है 'भागवत चेतना' तक पहुंचना।

इस जीवनमें मेरा सच्चा मूल्य क्या है ?

भगवान्‌की सेवा करना।

(२२ अक्तूबर, १९६४)

*

जीने योग्य वस्तु केवल एक ही है — भगवान्‌की सेवा।

(जनवरी, १९६६)

*

जीवनके लक्ष्यका परिवर्तन, अहंकारके स्थानपर भगवान्, स्वयं अपनी संतुष्टि खोजनेकी जगह भगवान्‌की सेवाको जीवनका लक्ष्य बनाना।

*

तुम्हें जो चीज जाननी चाहिये वह है, ठीक तरहसे यह जानना कि तुम जीवनमें क्या करना चाहते हो। इसे सीखनेमें जो समय लगता है उसकी कुछ परवाह नहीं क्योंकि जो लोग 'सत्य'के अनुसार जीना चाहते हैं, उनके लिये हमेशा कुछ सीखनेके लिये, कुछ प्रगतिके लिये होता ही है।

(२ अक्तूबर, १९६९)

*

जीवनका सच्चा लक्ष्य है अपने अंदरकी गहराइयोंमें 'भगवान्‌की उपस्थिति'को पाना और 'उसके' प्रति समर्पण करना ताकि 'वह' जीवनका, सभी भावनाओं और शरीरकी क्रियाओंका मार्गदर्शन करे। यह चीज जीवनको सच्चा और प्रकाशमय लक्ष्य प्रदान करती है।

(२८ मार्च, १९७०)

*

जीवनका एक प्रयोजन है।

यह प्रयोजन है भगवान्‌को खोजना और उनकी सेवा करना।

भगवान् दूर नहीं हैं, 'वे' हमारे अंदर हैं, अंदर गहराईमें, भावनाओं और विचारोंके ऊपर। भगवान्‌के साथ हैं शांति, निश्चिति और साथ ही सभी कठिनाइयोंका समाधान।

अपनी समस्याएं भगवान्‌को सौंप दो और 'वे' तुम्हें कठिनाइयोंसे बाहर निकाल लेंगे।

(३ जुलाई, १९७०)

*

तुम यहां अपनी अंतरात्माके साथ संपर्क साधनेके लिये हो, और इसी कारण जीते हो, निरंतर अभीप्सा करो और अपने मनको नीरव करनेकी कोशिश करो। अभीप्सा हृदयसे आनी चाहिये।

(११ जून, १९७१)

*

वही होना और अधिकाधिक वही बनना जो भगवान् हमें बनाना चाहते हैं। यही हमारी सबसे बड़ी तल्लीनता होनी चाहिये।

(२५ जुलाई, १९७१)

*

प्राप्त करने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण चीज 'दिव्य जीवन'को समझो।

*

सुख जीवनका उद्देश्य नहीं है।

साधारण जीवनका लक्ष्य है अपना कर्तव्य पूरा करना, आध्यात्मिक जीवनका लक्ष्य है भगवान्‌को पाना।

*

जगत्‌में, जैसा कि वह है, जीवनका लक्ष्य व्यक्तिगत सुख पाना नहीं बल्कि व्यक्तिको उत्तरोत्तर सत्य-चेतनाकी ओर जगाना है।

*

हम सुखी होनेके लिये धरतीपर नहीं हैं क्योंकि पार्थिव जीवनकी वर्तमान दशामें सुख असंभव है। हम धरतीपर भगवान्‌को पाने और चरितार्थ करनेके लिये हैं क्योंकि केवल 'दिव्य चेतना' ही सच्चा सुख दे सकती है।

*

सुखी होनेके लिये मत जियो। भगवान्‌की सेवा करनेके लिये जियो, इससे तुम्हें जो आनंद मिलेगा वह आशातीत होगा।

(मार्च, १९७२)

*

मनुष्यका जीवन अपूर्ण है, जबतक उसने भगवान्‌को न पा लिया हो।

(२ जून, १९७२)

*

भगवान् सब जगह और सब चीजोंमें हैं। हम भगवान्‌को

खोजने और उनकी अभिव्यक्तिके लिये 'उनके' साथ एक होनेके लिये बनाये गये हैं।

(१७ सितंबर, १९७२)

*

मनुष्य भगवान्‌को अभिव्यक्त करनेके लिये बनाया गया था। इस लिये उसका कर्तव्य है कि भगवान्‌के बारेमें सचेतन हो और अपने-आपको पूरी तरह 'उनकी इच्छा'के प्रति अर्पण कर दे। बाकी सब, चाहे कुछ भी क्यों न दीखता हो, मिथ्यात्व और अज्ञान है।

(२६ दिसंबर, १९७२)

*

हम अपनी सत्ताका निजी मोक्ष नहीं बल्कि भगवान्‌के प्रति अपनी सत्ताका पूर्ण समर्पण चाहते हैं।

*

भगवान्‌पर एकाग्रता ही सचमुच एकमात्र संगत चीज है। वही करना जो भगवान् हमसे करवाना चाहते हैं, यही एकमात्र संगत चीज है।

(६ जनवरी, १९७३)

*

जो स्थायी, शाश्वत, अमर और अनंत हो, वस्तुतः वही पाने योग्य है, जीतने योग्य है, अधिकृत करने योग्य है। वह है 'दिव्य ज्योति', 'दिव्य प्रेम', 'दिव्य जीवन' — वह 'परम शांति', 'पूर्ण आनंद' और धरतीपर 'पूर्ण प्रभुत्व' भी है और इसका मुकुट है 'पूर्ण भागवत अभिव्यक्ति'।

(श्रीमातृवाणी खंड १४से)

परोपकारकी दार्शनिक तर्क-संगतता

परोपकारका सचमुच अर्थ क्या है ? दार्शनिक दृष्टिसे इसका क्या अर्थ है ? वेदान्तमें कहा गया है 'सोऽहम्'। यही उसका आधार है। सोऽहम्का मतलब है "मैं वह 'तत्' हूं।" अगर मैं वह हूं, तुम भी वही हो इसलिये मैं और तुमका कोई बखेड़ा नहीं। केवल वही ब्रह्म या कह सकते हैं ईश ही मेरा सच्चा स्व है, वही सच्चा देवदत्त है, मेरे पड़ोसीका सच्चा स्व भी वही ईश है, वही सच्चा हरिश्चन्द्र भी है। इस तरहसे सचमुच न कोई देवदत्त है न कोई हरिश्चन्द्र बल्कि अमुक मानसिक और शारीरिक खोलमें मेरे स्व यानी आत्माको देवदत्तके नामसे पुकारते हैं और एक दूसरे मानसिक और शारीरिक खोलमें मेरी आत्माको ही हरिश्चन्द्रका नाम दिया जाता है। इसलिये अगर हरिश्चन्द्र बेशुमार धन-दौलतका मजा लूट रहा है तो वह मैं ही उसका भोग कर रहा हूं क्योंकि हरिश्चन्द्र मेरी ही आत्मा है, — वह मेरी आत्मा है, मेरा वह शरीर नहीं जिसके अंदर मैं कैद हूं या मेरी वे कामनाएं नहीं जिनके कारण मेरा शरीर बुरी हालतमें है। वह मेरा सच्चा स्व यानी सच्ची आत्मा, पुरुष या मेरे अन्दरका सच्चा मानव है। वही जगत्के उस प्रिय, कटु, मधुर, विशाल, सुन्दर, भयानक, सुखद, भीषण और एकदमसे भव्य और आनन्ददायक नाटकको देखनेवाला और उपभोग करनेवाला पुरुष है जिसे प्रकृति उसकी खुशीके लिये खेलती है। एक बार मुझे इस सत्यकी अनुभूति हो जाये तो मैं हरिश्चन्द्रके धन-दौलतका उसी तरह उपभोग कर सकता हूं मानों वह धन-संपत्ति खुद मेरी है और मैं उपभोग कर रहा हूं। क्योंकि तब मैं अपने स्वसे निकलकर हरिश्चन्द्रके स्वके अंदर जा सकता हूं ताकि उसके सुख मेरे सुख बन जायं। यह करनेके लिये बस मुझे अपने संबन्धोंकी ऊपरसे दीखनेवाली

बाड़को तोड़ना होगा जो मेरी आत्माके भावको मेरे अपने शरीर, मन और प्राण-शक्तिमें सीमित कर देती है। और यह हो सकता है, यह तो मानवताकी सामान्य अनुभूति है जिसे प्रेम नाम दिया गया है। मानव क्रम-विकास प्रेमसे और प्रेमकी तरफ ही बढ़ता है। प्रेमके इस सत्यको सभी महान् धर्म सहज रूपसे तुरन्त पा लेते हैं। यहां तक कि वे अपने किसी ऐसे सिद्धांतके लिये जिसे वह सबसे महत्त्व-पूर्ण मानते हैं कोई दार्शनिक करण नहीं ढूंढ़ पाते, वे प्रेमके इस सत्यको तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं। ईसाइयोंका एक ही नियम जो उनके बाकी धर्मोपदेशोंके स्थानको भी भर सकता है वह है अपने पड़ोसी-से उसी तरह प्रेम करना जैसे तुम अपने आपसे करते हो, उसी तरह बौद्धोंका नैतिक आदर्श है निस्वार्थ परोपकार और दूसरोंकी भलाई। हिन्दुओंका नैतिक आदर्श है ऐसा पूर्ण सन्त जो सभी प्राणियोंका हित करनेमें आनन्द पाता है और यही उसका काम है — सर्वभूतहिते रतः। हर जगह यही महान् आदर्श है जिसे अलग-अलग रूपोंमें प्रकट किया जाता है। लेकिन धर्म प्रेमके जिस अर्थको लेता है वह अपने-आपको दूसरोंमें चरितार्थ करना है। अगर जैसा कि सांख्य और ईसाई मतके लोग मानते हैं कि लाखों-करोड़ों अलग-अलग पुरुष हैं, और मेरे अंदरका सच्चा पुरुष औरोंके अंदरके सच्चे पुरुषसे जाति-में एक होते हुए सार तत्त्वमें भिन्न और अलग है, तो ऐक्यकी अनु-भूति नहीं हो सकती, केवल मानसिक या जड़-भौतिक संबन्ध बन सकता है। और जड़-भौतिक संपर्कसे अनुराग और घृणा जैसी पाशविक अनुभूतियोंके सिवा और कुछ नहीं मिल सकता, मानसिक संपर्कसे आकर्षण और अरुचि ही आ सकते हैं। तब एकदमसे अलग-थलग अकेली 'आत्मा' अपना ही जीवन जियेगी, अपने सन्तोष और मुक्तिकी ओर बढ़ेगी, उस समय उसके पास ऐसा कोई आधार न होगा कि वह किसी दूसरेको अपनी तरह प्रेम कर पाये, क्योंकि, वह यह अनु-भव ही नहीं कर पायेगी कि दूसरा भी वह स्वयं है। जहां दूसरे धर्म बहुतसे अलग-अलग पुरुषोंका होना मानते हैं वहां वेदान्त एक और

अद्वितीय आत्माको पानेकी बात करता है और यह ऊपरसे दीखनेवाले भेदको माया कहता है, इसीमें हमें ऊंचे और आध्यात्मिक प्रेमकी एकमात्र सच्ची व्याख्या मिल सकती है। इस गहरे सत्यको ऊपर लानेवाली रोशनीमें परोपकारको देखें तो परोपकार एकदमसे स्वाभाविक, उचित और जरूरी बन जाता है। तब यह स्वाभाविक बन जाता है क्योंकि मैं सचमुच किसी दूसरेको अपनेसे ज्यादा पसंद नहीं कर रहा बल्कि अपने संकरे झूठे स्वकी अपेक्षा अपने ज्यादा विशाल सच्चे स्वको पसन्द कर रहा हूं। मेरे अंदर जो भगवान् हैं वही देवदत्तमें हैं, मैं ही देवदत्तमें हूं और वही मैं हरिश्चन्द्रमें भी हूं। यह सच है क्योंकि अपने अनुभवोंमें हरिश्चन्द्रके सुखोंको अपने सुख मानकर मैं सब जगह ब्रह्मके होनेके ज्ञानको पा सकूंगा और यह मेरी अनुभूति होगी, केवल मानसिक विचार नहीं होगा क्योंकि मानसिक विचार नहीं बल्कि अनुभूति ही सच्चा ज्ञान है। और यह अनुभूति पाना एकदमसे जरूरी है क्योंकि यही मेरे ऊपर चढ़नेका तरीका है। जिस तरह मैं पशुसे मनुष्यतक उठा हूं उसी तरह मुझे मनुष्यसे देवतातक उठना होगा। देवत्वका आधार है अपने-आपको दूसरी सभी चीजोंमें पाना। इससे भी परे हमारा सच्चा लक्ष्य और विकासका छोर है सारे विश्वमें फैल हुए ब्रह्मके साथ ज्यादा-से-ज्यादा एक होना। इसी लक्ष्यकी तरफ हम बढ़ रहे हैं, हम रास्तेमें चाहे कितनी देर लगायें, बार-बार पलटकर पीछे जा गिरें लेकिन हम फिर भी इसी लक्ष्यकी तरफ यानी जड़-भौतिकके मिथ्यासे आत्माके सत्यकी ओर बढ़ रहे हैं। पहले हम आलस्य, पशुता, अज्ञान, क्रोध, कामना, लालच, पशुकी हिंसा आदिके निचले पाशविक स्तरसे उठकर — या जिसे हम अपनी दर्शनकी भाषामें तामसिक अवस्था कहते हैं — उसमें से निकलकर अलग-अलग मानव क्रियाओं और ऊर्जाकी ओर बढ़ते हैं जिसे राजसिक अवस्था कहा गया है, फिर उससे हमें सात्विक अवस्थामें उठना होगा, वह है — भागवत संतुलन, मनकी स्पष्टता, अंतरात्माकी पवित्रता, महान् निस्वार्थता, दया, सभी प्राणियोंके लिये

प्रेम, सत्य, सरलता, प्रशान्तता। यह भागवत अवस्था भी सबसे ऊंची अवस्था नहीं है, हमें इसे पीछे छोड़कर सभी चीजोंके शिखरपर पहुंचना होगा जहां सभीके प्रकाशमान और कामनारहित प्रभु विराजमान हैं जो अपनी भव्यताकी एक किरणसे करोड़ों विश्वोंको प्रकाशित करते हैं। उसी स्तब्ध शिखरपर हम न केवल अपनी आत्माके साथ, न केवल दूसरोंकी आत्माके साथ बल्कि उस समस्त-आत्माके साथ एक होनेकी अनुभूति पायेंगे जो प्रभु है, जो ब्रह्म है। ब्रह्ममें ही हमारा क्रम-विकास अपना विस्तृत लक्ष्य और विश्राम पाता है

——वंदना

श्रीअरविंदाश्रमकी कला दीर्घा

माताजी अपने-आप बहुत उच्चकोटिकी चित्रकार और संगीतकार थीं। और हमेशा कला और सौंदर्यमें रस लिया करती थीं। उन्होंने श्रीअरविंदाश्रममें सौंदर्यकी अभिव्यक्तिको बहुत ऊंचा स्थान दिया था। आश्रममें आध्यात्मिक प्रगतिके साथ-साथ कलाके विभिन्न रूप भी खिल रहे हैं।

माताजी आबालवृद्ध सभीके सौंदर्यकी भावनाको प्रोत्साहित करती थीं। नौसिखिये और निष्णात सभी अपनी-अपनी कलाको साधनाके रूपमें विकसित करते थे। आश्रमके शुरूके दिनोंमें जो लोग यहां आये थे उनमेंसे कुछ प्रशिक्षित कलाकार थे। उनके चारों ओर ऐसे लोग घिर आये जिन्होंने प्रशिक्षण तो नहीं पाया था पर सीखनेके इच्छुक थे: इनमेंसे कुछको स्वयं माताजीने ही चित्र बनानेकी तकनीक सिखलायी।

उसके बाद जब आश्रममें बच्चोंका प्रवेश हुआ तो उनके लिये एक विद्यालय भी खुल गया। विद्यालयमें सब प्रकारकी कलाएं सीखनेकी सुविधा थी। इनमेंसे कुछ बच्चे सचमुच कलाकारके रूपमें खिल उठे। फिर

(शेष आवरण ४ पर)

जिसे भगवान्‌के साथ ऐक्य प्राप्त है उसके लिये हर जगह भगवान्‌का पूर्ण सुख और आनंद है। वह हर जगह और हर परिस्थितिमें हमारे साथ रहता है।

—श्रीमां



Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

Sri Aurobindo

सोसायटी समाचार

इस बार अक्तूबर नवंबरमें डा० महेश्वरीने वाराणसी, गाजीपुर, सहारनपुर, अम्बाला, बड़ौदा, रतलाम, इन्दौर, उज्जैन, मथुरा, फिरोजाबाद आदि स्थानोंपर माताजी और श्रीअरविंदकी शिक्षाके बारेमें भाषण दिये और बहुत-से नये लोगोंको इस मार्गका परिचय दिया।

श्री गोपाल भट्टाचार्यने भी इन्हीं दिनों डिबरूगढ़, डिगबोई, करीमगंज, अगरतला आदि स्थानोंकी यात्रा की और वहां सोसायटीके कार्यके बारेमें बातचीत की।

श्री कृ० न० मजूमदारने करीमगंजके सोसायटी भवनमें ध्यान और साधनाके बारेमें भाषण और लोगोंके प्रश्नोंके उत्तर दिये।

कटकके **तेलंग बाजार** केंद्रने ४ नवंबरको अपना बीसवां वार्षिकोत्सव मनाया।

गुना (मध्य प्रदेश) में डा० शिन्दे और उनकी श्रीमतीने हर रविवारको आसपासके गांवोंमें जाकर स्वास्थ्य-रक्षाके बारेमें बतलानेका काम हाथमें लिया है। ये रोगियोंको देखते और उन्हें होम्योपैथीकी दवाइयां भी देते हैं।

बंग्लोर शाखाके तत्त्वावधानमें १७ से १९ नवंबर तक श्रीअरविंद भवनमें शिशु शिक्षाके बारेमें अध्यापकोंको अमरीकाकी श्रीमती क्लेअरने कुछ वार्ताएं सुनायीं।

अहमदाबाद नगर पालिकाने नवरंगपुराके इलाकेमें एक रास्तेका नाम श्रीअरविंद मार्ग रखा है।

घोषणाएं :

१) १७ से २७ फरवरीतक पांडिचेरीमें डा० महेश्वरी एक स्वाध्याय शिविरकी योजना बना रहे हैं जिसमें श्रीअरविंदकी किसी पुस्तकका अध्ययन होगा। जिन्हें इसमें रस हो वे डा० महेश्वरी, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ से पत्रव्यवहार करें।

२) जिन सदस्योंका चन्दा समाप्त हो रहा है वे शीघ्र चन्दा भेजनेकी कृपा करें ताकि उनके नाम पत्रिका भी नियमित रूपसे जाती रहे।

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

देश-देशान्तरसे कुछ कलाकार आये और यहीं बस गये। कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें लकीर खींचना तक न आता था, यहां आकर अपनी साधनाके रूपमें ही वे खिल उठे।

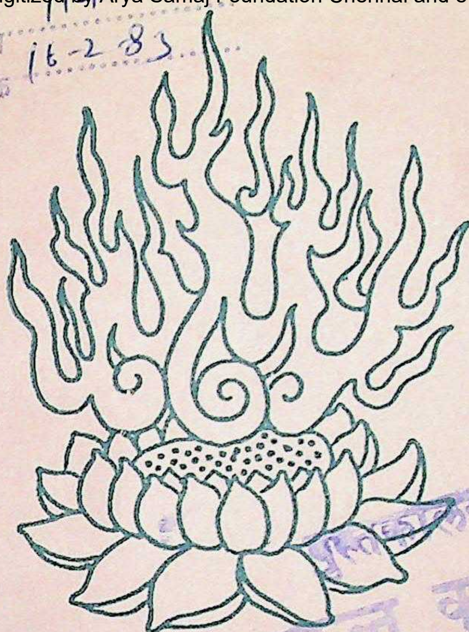
आश्रम बड़े-बड़े कलाकार नहीं तैयार करना चाहता। यहां उद्देश्य है सौंदर्य और आनन्दके बहुविध रूपोंको खोजना, उन्हें आत्मसात् करना और फिर जितना बन पड़े अपने ढंगसे अभिव्यक्त करना।

आश्रमके चित्रसंग्रहमें कोई ढाई हजारसे अधिक चित्र हैं जिनमें कुछ बाहरके कलाकारोंके भी हैं, जो उन्होंने माताजीको भेंट दिये थे।

इस प्रसंगमें माताजी और श्रीअरविंदके कुछ वाक्य उद्धृत करना असंगत न होगा। "सौंदर्य उसका चरण चिह्न है जिसे देखकर हमें पता लगता है कि वह यहांसे गुजरा है।" —श्रीअरविंद

"भौतिक स्तरपर भगवान् आपने-आपको सौंदर्यमें अभिव्यक्त करते हैं।" ——माताजी

कलाकी साधनाके केन्द्रमें भी वही तत्त्व है जो योग साधनाके केन्द्रमें है। दोनोंमें अधिकाधिक सचेतन होना ही लक्ष्य होता है। दोनोंमें तुम्हें ऐसी चीजको देखना और अनुभव करना सीखना होता है जो साधारण दृष्टि और अनुभूतिके परे है। अंदर गहराईमें जाकर वहांकी चीजोंको ऊपर लाना होता है। चित्रकारोंको अपनी आंखोंकी चेतनाको विकसित करनेके लिये साधना करनी पड़ती है जो अपने आपमें लगभग योग है। अगर वे सच्चे कलाकार हैं और परे देखनेकी कोशिश करते हैं और अपनी कलाका उपयोग आन्तरिक जीवनकी अभिव्यक्तिके लिये करते हैं तो वे इस एकाग्रताद्वारा अपनी चेतनामें विकसित होते हैं और यह योगसे मिलनेवाली चेतनासे भिन्न नहीं होगी। तब फिर यौगिक चेतना कलात्मक सृजनमें सहायक क्यों न हो? —माताजी



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

प्रकृतिकी कानाफूसी

फरवरी १९८३ वर्ष १३, अंक ७, पूर्णांक १५१

विषय-सूची

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :
संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

अग्निशिखा दैनन्दिनी

[इस बार हम एक नया स्तम्भ शुरू कर रहे हैं। इसमें महीनेके हर दिनके हिसाबसे माताजी या श्रीअरविंदका एक-एक वाक्य दिया जायगा। कभी-कभी बड़े लेखोंकी अपेक्षा छोटे वाक्य ज्यादा मर्मको छू लेते हैं। लीजिये हर रोज एक वाक्य पढ़िये और अपने अंतरमें बिठाइये।

भाषाको सरल रखनेकी दृष्टिसे भावानुवाद दिया जा रहा है। — सं०]

फरवरी १. मानव प्रगतिमें हमेशा कोई अवास्तविक, अपूर्ण और सन्तप्त चीज होती है।

२. सभी दमन करनेवाले या रोकनेवाले कानून कामचलाऊ होते हैं। वे तभीतक हैं जबतक सच्चा विधान न आ जाय। सच्चे विधानको भीतरसे विकसित होना होगा। वह स्वाधीनतापर रोब न होकर उसकी बाहरी आकृति और दीखनेवाला भाव होगा।

३. हर विचारके अंदर अपने-आपको पूर्ण करनेके लिये एक अधिकार कर सकनेवाली इच्छा-शक्ति होती है।

४. प्रकाश, शान्ति, सामंजस्य, हर्ष, प्रेम, सुन्दरता और आनंद, ये दिव्य प्रकृति हैं।

५. जब हम अज्ञानके विधानमेंसे निकलकर ज्ञानके विधानमें आते हैं तो भगवान्‌की कृपा प्रकट होती है।

६. सन्देह और इंकार हमारे मार्गमें बाधा डालनेवाली शक्तियोंके हथियार हैं।

७. साधनामें सफलताके लिये अचंचल मन और अचंचल प्राण पहली शर्तें हैं। हर्ष और सुख योगके लक्ष्य नहीं हैं।

८. आनंदकी पहली शर्त है सच्ची चेतना, शान्ति, प्रकाश, अचं-

चलता, बल, समता आदिका विकास। लेकिन उच्चतम सुखकी अनुभूति भगवान्‌की उपस्थितिसे ही आती है।

९. अपने-आपको दुःखी, हतोत्साह और निराश न होने दो — चाहे कितनी भी कठिनाइयां क्यों न आयें। अपने-आपको चुपकेसे, सीधी तरह माताजीकी कृपाकी ओर खोलो और उन्हें अपने अंदर परिवर्तन करने दो।

१०. हम जिस अज्ञानमें रहते हैं उसका आवश्यक परिणाम है दुःख और कष्ट। मनुष्य सब प्रकारकी अनुभूतियोंसे, दुख-दर्दसे और उनके विपरीत सुख-चैन तथा हर्षसे भी प्रगति करता है। अगर तुम उन्हें ठीक तरहसे लो तो दोनोंसे बल पाओगे।

११. चेतनाके पूर्ण परिवर्तनसे ही हम इच्छा-मृत्यु और रोग-मुक्ति पा सकते हैं।

१२. साधारण मनुष्यकी सामान्य बुद्धि, भौतिक मनकी वह तंग नगरी है जो तुरन्त होनेवाली चीजोंको जोरसे अनुभव करती है लेकिन भविष्यकी संभावनाओंके प्रति बिलकुल अंधी रहती है।

१३. जो शुरूसे ही पूरा-पूरा समर्पण कर सकते हैं, उनका तो सवाल ही नहीं है। उनका रास्ता तेज और आसान होता है।

१४. मानव मन अभी उस प्रकाशतक नहीं पहुंचा है, उस निश्चित विज्ञानको नहीं पा सका है जहांसे वह कलकी बात भी विश्वासके साथ कह सके।

१५. पेड़ हमेशा अपना ही फल देता है, प्रकृति बहुत मेहनतसे देख-रेख करनेवाली मालिन है।

१६. अगर आदमी पूर्ण आध्यात्मिक एकता पा ले तो किसी एकरूपताकी जरूरत न रहेगी। उस एकताके आधारपर अधिक-से-अधिक भिन्नता भी सुरक्षित है।

१७. जो लोग भगवान्‌से मांगते हैं उन्हें भगवान् मांगी हुई चीज दे देते हैं लेकिन जो मांगते तो कुछ नहीं पर अपने-आपको पूरी तरह दे देते हैं, उन्हें भगवान् वह सब तो देते ही हैं जिसकी वे मांग कर

सकते थे, उसके सिवा अपने-आपको और अपने सहज प्रेमके वरदानको भी देते हैं।

१८. मनुष्यके मनके सामने ऐसी कोई कठिनाई नहीं आ सकती जिसे वह चाहनेपर भी ठीक न कर सके।

१९. संसार राजनीतिज्ञोंसे तो भरा है पर राजनेताओं (स्टेट्स-मेन) से खाली है।

२०. अगर अतिमानस धरतीपर उतरे तो वह निश्चित रूपसे अपने साथ दिव्य जीवन लायेगा और उसे यहां स्थापित कर देगा।

२१. धरतीके तरसने और आनंदको पुकारनेके उत्तरमें अन्य लोकोंसे एक महानता उतरी और स्वर्गको मनुष्य रूप देने लगी।

२२. एक अच्छा यंत्र जो किसी विशेष कामके लिये विशेष अव-स्थाओंमें उपयोगी होता है, उस कामके पूरे हो जाने और परिस्थिति-योंके बदलनेपर भी बना रहे तो बाधा बन जाता है।

२३. हृदय और मन एक वैश्व देन है। मनुष्यके लिये हृदयहीन मन या मनहीन हृदय आदर्श नहीं है।

२४. मानव समाज उसी अनुपातमें सच्ची और महत्त्वपूर्ण प्रगति कर सकता है जिस अनुपातमें कानून स्वाधीनताका बालक बने।

२५. अंतरात्मा जानती है कि वह अपने-आपको व्यर्थमें ही भग-वान्को नहीं देती। वह कोई मांग नहीं करती फिर भी अनन्त संपदा पाती है। वह है भगवान्की शक्ति और उपस्थिति।

२६. कला आध्यात्मिकताकी सेवामें ही अपनी ऊंची-से-ऊंची संभावनाको पा सकती है।

२७. सुरक्षा अपनी निचली क्षमताओंमें पड़े रहनेमें नहीं, ऊंचे-से-ऊंची संभावनाओंकी ओर चढ़नेमें है।

२८. हम अपने जीवनमें केवल हम ही नहीं हैं बल्कि और सबको मिलाकर बनते हैं क्योंकि एक बहुत बड़ी एकता है जिसे हमारा अहं-कार नकार सकता है, उसका विरोध कर सकता है पर उससे बच नहीं सकता।

प्रभु तुम्हारे अंदर विद्यमान हैं

क्षितिजपर देदीप्यमान सूर्यका उदय होता है। वे तुम्हारे भगवान् हैं जो तुमसे मिलने आ रहे हैं।

उनकी महिमाके स्पर्शसे सारा संसार जागता है और आनंदसे उद्यम करता है।

जिस तरह धरती उठती और खुलती है, पेड़ उगते हैं, फूल खिलते हैं, उस पक्षीकी तरह जो गाता है, उस मनुष्यकी तरह जो प्रेम करता है, प्रभुके प्रकाशको अपने अंदर फैलने दो और उसे सतत विकास करने और बढ़नेके सुखमें विकीर्ण होने दो। सुख भी ऐसा जो आकाशमें अविरत गतिसे आगे बढ़नेवाले नक्षत्रोंकी भांति बढ़ता रहे।

— माताजी

यह है प्रकृतिका रहस्य

(प्रत्येक परमाणुके केन्द्रमें परम दिव्य सद्वस्तु छिपी रहती है।)

पार्थिव जीवनके अस्तित्वका हेतु जड़-तत्त्वके केन्द्रमें छिपी हुई आत्माको — जो अंदरसे बाहरकी ओर क्रमशः बढ़ते हुए विकासकी ओर धकेलती है, जगाना, और अंतिम रूपसे प्रकट करना और समग्र रूपमें अभिव्यक्त करना है।

तो, बाहरी रूपोंमें जैसा तुम देखते हो पहले-पहल खनिज जगत् मिलता है जिसमें पत्थर, मिट्टी, धातुएं आती हैं जो हमारी बाहरी चेतनाको बिलकुल निश्चेतन दीखती हैं। फिर भी इस निश्चेतनाके पीछे आत्माका प्राण है, आत्माकी चेतना है जो पूरी तरह छिपी हुई है मानों सोया हुआ लगनेवाले जड़-तत्त्वको धीरे-धीरे, अंदरसे रूपांतरित

करनेके लिये काम करती है, ताकि उसका संगठन अपने-आपको चेतनाकी अभिव्यक्तिके लिये अनुकूल बना सके। और वे कहते हैं कि पहले-पहल जड़-पदार्थका यह परदा इतना संपूर्ण होता है कि ऊपरी दृष्टिसे यही लगता है कि इसमें न तो प्राण है, न चेतना। तुम एक पत्थरको उठाकर सामान्य दृष्टि और चेतनासे देखो तो कहोगे : इसमें जान नहीं है, इसमें चेतना नहीं है। लेकिन जो बाहरी रंग-रूपके पीछे देखना जानता है उसके लिये इस पदार्थके केन्द्रमें — पदार्थके प्रत्येक अणुमें परम दिव्य सद्वस्तु छिपी हुई है जो अंदरसे, धीरे-धीरे, युगोंसे इस जड़-पदार्थको किसी ऐसी चीजमें बदलनेमें लगी है जो अंदरकी आत्माको अभिव्यक्त करनेके लिये काफी व्यंजक होगी। तब जीवनकी कहानीका अनुक्रम आगे बढ़ता है : कैसे पत्थरसे, उसकी विभिन्न. जातियोंमेंसे होते हुए अचानक प्रारंभिक प्राण फूट पड़ा और उसीके साथ एक प्रकारका संगठन, यानी एक जैव तत्त्व जो प्राणको प्रकट करनेमें सक्षम है। लेकिन खनिज और वनस्पति जगतोंके बीच अंतर्वर्ती तत्त्व हैं। पता नहीं चलता कि वे खनिजके अंश हैं या उनसे वनस्पतिका अंश प्रारंभ हो चुका है (विस्तारसे उनका अध्ययन करनेपर अजीब-सी जातियां दिखायी देती हैं जो न यहां की हैं, न वहां की, जो पूरी तरह यहांकी नहीं है और अभीतक वहांकी भी नहीं हो पायीं।) तब वनस्पति जगत्का विकास शुरू होता है जहां स्वभावतः प्राण प्रकट होता है क्योंकि यहां वृद्धि है, रूपांतरण है — पौधेमें अंकुर फूटते हैं, वहां वह बढ़ता और विकसित होता है — जीवनके प्रथम तथ्यके साथ-ही-साथ सड़न और विघटनका तथ्य भी आता है जो पत्थरकी अपेक्षा यहां बहुत तेज होता है। अगर पत्थरको अन्य शक्तियोंके आघातोंसे बचाया जाय तो वह, हमें लगता है, अनिश्चित कालतक रह सकता है। जब कि वनस्पति वृद्धि चढ़ाव, उतार और सड़नके चक्रका अनुसरण शुरू कर देती है — लेकिन यह सब बहुत ही सीमित चेतनाके साथ। जिन्होंने विस्तारपूर्वक वनस्पति-जगत्का अध्ययन किया है वे भली-भांति जानते हैं कि उनमें

2

चेतना होती है। उदाहरणके लिये, वनस्पतिको जीनेके लिये सूर्यकी जरूरत होती है (सूर्य उन्हें वह ऊर्जा देता है जिससे उनकी वृद्धि होती है), तो, अगर तुम किसी पौधेको ऐसी जगह रख दो जहां धूप नहीं आती तो तुम उसे हमेशा धूपतक पहुंचनेके लिये, चढ़ते हुए, कोशिश करते हुए, प्रयास करते हूए देखोगे। उदाहरणके लिये, घने जंगलमें जहां मनुष्य हस्तक्षेप नहीं करता सभी पौधोंमें इस प्रकारका संघर्ष होता है जो एक-न-एक तरहसे धूपको पकड़नेके लिये सीधे चढ़नेका प्रयास करते हैं। यह बड़ा मनोरंजक है। लेकिन अगर तुम कोई गमला दीवारोंसे घिरे छोटे-से आंगनमें रख दो, जहां धूप नहीं आती, तो जो पौधा प्रायः इतना ऊंचा है (संकेत), इतना ऊंचा हो जाता है: वह धूप पानेके लिये प्रयास करते हुए अपने-आपको लंबा खींचता है। फलस्वरूप एक चेतना होती है, जीनेका संकल्प होता है जो अभिव्यक्त हो चुकता है। और फिर थोड़ा-थोड़ा करके जातियोंमें अधिकाधिक विकास होता जाता है। और तुम फिरसे एक ऐसी बीचकी स्थिति देखते हो, जो, अभी पशु तो नहीं है, पर अब वनस्पति भी नहीं है। ऐसी बहुत-सी जातियां हैं जो बहुत मनोरंजक हैं। ऐसे पौधे हैं जो मांसाहारी हैं। उसमें एक मक्खी डालो और, गड़प, वे निगल जाते हैं। ये अब ठीक पौधे नहीं हैं, पर अभीतक पशु भी नहीं बने, इस तरहके बहुत-से पौधे हैं।

तब तुम पशुतक आते हो। पहले जानवरों और पौधोंमें फर्क करना कठिन है। उनमें चेतना नहींके बराबर होती है। फिर तुम जानवरोंकी सभी जातियोंको देखो। तुम उन्हें जानते हो, जानते हो न? उच्चतर पशु जातियां, वास्तवमें बहुत सचेतन होती हैं। उनकी अपनी स्वतंत्र इच्छा-शक्ति होती है। वे बहुत सचेतन और अद्‌भुत रूपसे बुद्धिमान होते है, उदाहरणके लिये, हाथी। तुम हाथी और उसकी अद्‌भुत बुद्धिकी बहुत सारी कहानियां जानते हो। फलस्वरूप यहां मन काफी स्पष्ट रूपसे दिखायी देता है। और इस क्रमिक विकासमेंसे होते हुए हम अचानक उस जातिपर जा पहुंचते

हैं जो शायद गायब हो गयी है (जिसके कुछ अवशेष मिले हैं), यह बन्दरकी जैसी या उसी कुलकी मध्यवर्ती जाति रही होगी। भले वह ठीक बन्दर न हो जैसे हम जानते हैं, पर उसके जैसी जाति -- एक ऐसा पशु जो दो पैरोंपर चलता था। और वहांसे हम आदमी-तक आ पहुंचते हैं। मनुष्यके विकासका एक पूरा प्रारंभ है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसमें बहुत बुद्धिमत्ता दिखायी देती है, लेकिन उसमें मनकी क्रिया शुरू हो चुकती है, स्वाधीनताका आरंभ। इस तरह मनुष्यमें पूरा सप्तक है जिसके शिखरपर है वह व्यक्ति जो आध्यात्मिक जीवनके योग्य हो।

*

जड़-तत्त्वके अंतस्तलमें भागवत उपस्थिति छिपी हुई है। और सारा पार्थिव क्रम-विकास सृष्टिको अपने मूलकी ओर लौटानेकी तैयारी-के लिये हुआ है, उस भागवत उपस्थितिकी ओर लौटानेके लिये जो हर वस्तुके केन्द्रमें है -- यही है प्रकृतिका अभिप्राय।

यह विश्वका परम स्थूल रूप है। मानों अपने-आपको देखनेके लिये, जीनेके लिये, अपने-आपको जाननेके लिये उसने अपने बाहर स्थूल रूप धारण किया हो और संभूतिमें उसे अभिव्यक्त करनेके लिये एक जीवन और चेतना हो जो उसे अपने मूलके रूपमें पहचाननेके योग्य हो और सचेतन रूपमें उसके साथ एक हो जाय। विश्वके अस्तित्वका और कोई उद्देश्य नहीं। पृथ्वी वैश्व जीवनका एक तरहका प्रतीकात्मक स्फटिकीकरण है, छोटा संस्करण है, संकेंद्रण है, ताकि क्रम-विकासका कार्य और उसका अनुसरण अपेक्षाकृत आसान हो जाय। और हम पृथ्वीका इतिहास देखें तो समझ सकेंगे कि विश्व क्यों रचा गया है। सनातन संभूतिमें परम ही अपने प्रति सज्ञान हो रहा है, और लक्ष्य है अभिव्यक्त विश्वमें सृष्टका स्रष्टासे मिलन, एक सचेतन स्वेच्छापूर्ण और स्वतंत्र मिलन।

यही है प्रकृतिका रहस्य। प्रकृति कार्यकारिणी शक्ति है, यही है जो कार्य करती है।

और यह इस सृष्टिको लेती है जो प्रकट रूपमें बिल्कुल अचेतन है पर जिसके भीतर परम चेतना और एकमात्र सद्वस्तु है, और काम करती है ताकि यह सब विकसित हो जाय, आत्म-सचेतन हो जाय और अपनेको पूरी तरह चरितार्थ कर ले। पर वह सब यह शुरूसे नहीं दिखाती। यह धीरे-धीरे विकसित होती है, और इसीलिये प्रारंभमें यह ऐसा रहस्य होती है जो अंतकी तरफ खुलेगा। क्रम-विकासमें मनुष्य अब एक काफी ऊंची अवस्थातक पहुंच गया है और अब यह रहस्य उद्‌घाटित किया जा सकता है, जो कुछ बाहरी अचेतनतामें किया जाता था वह अब सचेतनतासे, स्वेच्छासे किया जा सकता है और इसलिये कहीं अधिक शीघ्रतासे और सिद्धिके आनंदके साथ किया जा सकता है।

मनुष्यमें अब भी देखा जा सकता है कि आध्यात्मिक सत्य विकसित हो रहा है और पूर्णतया एवं मुक्त भावसे अभिव्यक्त होनेवाला है। यही पहले, पशु और पौधेमें यह...। इसे देखनेके लिये बहुत स्पष्ट दृष्टिकी जरूरत थी, लेकिन मनुष्य तो स्वयं इस आध्यात्मिक सत्यसे अवगत है, कम-से-कम अपने मानव जीवनके उच्चतर भागमें तो है ही। मनुष्य यह जानने लगा है कि परम मूल उससे क्या चाहता है और वह उसकी कार्यान्वितिमें सहयोग दे रहा है।

प्रकृति चाहती है कि सृष्टि स्वयंको स्थूल रूपमें अभिव्यक्त स्रष्टा अनुभव करने लगे, अर्थात्, सृष्टि और स्रष्टामें कोई भेद नहीं है और लक्ष्य है सचेतन और संसिद्ध मिलन। यही है प्रकृतिका रहस्य।

छिपी हुई चेतना*

(कौन कहता है जड़-तत्त्व निष्क्रिय है? धातुएं थक जाती हैं। पत्थर अनुभव करते हैं। प्रेम सर्वत्र विराजमान है...)

प्रकृति वास्तवमें अचेतन नहीं है, पर उसका बाह्य रूप अचेतन है। वह शुरू हुई निश्चेतनासे लेकिन निश्चेतनाकी गहराईमें चेतना थी, और यही चेतना धीरे-धीरे विकसित होती है। उदाहरणार्थ, खनिज पदार्थ, पत्थर, मिट्टी, धातुएं, पानी व पवन, सब काफी अचेतन दीखते हैं यद्यपि यदि कोई ध्यानसे देखे...। और अब विज्ञानको पता लग रहा है कि यह केवल बाह्य रूप है, यह सब है संकेन्द्रित ऊर्जा, और स्वाभाविक है कि सचेतन शक्तिने यह सब पैदा किया है। लेकिन ऊपरसे, जब हम चट्टानको देखते हैं तो तुरत यह नहीं सोचते कि यह सचेतन है, यह सचेतन होनेका आभास नहीं देती, यह बिलकुल निश्चेतन दीखती है।

रूप ही निश्चेतन होता है। वह अधिकाधिक सचेतन होता जाता है। खनिज जगत् तकमें कुछ दृश्य मिलते हैं जो प्रच्छन्न चेतनाको प्रकट करते हैं, जैसे कुछ स्फटिक। यदि तुम देखो कि किस सूक्ष्मता, किस यथार्थता और सामंजस्यके साथ यह रचा गया है, यदि तुम जरा भी खुले हो तो तुम यह अनुभव करनेको बाध्य होगे कि इसके पीछे एक चेतना काम कर रही है, यह किसी निश्चेतन संयोगका परिणाम नहीं हो सकता।

क्या तुमने शैल-स्फटिक देखे हैं? ... क्या तुमने कभी नहीं देखा शैल-स्फटिक?

---

*इस वार्ताके प्रकाशनके समय श्रीमांने निम्न सुधार किया : चेतना विकसित नहीं होती, चेतनाका आविर्भाव, इसकी अभिव्यक्ति विकसित होती है : यह अपने-आपको अधिकाधिक व्यक्त करती है।

यह सुन्दर होता है, है न? बहुत कलात्मक होता है यह।

समुद्रकी गतियोंको, व पवनकी गतियोंको देख मनुष्य यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि उसके पीछे कोई चेतना काम कर रही है, बल्कि कई चेतनाएं काम कर रही हैं। असलमें यह ऐसा ही है। सर्वाधिक उथला रूप ही निश्चेतन होता है।

पत्थरोंमें प्रेम

आप कहती हैं, प्रेम सर्वत्र विद्यमान है। इसकी क्रिया पौधोंमें संभवतः एकदम पत्थरोंतकमें भी होती है।

—वार्तालाप (१९२९)

यदि पत्थरमें भी प्रेम है तो उसे हम कैसे देख सकते हैं?

संभवतः पत्थरका निर्माण करनेवाले विभिन्न तत्त्व प्रेमकी चिनगारीके द्वारा ही एक सूत्रमें ग्रथित होते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि जब भागवत प्रेम जड़तत्त्वके अंदर उतरा, यह जड़तत्त्व बिलकुल अचेतन था, इसका एकदम कोई आकार नहीं था, ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब प्रेम जड़तत्त्वमें चेतना ले आनेका प्रयत्न करता है तो उसका परिणाम होता है सामान्य आकारोंका बनना। यदि तुममेंसे कोई व्यक्ति (मुझे संदेह है, पर फिर भी) निश्चतनामें, जिसे विशुद्ध निश्चेतना कहते हैं, उतर जाय तो वह अनुभव करेगा कि वह क्या है। तब उस व्यक्तिको उसके मुकाबले पत्थर अद्भुत रूपमें सचेतन प्रतीत होगा। तुम पत्थरके विषयमें घृणाके साथ बातें करते हो क्योंकि तुम्हारे अंदर उसकी अपेक्षा ठीक एक बूंद अधिक चेतना होती है, परंतु पत्थर और नितांत निश्चेतनाके बीच जो चेतनाका अंतर है वह पत्थर और तुम्हारे बीचकी चेतनाके अंतरसे शायद बहुत अधिक है। और सच पूछो तो एकमात्र

भगवान्‌की आत्माहुतिके कारण ही, जड़तत्त्वके अंदर दिव्य प्रेमके इस अवतरणके कारण ही निश्चेतनाका भीतरसे बाहर आना संभव हुआ है। अतएव, जब मैंने यह कहा था कि संभवतः पत्थरोंतकमें, मैं संभवतः शब्दको निकाल सकती थी — मैं बलपूर्वक कह सकती हूं कि यहांतक कि पत्थरोंमें भी वह विद्यमान है। यदि इस दिव्य प्रेमकी उपस्थिति न हो तो कोई वस्तु नहीं होगी, न तो पत्थर, न धातु और न अणुओंका कोई भी संघटन।

मैंने ऐसे जानवर देखे हैं जो मनुष्य बनना चाहते थे, क्योंकि वे मनुष्योंके साथ रहते थे। उदाहरणके लिये, कुत्ते-बिल्लियां जो मनुष्योंके ज्यादा निकट संपर्कमें थे, उनमें सचमुच मनुष्य बननेकी अभीप्सा थी। मेरे पास एक बिल्ली थी जो अपने बिल्ली होनेके कारण बहुत, बहुत दुःखी थी। वह मनुष्य बनना चाहती थी। उसकी असामयिक मृत्यु हो गयी। वह ध्यान किया करती थी, उसने निश्चय ही एक प्रकारकी अपनी साधना की, और जब वह चली गयी तो उसके प्राणके एक भागने मनुष्यके रूपमें जन्म लिया। उसके अंदर जो थोड़ा-सा चैत्य-तत्व उसकी सत्ताके बीचमें था, वह सीधा मनुष्यमें गया। उस बिल्लीके प्राणका जो अंश सचेतन था वह भी मनुष्यमें गया, लेकिन ये उदाहरण अब अपवादरूप होते हैं।

प्रकाशके लिये प्यास

(पेड़ ऊपरकी ओर क्यों उठता है ?
कौन-सी चीज फूलोंमें सुंदरता जगाती है ? . . .)

जब सूर्य अस्त होता और सब कुछ नीरव हो जाता है, तब क्षण-भरके लिये शांत होकर बैठो और अपने-आपको प्रकृतिके साथ एक कर दो : तुम अनुभव करोगे कि पृथ्वीसे, वृक्षोंकी जड़के नीचेसे प्रगाढ़

प्रेम और कामनासे पूर्ण एक अभीप्सा ऊपर उठ रही है और यह अभीप्सा ऊपरकी ओर बढ़ती हुई तथा वृक्षोंके तंतुओंमेंसे संचार करती हुई उनकी उच्चतम शाखाओंतकमें उठ रही है — उस वस्तुके लिये कामना जो प्रकाश लाती और सुख फैलाती है, उस प्रकाशके लिये जो चला गया है, जिसे वे वापस चाहते हैं। उनमें यह चाह इतनी पवित्र और तीव्र होती है कि यदि तुम वृक्षोंमें होनेवाली गतिको अनुभव कर सको तो तुम्हारी अपनी सत्ता भी उस शांति, उस प्रकाश और प्रेमके लिये हार्दिक प्रर्थना करने लगेगी जो अभीतक यहां अभिव्यक्त नहीं है।

पौधोंमें अभीप्सा

क्या तुमने कभी किसी वनको असंख्य पेड़-पौधों सहित प्रकाशके लिये ऐकांतिक रूपसे संघर्ष करते नहीं देखा है — धूप प्राप्त करनेके लिये उन्हें मुड़ते-तुड़ते और अन्य सब संभव तरीकोंसे यत्न करते नहीं देखा है? भौतिक स्तरपर अभीप्साका अनुभव ठीक यही है — प्रकाशकी प्राप्तिके लिये संवेग, गति एवं प्रेरणा। मनुष्योंकी अपेक्षा पौधोंकी भौतिक सत्तामें यह अधिक मात्रामें होती है। उनका संपूर्ण जीवन प्रकाशकी पूजा है। निःसंदेह प्रकाश भगवान्‌का स्थूल प्रतीक है और सूर्य, जड़प्राकृतिक अवस्थाओंमें, परम चेतनाका प्रतिनिधि है। पौधोंने इसे अपने सरल अंध ढंगसे सर्वथा स्पष्ट रूपमें अनुभव किया है। यदि तुम उनकी अभीप्सासे सचेतन होना जान लो तो तुम्हें पता चलेगा कि उनकी अभीप्सा अत्युत्कट है।

*

ज्योतिके लिये, धूपके लिये, मुक्त वायुके लिये पौधे उगते हैं क्योंकि उनमें एक अभीप्सा होती है।

और पौधोंमें एक प्रकारकी प्रतियोगिता होती है। यदि कोई किसी जंगलमें, उदाहरणार्थ, किसी उपवनमें चला जाय जहां बहुत-से भिन्न-भिन्न प्रकारके पौधे होते हैं तो वह बहुत स्पष्ट रूपमें देख सकता है कि वहां पौधोंमें एक-दूसरेसे आगे निकल जानेकी और ऊपर प्रकाश तथा मुक्त वायु पानेकी प्रतियोगिता होती है। सचमुच यह चीज देखनेमें बहुत अद्भुत होती है।

*

क्या फूल प्रेम करते हैं?

यह उनके प्रेमका रूप है, इस तरह खिलना। निश्चय ही, जब तुम किसी गुलाबको सूर्यकी ओर खिलते देखते हो तो यह अपना सौंदर्य देनेकी आवश्यकताके समान है। लेकिन हमारे लिये इसे समझना लगभग असंभव है क्योंकि वे जो करते हैं उसके बारेमें सोचते नहीं। मनुष्य जो कुछ भी करता है उसमें हमेशा अपने-आपको करते हुए देखनेकी क्षमता जोड़ देता है। यानी, अपने बारेमें सोचता है। अपने काम करते हुए रूपके बारेमें सोचता है। आदमी जानता है कि वह कुछ कर रहा है। जानवर नहीं सोचते। यह प्रेमका वही रूप नहीं है। कहा जा सकता है कि फूल सचेतन नहीं है। यह एक सहज क्रिया होती है, सचेतन, यानी, अपने बारेमें सचेतन क्रिया नहीं, बिल्कुल नहीं। लेकिन इस सबके द्वारा एक महान् शक्ति काम करती है — महान् विश्व चेतना और विश्व प्रेमकी महान् शक्ति जो सभी चीजोंको सौंदर्यमें प्रस्फुटित करती है।

भगवान्‌के कण

(प्रकृति पहले भौतिकमें ऊर्जाके रूपमें प्रकट होती है, यह केवल विज्ञानकी खोज नहीं है, गहरा आध्यात्मिक सत्य और अनुभूति भी है।)

हमें याद रखना चाहिये कि स्थिरता और गति निरपेक्षके उसी तरह मनोवैज्ञानिक प्रदर्शन हैं जैसे एकता और अनेकता। निरपेक्ष स्थिरता और गतिके परे हैं, उसी तरह जैसे वह एकता और अनेकता-के परे है। लेकिन वह अपना शाश्वत विश्राम लेता है एक और स्थिर गतिशील अनेकतामें, अपने ही चारों ओर अनंत, अकल्पनीय, सुरक्षाके साथ चक्कर लगाता है। (जगत्-सत्ता शिवका उल्लास-नृत्य है जो भगवान्‌के शरीरको दृष्टिके आगे अनन्तगुना बढ़ाता है। वह उस श्वेत सत्ताको ठीक वहीं और वैसी ही रहने देता है जैसी वह थी और जहां वह थी, जहां है और सदा बनी रहेगी। उसका एकमात्र परम उद्देश्य है नृत्यका आनन्द।)

—— श्रीअरविंद

फूलोंका अर्थ

सीधे तौरपर वहां एक चेतन जीवन है, प्राण-तत्त्व वहां विद्यमान है और यह प्राण-तत्व ही वह चीज है जो फूलोंको सौंदर्यका बोध प्रदान करता है। परंतु यह शायद उस अर्थमें व्यक्तिभावापन्न नहीं है जिस अर्थमें हम इसे समझते हैं, बल्कि यह जातिका बोध है और जाति सर्वदा उसे अनुभव करनेकी चेष्टा करती है। मैंने चैत्य उपस्थिति और प्रकंपनके प्रथम मूल-रूपको उद्‌भिद् जीवनमें देखा ह, और वास्तव-

में जिस प्रस्फुटनको हम फूल कहते हैं वह चैत्य उपस्थितिका प्रथम प्राकट्य होता है। चैत्य केवल मनुष्यमें व्यक्तिभावापन्न होता है, पर वह मनुष्यसे पहले भी विद्यमान था, परंतु यह उसी प्रकारकी व्यक्तिभावापन्न अवस्था नहीं है जैसी कि मनुष्यमें होती है, यह कहीं अधिक तरल होती है। यह एक शक्तिके, चेतनाके रूपमें प्रकट होती है, न कि व्यक्तित्वके रूपमें। उदाहरणके लिये, गुलाबको ले लो, इसके आकार, रंग, सुगंधकी महान् पूर्णता एक प्रकारकी अभीप्सा तथा चैत्य आत्मदानको प्रकट करती है। सूर्यका प्रथम स्पर्श आनेपर सुबहके समय गुलाबको खिलते हुए देखो, वह अभीप्सा-रूपमें अपूर्व आत्म-दानकी प्रतिमूर्ति होता है।

प्रत्येक पुष्पका अपना विशिष्ट अर्थ होता है, होता है न?

ठीक वैसा नहीं जैसा कि हम इसे मनसे समझते हैं। जब कोई किसी पुष्पको कोई सुनिश्चित अर्थ प्रदान करता है तब उसके मनसे एक भावना निर्गत होती है। पुष्प इस भावनाको उत्तर दे सकता, इस भावनाके स्पर्शसे प्रकंपित हो सकता तथा अर्थको स्वीकार कर सकता है, परंतु पुष्पमें मानसिक चेतनासे मिलती-जुलती कोई चीज नहीं होती। उद्भिद् जगतमें चैत्यका प्रारंभ हो जाता है, पर वहां मानसिक चेतनाका प्रारंभ नहीं होता। पशुओंमें बात दूसरी होती है, वहां मानसिक जीवन रूप लेना आरंभ करता है और उनके लिये वस्तुओंका एक अर्थ होता है। परंतु पुष्पोंमें छोटे-छोटे बच्चोंकी गतिविधि जैसी कोई चीज होती है — यह न तो संवेदन और न अनुभूति होती है, बल्कि दोनोंकी कुछ चीजें होती हैं, यह सहजात गति होती है, बहुत विशिष्ट प्रकंपन होती है। अतएव, कोई यदि उसके संपर्कमें हो, यदि कोई उसका अनुभव करे तो उसपर एक ऐसी छाप पड़ती है जिसे एक विचारके द्वारा रूपांतरित किया जा सकता है। बस, इसी तरह मैंने फूलों और पेड़-पौधोंको अर्थ प्रदान किया

है —– प्रकंपनके साथ एक प्रकारका तादात्म्य होता है, जिस गुणका वह प्रतिनिधित्व करता है उसका बोध प्राप्त होता है और धीरे-धीरे, एक प्रकारके सामीप्यके द्वारा (कभी-कभी यह अचानक आता है, कभी-कभी इसमें देर लगती है), ये प्रकंपन (जो प्राणिक-भावात्मक श्रेणीके होते हैं) पास-पास आ जाते हैं और मानसिक विचारका प्रकंपन भी आ जाता है, और, यदि उस समय पर्याप्त समस्वरता हो तो मनुष्य प्रत्यक्ष रूपमें यह देख लेता है कि पौधोंका क्या अर्थ है।

कुछ देशोंमें (विशेषकर यहां) कुछ विशेष पौधे पूजन-अर्चन और भक्तिके माध्यमके रूपमें व्यवहृत होते हैं। कुछ पौधे विशिष्ट अवसरोंपर प्रदान किये जाते हैं। और मैंने यह बहुधा देखा है कि यह तादात्म्य पौधेके स्वभावसे बिलकुल सामंजस्य रखता था, कारण स्वाभाविक रूपमें, बिना कुछ जाने, मैंने वही अर्थ प्रदान कर दिया जो धार्मिक उत्सवोंमें दिया गया था। वास्तवमें स्वयं फूलमें ही प्रकंपन विद्यमान था....। क्या उसका जो व्यवहार किया गया था उस व्यवहारके कारण वह प्रकंपन आया था अथवा वह बहुत दूरसे, किसी अति गहराईसे, चैत्य जीवनकी प्रारंभिक अवस्थासे आया था? यह कहना कठिन है।

*

मां, जब फूल आपके पास लाये जाते हैं तो आप उन्हें किस तरह अर्थ प्रदान करती हैं?

फूलोंको? यह भी उसी तरह से। फूलकी प्रकृतिके साथ, उसके आंतरिक सत्यके साथ संपर्क पैदा करके। तब यह मालूम होता है कि वह किसका प्रतीक है।

एक प्रार्थना

१ अप्रैल, १९१७

तूने मेरी मौन और सतर्क अंतरात्माको परी-लोकके दृश्योंकी समस्त चमक-दमक दिखा दी है: उत्सव-मग्न वृक्षोंको तथा सूने मार्गोंको, जो आकाशकी ओर ऊपर उठते हुए प्रतीत होते हैं, तूने दिखला दिया है।

परंतु मेरे भविष्यके विषयमें तूने मुझे कुछ नहीं बताया है — क्या वह इस हदतक मुझसे छिपा रहेगा? . . .

फिरसे और सर्वत्र मैं चेरी वृक्षोंको देख रही हूं, तूने इन फूलोंमें एक जादूका गुण भर दिया है: ऐसा मालूम होता है मानों वे तेरी अद्वितीय उपस्थितिकी वात कह रहे हों, वे अपने साथ भगवान्की मुस्कान ले आते हैं।

मेरा शरीर विश्राम ले रहा है और मेरी अंतरात्मा खिल रही है: इन फूलोंसे भरे वृक्षोंमें तूने कैसी मोहिनी शक्ति भर दी है?

ऐ जापान! सदिच्छा-रूपी तेरा कीमती पहनावा ही उत्सव मना रहा है, यही तेरी पूजाकी सबसे पवित्र सामग्री है, यह तेरी ऐकांतिक अनुरक्तिका चिह्न है, यही तेरे यह कहनेका तरीका है कि तू स्वर्गको प्रतिफलित कर रहा है।

और अब वह देखो अद्‌भुत प्रदेश जिसके ऊंचे-ऊंचे पर्वत देवदार वृक्षोंसे ढके हुए हैं और जिसकी घाटियां खेतोंसे हरी-भरी हैं। और गुलाबी रंगके जिन छोटे-छोटे गुलाबोंको यह चीनी मनुष्य ला रहा है, क्या वे निकट भविष्यके लिये कोई आशा दिलाते हैं।

सुगंधित प्रार्थनाएं

अगर हम उनकी बात सुनना जानें तो

१. फूल हमसे बातें करते हैं। -- यह सूक्ष्म और सुगंधित भाषा होती है।

२. फूल बहुत ग्रहणशील हैं और उनसे प्रेम किया जाय तो वे खुश होते हैं।

*

जब दुःख अत्यधिक हो तो हमेशा उसीमें पड़े रहनेसे कैसे बचा जाय ?

३. किसी सुन्दर फूलको निहारो।

*

पौधोंमें संवेदन होते हैं, वे जीवित हैं। उनके साथ निष्ठुरतासे व्यवहार मत करो।

*

साधारणतः अगर पौधे कमरेमें बन्द रहें तो कष्ट पाते हैं।

उनका सारा जीवन प्रकाशकी पूजा है

फूल? जबतक वे ताजा रहें तबतक उन्हें रखो, और जब वे ताजा न रहें, तो उन्हें इकट्ठा करके मालीको दे दो (अपने परिचित किसी भी मालीको दे सकते हो), ताकि वह और फूल उत्पन्न करनेके लिये उन्हें भूमिमें डाल दे। हां, भूमि हमें जो देती है वह उसे लौटाना चाहिये, वरना वह अनुपजाऊ बन जायगी।

*

पौधोंमें एक महान् प्राणिक शक्ति होती है। और यह प्राणिक शक्ति बहुत हदतक कार्य करती है। और फिर जातिकी एक सहज-प्रतिभा भी होती है जो एक प्रकारकी चेतना होती है। वहां पहलेसे ही एक सक्रिय चेतना मौजूद होती है जो पौधोंमें कार्य करती है।

और जातीय प्रकृतिमें चैत्य प्रभावोंके प्रति प्रत्युत्तर देनेकी प्रारंभिक अवस्था होती है — बिलकुल प्रारंभिक, अविकसित भले हो, पर होती है, और कुछ फूल अपने पौधोंमें विद्यमान चैत्य भाव और अभीप्साकी सुस्पष्ट अभिव्यक्ति होते हैं, और वह भाव और अभीप्सा अपने-आपमें तो खूब सचेतन नहीं होती, पर एक स्वाभाविक वेगके रूपमें विद्यमान होती है।

यह बिलकुल निश्चित है कि यदि तुम्हारे अंदर, उदाहरणार्थ, किसी पौधेके लिये विशेष प्रेम हो, यदि भौतिक रूपमें उसकी देख-रेख करनेके अतिरिक्त, तुम उसे प्यार करते हो, यदि तुम उसके साथ घनिष्ठता अनुभव करते हो तो वह भी, उसे अनुभव करता है : उसका प्रस्फुटन बहुत अधिक सुसमंजस, सुखकर होता है, उसकी वृद्धि यथासंभव सर्वोत्तम होती है, और उसका जीवन दीर्घ होता है। इस सबका

तात्पर्य है स्वयं पौधेमें प्रत्युत्तर देनेकी शक्ति। परिणामतः, पौधेके अंदर एक विशेष प्रकारकी चेतना विद्यमान है, और अवश्यमेव उसके अंदर एक प्राण-सत्ता है।

फूलोंके द्वारा संरक्षण

फूल बहुत ग्रहणशील होते हैं। वे सभी फूल, जिन्हें मैंने अर्थ दिया है, उस शक्तिको ठीक प्रकार ग्रहण करते हैं जो मैं उनमें डालती हूं और वे उस शक्तिको आगे बढ़ाते हैं। लोग उसे हमेशा ग्रहण नहीं कर पाते क्योंकि वे बहुधा फूलकी अपेक्षा कम ग्रहणशील होते हैं, और अपनी अचेतना और ग्रहणशीलताके अभावके कारण उस शक्तिको बरबाद करते हैं जो उनमें डाली जाती है। लेकिन शक्ति उपस्थित है, और फूल उसको अद्‌भुत रूपसे ग्रहण करता है।

मुझे यह बहुत पहलेसे मालूम था। पचास साल हो गये...। एक गुह्यवादी थे जिन्होंने मुझे दो सालतक गुह्यवाद सिखाया था। उनकी श्रीमतीजी एक अद्‌भुत अन्तर्दर्शी थीं और उनमें — ठीक इसी तरह — शक्ति संचारित करनेकी क्षमता थी। वे तेमसेममें रहते थे। मैं पैरिसमें थी। हमारी चिट्‌ठी-पत्री चलती थी। मैंने उन्हें अभी देखा भी नहीं था। और फिर, एक दिन, एक चिट्‌ठीमें उन्होंने मुझे अनारके फूलकी पंखुड़ियां भेजीं, भागवत प्रेमकी। उस समय मैंने फूलको आध्यात्मिक नाम नहीं दिया था। उन्होंने मुझे अनारकी पंखुड़ियां भेजीं, इस संदेशके साथ कि ये पंखुड़ियां उनकी सुरक्षा और शक्तिको ला रही हैं।

अब, उन दिनों मैं अपनी घड़ी गलेमें लटकी एक जंजीरमें लगाकर पहना करती थी। अभी हाथकी घड़ियां नहीं चली थीं या बहुत कम थीं। और अठारहवीं शताब्दीका एक छोटा-सा आवर्धक लेन्स

भी था . . . वह बहुत ही छोटा था, बस, इतना-सा, (माताजी संकेत करती हैं) . . . । और उसमें दो लेंस थे, है न, जैसे सब पढ़नेके चश्मोंमें होते हैं, एक छोटे-से सुनहरे फ्रेममें दो लेंस लगे थे और वह मेरी जंजीरमें लटके रहते थे। अब, दोनों शीशोंके बीच मैंने इन पंखुड़ियोंको रख दिया और वे हमेशा मेरे साथ रहती थीं क्योंकि मैं उन्हें अपने पास रखना चाहती थी, मुझे इस महिलापर विश्वास था, है न, और मैं जानती थी कि उनमें शक्तियां थीं मैं उन्हें अपने पास रखना चाहती थी और हमेशा एक प्रकारकी ऊर्जा, ऊष्मा, विश्वास, शक्ति अनुभव करती थी जो इस चीजसे आती थी . . . मैं यह सोचती नहीं थी, समझे, मुझे यह अनुभव होता था।

और फिर, अचानक एक दिन, मुझे बहुत खाली-खाली-सा लगा, मानों कोई सहारा जो वहां था चला गया हो। कोई बहुत अप्रिय चीज थी। मैंने कहा : "यह तो अजीब है, बात क्या है? मेरे साथ कोई अप्रिय चीज नहीं घटी। मुझे ऐसा क्यों लग रहा है, इतनी खाली, शक्तिहीन?" और शामको, जब मैंने अपनी घड़ी उतारी, तो देखती क्या हूं, एक शीशा उतर गया था और सभी पंखुड़ियां गायब थीं। एक भी पंखुड़ी नहीं बची थी। तब मैं सचमुच जान पायी कि उनमें काफी शक्ति थी, क्योंकि कारण जाने बिना ही मैंने फर्क महसूस किया था। मैं कारण नहीं जानती थी, फिर भी मुझे काफी लगा था। तो इसके बाद मैंने देखा कि किस तरह फूलोंका उपयोग उनमें शक्तियां भरनेके लिये कर सकते हैं। वे बहुत ही ग्रहणशील होते हैं।

तरकारियां बोलती हैं

टोकियोमें मेरा एक बगीचा था। और इस बगीचेमें मैं खुद सब्जियां उगाया करती थी। मेरा बगीचा काफी बड़ा था और बहुत-सी तरकारियां पैदा होती थीं। इसलिये रोज सुबह पौधोंको

सींचने आदिके बाद टहलने निकलती थी। मैं चारों ओर घूमा करती थी ताकि खानेके लिये कोई सब्जी चुन सकूं। और कल्पना करो, कई तरकारियां ऐसी थीं जो मुझसे कहा करती थीं : नहीं, नहीं, नहीं, नहीं।...और फिर कुछ ऐसी थीं जो पुकारती थीं, मैं उन्हें दूरसे देखती और उन्हें यह कहते हुए सुनती : मुझे लो, मुझे लो, मुझे लो। इसलिये काम बहुत आसान होता था। जो चाहती थीं कि उन्हें लिया जाय मैं उन्हींको लेती थी और जो न चाहती थीं उन्हें छूतीतक न थी। मैं सोचा करती थी कि यह कोई असाधारण चीज है। मुझे अपने पौधोंसे बहुत प्यार था, मैं उनकी देखभाल किया करती थी, उन्हें सींचते साफ करते समय मैंने उनमें बहुत-सी चेतना डाली थी। इसलिये मुझे लगता था कि उनमें शायद कोई विशेष क्षमता थी।

लेकिन फ्रांसमें भी यही चीज थी। दक्षिण फ्रांसमें भी मेरा एक बगीचा था जहां मैं मटर, मूली, गाजर लगाया करती थी। हां तो उनमेंसे कुछ ऐसी थीं जो खुश थीं, जो चाहती थीं कि उन्हें तोड़कर खाया जाय, और कुछ ऐसी थीं जो कहा करती थीं : नहीं, नहीं, नहीं, मुझे मत छुओ, मुझे मत छुओ। (हंसी)

मधुर मां वे इस तरह क्यों कहा करती थीं ?

हां, इसका ठीक पता लगानेके लिये मैंने परीक्षण किया। और परिणाम हमेशा एक-सा नहीं आया। कभी-कभी तो इसलिये कि पौधा खानेलायक न था, वह अच्छा न था, या कड़वा था, खानेलायक न था। कभी-कभी वह तैयार न होता था, उसका समय न होता था। वह पका न था। एक-दो दिन प्रतीक्षा करके, दो-एक दिन बाद वह मुझसे कहता, मुझे लो, मुझे लो, मुझे लो। (हंसी)

पेड़ शिकायत करते हैं

हमारे एक बंगलेमें एक विशाल वृक्ष है। अपने-आपको चारों ओर फैलाता हुआ वह आस-पासके अन्य पौधों और पेड़ोंके विकासको रोक देता है। विभागाध्यक्षने बहुत दिनोंतक सोचा और एक दिन उस विशाल वृक्षको काट डालनेका निश्चय किया। अगले दिन जब वे माताजीसे मिले तो उसकी चर्चा की और माताजीसे पेड़ काटनेकी स्वीकृति मांगी। उनको यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि पिछली रात पेड़में रहनेवाली सत्ता माताजीके पास आयी थी और विनती कर गयी थी कि पेड़को परेशान न किया जाय और उसे वहीं रहने दिया जाय। स्पष्ट है कि पेड़में रहनेवाली सत्ताने साधक क्या निश्चय कर रहा है यह जान लिया था और उससे भी पहले माताजीके पास पहुंच कर साधकसे आगे निकल गयी। माताजीने कहा पेड़को रहने दो।

*

आरोविलकी देखभाल करनेवाले 'अ' से माताजीने एक दिन कहा कि वहां जो बड़ा बड़का पेड़ है उसे कुछ तकलीफ हो रही है। क्योंकि पिछली रात वह माताजीके पास आया था और अपना कष्ट बतलाया था।

तुरंत पूछताछ की गई। पता चला कि कल काम समाप्त होने-के बाद किसीने लापरवाहीसे एक बड़ा चाकू पेड़के तनेमें खोंप कर छोड़ दिया था।

— माधव पंडित

अगर तुम हमेशा मुस्कराते रह सको तो हमेशा युवा रहोगे।

—श्रीमां

पशुओंमें सहज बोध

(मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंकी इन्द्रियां अधिक पूर्ण होती हैं)

एक बुद्धि है जो उसकी प्रकृति द्वारा और उसके अंदर, उसके कर्मके अंदर कार्य करती है, पर वह उस बुद्धिके विषयमें सचेतन नहीं है। तुम पशुओंके द्वारा इसे समझ सकते हो। उदाहरणके रूपमें, चींटियोंको ले लो। वे ठीक वही काम करती हैं जो उन्हें करना चाहिये, उनका समस्त कर्म और समूचा संगठन सचमुच एक पूर्ण वस्तु है। परंतु उन्हें उस बुद्धिका ज्ञान नहीं होता जो उनका संगठन करती है। वे एक बुद्धिके द्वारा यंत्रवत् परिचालित होती हैं जिसके विषयमें वे अवगत नहीं होतीं। और यदि तुम अत्यंत विकसित पशुओंको भी लो, जैसे, बिल्ली और कुत्तेको, वे ठीक उसी चीजको जानते हैं जो उन्हें करनी चाहिये : अपने बच्चोंको शिक्षा देने-वाली बिल्ली उतने ही अच्छे ढंगसे उन्हें शिक्षा देती है जैसे कोई स्त्री अपने बच्चोंको (कभी-कभी तो स्त्रीकी अपेक्षा अधिक अच्छे रूपमें), पर बिल्ली एक ऐसी बुद्धिसे चालित होती है जो उसे मशीनकी तरह चलाती है। वह उस बुद्धिके विषयमें सचेतन नहीं होती जो उससे कार्य कराती है। वह सज्ञान नहीं होती, वह अपनी निजी इच्छासे अपने कार्यके अंदर किसी भी प्रकारका कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। कोई चीज उसे यंत्रवत् कार्यमें प्रवृत्त करती है पर उसके ऊपर उसका कोई अधिकार नहीं होता।

पथपर चलनेके लिये तुम्हारे अंदर अदम्य साहसका होना जरूरी है।

— श्रीमा

मनुष्यके सम्पर्कमें पशु

पशुओंकी इन्द्रियां मनुष्योंकी इन्द्रियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक पूर्ण होती हैं। उदाहरणार्थ, मैं चुनौती देती हूं कि तुम किसी आदमीको उसी तरह खोज निकालो जैसे कि एक कुत्ता ढूंढ़ लेता है।

इसका मतलब है कि क्रमविकासके मोड़पर अथवा यों कहें कि उसकी चक्राकार गतिके अंदर पशु (और इस प्रकारके अधिक पशु वे हैं जिन्हें हम उच्चतर पशु कहते हैं, क्योंकि वे अधिक घनिष्ठ रूपमें हमसे मिलते-जुलते हैं) अपनी जातिकी आत्माके द्वारा शासित होते हैं जो एक बहुत ही चेतन चेतना है। मधुमक्खियां, चींटियां जातिकी इस आत्माका अनुसरण करती हैं जो एक बिलकुल विशेष प्रकारकी होती है। और जिसे पशुओंकी सहज-प्रवृत्ति कहते हैं वह महज जातिकी आत्माकी आज्ञानुवर्तिता है जो यह सर्वदा जानती है कि क्या चीज करनी चाहिये और क्या नहीं करनी चाहिये। इसके बहुत सारे उदाहरण हैं, समझे। तुम एक गायको चरागाहमें छोड़ दो, वह चारों ओर घूमती है, सूंघती है, और एकाएक अपनी जीभ बाहर निकालती है और घासका एक पत्ता झपट लेती है। उसके बाद वह फिर इधर-उधर घूमती है, सूंघती है, और घासकी दूसरी कलंगी ले लेती है, और इसी भांति वह चरती रहती है। क्या किसीने इन अवस्थाओंमें कभी किसी गायको विषैली घास खाते हुए देखा है? परंतु इस गरीब जानवरको किसी बाड़ेमें बंद कर दो, थोड़ी-सी घास इकट्ठी करके उसके सामने रख दो, और वह गरीब जानवर, जिसने अपनी सहज प्रवृत्ति खो दी है, क्योंकि अब वह मनुष्यका (क्षमा करना) अनुसरण करता है, बाकी घासोंके साथ-साथ विषैली घासको भी खा लेता है। ऐसी तीन घटनाएं हम यहां देख चुके हैं, तीन गायें, जो विषैली घास खानेके कारण मर गयीं। और इन अभागे

जानवरोंमें, अन्य जानवरोंकी तरह, मानवकी श्रेष्ठताके प्रति एक प्रकारका आदर-भाव होता है (जिसे मैं असमर्थनीय कह सकती हूं) —यदि वह (मनुष्य) गायके सामने विषैली घास रख देता और उसे खानेको उससे कहता है तो वह उसे खा लेती है। परंतु तुम उसे स्वतंत्र छोड़ दो, अर्थात्, जातिकी आत्मा और उसके बीच कोई चीज हस्तक्षेप न करे, तो वह ऐसा कभी नहीं करेगी। जो पशु मनुष्यके समीप रहते हैं वे सब अपनी सहज-प्रेरणा खो देते हैं, क्योंकि उनमें इस जीवके प्रति एक प्रकारका भक्तिपूर्ण आदर-भाव है जो उन्हें बिना किसी कठिनाईके आश्रय और भोजन दे सकता है —और थोड़ा-सा भय भी होता है, क्योंकि वे जानते हैं कि मनुष्य जो कुछ चाहता है उसे वे यदि नहीं करेंगे तो वे पीटे जायेंगे।

यह बहुत विचित्र बात है, वे अपनी क्षमता खो देते हैं। कुत्तोंको देखो, जैसे, गडरियेका कुत्ता जो भेड़ोंके झुंडके साथ मनुष्योंसे बहुत दूर रहता है और जिसका स्वभाव बहुत स्वतंत्र होता है (वह कभी-कभी घर आता हैं और अपने मालिकको अच्छी तरह पहचानता है पर बार-बार उससे मिलता नहीं), उसे यदि सांप काट देता है तो वह एक कोनेमें बैठ जाता है, शरीरके उस स्थानको चाटता है और तबतक आवश्यक सभी बातें करता रहता हैं जबतक कि वह निरोग नहीं हो जाता। परंतु वही कुत्ता जब तुम्हारे साथ रहता है और उसे सांप काट देता है तो वह चुपचाप मनुष्यकी तरह मर जाता है।

*

अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पशु कभी जरूरतसे ज्यादा नहीं खाते वे अपनी भूखके अनुसार खाते हैं और अगर कुछ खाद्य बचा हो और वे नहीं चाहते कि उसे दूसरे साफ कर जायं तो वे उसे छिपा लेते हैं, गाड़ देते हैं, उसे बड़ी सावधानीसे छिपाते हैं ताकि जब उन्हें भूख

लगे तो उसे पा सकें। लेकिन मनुष्यके साथ रहनेवाला जानवर इस सहज बोधको खो बठता है, सिर्फ यही नहीं कि उसे जो कुछ दिया जाय उसे चट कर जाता हैं बल्कि उसकी पहुंचमें जो कुछ छूट जाय उसे भी खा जाता है। मैं कुछ समय दक्षिण फ्रांसके एक छोटे-से नगरमें रही थी। वहां एक पंसारी था जिसने बकरियां पाल रखी थीं। उनमेंसे एक बहुत लालची हो गयी थी। उसके पास शीरेका एक पीपा आया था। तुम उसे क्या कहते हो? शीरा या गुड़? उसने पीपा खोला, उसने ढक्कन खोला पर उसे बंद करना भूल गया। पीपा वहां था और बकरी उधर घूम रही थी। बकरीने सोचा, यह खाने लायक अच्छी चीज होगी तभी उसकी पहुंचके अंदर छोड़ी गयी है। उसने खाना शुरू किया। उसका स्वाद सचमुच बहुत अच्छा लगा। उसका सहज बोध तो जा चुका था। वह खाती गयी, खाती गयी, यहांतक कि अधिक खानेकी वजहसे सचमुच मर गयी। कोई जंगली जानवर ऐसा कभी न करता। आदमीके संगके ये लाभ हैं।

अद्भुत प्राणी

(पशुओंमें वे सब प्रतिक्रियाएं, भाव और अनुभव होते हैं जिनपर मनुष्य इतना गर्व करता है)

जानवरोंमें भी कभी-कभी बहुत तीव्र चैत्य सत्य विद्यमान रहता है। स्वभावत: ही, मैं समझती हूं कि एक पशुकी अपेक्षा एक बालक-में चैत्य पुरुष कुछ अधिक सचेत होता है। परंतु मैंने जानवरोंके साथ, केवल जाननेके लिये, परीक्षण किये हैं, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि मनुष्योंमें मैंने कुछ गुणोंको बहुत शुद्ध, बहुत सरल रूपमें बहुत ही विरल लोगोंमें देखा है। उन्हीं गुणोंको मैंने पशुओंमें देखा

है, जैसे बिल्लियोंमें। मैंने बिल्लियोंका बहुत अध्ययन किया है, यदि कोई उन्हें भी भली प्रकार जाने तो वे अद्‌भुत प्राणी हैं। मैंने ऐसी माता-बिल्लियोंको देखा है जिन्होंने अपने बच्चोंके लिये पूर्णतः अपने-आपको उत्सर्ग कर दिया — लोग इतने अधिक आदरके साथ मातृ-प्रेमकी चर्चा करते हैं, मानों यह शुद्ध रूपमें कोई मानवीय विशेषत्व हो। परंतु मैंने माता-बिल्लियोंके अंदर साधारण मनुष्यकी क्षमताके परेकी मात्रामें इसे अभिव्यक्त होते हुए देखा है। मैंने एक माता-बिल्लीको देखा है जो तबतक अपना खाना कभी छूती भी नहीं थी जबतक कि उसके बच्चे अपनी आवश्यकताके अनुसार ग्रहण न कर लें। मैंने एक दूसरी बिल्लीको देखा है जो आठ दिनतक लगातार अपने बच्चोंके पास, स्वयं अपनी कोई आवश्यकता पूरी किये बिना पड़ी रही, क्योंकि वह उन्हें अकेले छोड़नेसे डरती थी, और एक बिल्ली अपने बच्चेको यह सिखानेके लिये कि एक दीवालसे एक जंगलतक कैसे कूदना चाहिये, पचास बारसे अधिक एक ही क्रिया दुहराती रही और मैं इतना और जोड़ दूं कि वह ऐसी सावधानी, बुद्धिमत्ता, कुशलताके साथ करती रही जो बहुत-सी अशिक्षित औरतों-में नहीं होती।

मनुष्योंसे विकृति शुरू होती है

(प्रकृतिमें दुर्भावना होती है — या फिर मनुष्यकी ओरसे उपहार है? . . .)

पशुओंमें दुर्भावना नहीं होती, होती है क्या?

मुझे नहीं लगता। मैं पूरे पक्के तौरपर नहीं कह सकती क्योंकि मैं पशुओंकी सभी जातियोंको नहीं जानती। परंतु मैंने ऐसी चीजें

सुनी हैं जो हमें अति विरूप मालूम होती हैं, लेकिन दुर्भावनाके उदाहरण बिल्कुल नहीं है। उदाहरणके लिये, कीट जगत्को ले लो। सभी पशु जातियोंमेंसे इसीके अंदर यह चीज सबसे ज्यादा होती है जिसे हम दुष्टता कहते हैं —या जिसे दुर्भावना कहा जा सकता है, हालांकि यह भली-भांति हो सकता है कि यह हमारी ही चेतना हो जो उनकी चेतनापर लागू होकर दुष्टता और दुर्भावनाकी गति देखती है...। ऐसे कीड़े हैं जिनके डिंभक केवल जीवित वस्तुओंपर ही जी सकते हैं। वे जीवित प्राणीको ही खा सकते हैं। मृत मांससे उनका पोषण नहीं होता। इसलिये जो कीड़ा अंडे देनेवाला होता है (जो अंडे डिंभकमें बदल जायेंगे), वह किसी दूसरे कीड़े या ज्यादा निचले प्राणीको डंक मारकर सुन्न कर देता है और उसके बाद बहुत धीमे उसके अंदर अंडे इस तरह दे देता है कि जब अंडे फूटें तो डिंभक उस सुन्न परंतु जीवित जानवरको खा सकें। यह माकियावेलीकी-सी बात है, है न? यह तो स्पष्ट ही है कि यह तर्कणाका परिणाम नहीं है। यह सहज-बोध है। क्या इसे दुर्भावना कहा जा सकता है? क्या यह दुर्भावना है?.. यह केवल प्रजननका सहज-बोध है।

शायद, अगर हम यह कहें कि इन कीड़ोंका संचालन इनकी जातीय आत्मा करती है जो अपने-आपमें सचेतन है, जिसमें सचेतन इच्छा-शक्ति होती है, तो हम कह सकते हैं कि ये सब कल्पनाएं (मैं तुम्हें यह एक उदाहरण दे रही हूं, लेकिन ऐसे अनगिनत उदाहरण मिल सकते हैं, ऐसे ही भयंकर और मानव चेतनाकी दृष्टिसे ऐसे ही विरूप), ये सब सत्ताएं, ये सब गढ़नेवाले जिन्होंने इन कीड़ोंकी रचना की, बहुत ही भयंकर सत्ताएं होंगे। तुम्हें नहीं लगता? उनमें बहुत ही भ्रष्ट और पैशाचिक कल्पना होती है। यह बिल्कुल संभव है, वास्तवमें कहा जाता है कि कीट जातिका मूल प्राणिक स्रोतमें है, यानी, ऐसी सत्ताएं जो जगत्में दुर्भावनाका प्रतीक ही नहीं है बल्कि प्रतिनिधि भी हैं, और जगत्की

दुर्भावनापर ही जीती हैं। ये अपनी दुर्भावनाके बारेमें बहुत सचेत होती हैं और यह जान-बूझकर की जाती हैं। मनुष्योंकी दुर्भावना साधारणतः प्राण जगत्‌की सत्ताओंकी दुर्भावनाकी छाया — एक नकल या छाया — होती है। उनकी भावना स्पष्ट रूपसे सृष्टिके विरुद्ध होती है, वह चीजोंको कष्ट-दायक, कुरूप दुःखपूर्ण और जितना हो सके उतना विरूप बनाना चाहती है। इसलिये शायद कोई जाति . . .। लेकिन वे जान-बूझकर अशुभका प्रतिनिधित्व नहीं करते समझे, वे जान-बूझकर अशुभ नहीं करते। वे इसलिये करते हैं क्योंकि यह उनकी प्रकृतिमें है। मैं जिसे दुर्भावना कहती हूं वह सचमुच अशुभ करनेके लिये अशुभ करनेकी इच्छा है, नष्ट करनेके लिये नष्ट करना, तकलीफ पहुंचानेके लिये तकलीफ पहुंचाना और बुरा करनेमें मजा लेना। यह वास्तवमें दुर्भावना है। मुझे लगता है कि अहंकार मनके जन्मके साथ शुरू होता है (लेकिन मैं निश्चयके साथ नहीं कह सकती क्योंकि हमेशा नयी-नयी चीजोंकी खोज हो रही है)। लेकिन मैंने जानवरोंमें जो देखा है, विशेषकर उच्चतर जानवरोंमें, वह शायद सुरक्षाका सहज-बोध हो, हो सकता है उग्रता हो या अंधकारमय पाशविक प्रतिक्रियाएं हों — क्या वह सचमुच वह है जिसे दुर्भावना कहा जाता है? . . . संभव है। अगर कोई मुझे ऐसी कहानी सुनाये जो स्वयं उसने देखी है और जो इससे उलटी बात सिद्ध करती है तो मैं उसे करनेको स्वीकार तैयार हूं, लेकिन अभीतक तो मैंने ऐसी चीज नहीं देखी। मैं पशुओंके बारेमें जो जानती हूं वह इतना ही है कि उनका सहज-बोध उन्हें क्रिया करनेके लिये प्रेरित करता है, लेकिन उनमें वह विकृति नहीं होती जो मानव मनमें है। मुझे लगता है कि मनुष्य इस प्रकारकी मनकी क्रियाके आरंभ होनेसे और प्राणके सीधे प्रभावमें आकर ही दुर्भावनापूर्ण सत्ता बना है। दानव दुर्भावनापूर्ण सत्ताएं हैं, परंतु दानव प्राण लोककी ऐसी सत्ताएं हैं जो प्रकृतिकी शक्तियोंमें प्रकट होती हैं। दानव बुरा करनेके रसके लिये बुरा करते हैं, नष्ट करनेका मजा लेनेके लिये नष्ट करते हैं।

मनुष्य प्रायः बिल्लियोंकी दुष्टताकी बात करते हैं, उदाहरणके लिये वह चूहेको खानेसे पहले उसके साथ खेलती है, बच्चोंको यह उदाहरण दिया जाता है। लेकिन मैंने बिल्लियां देखी हैं। मैं जानती हूं कि वे क्या करती हैं। यह बात बिल्कुल सच्ची नहीं है। वे यह चीज दुर्भावनाके साथ बिलकुल नहीं करतीं। साधारणतः चीज इस तरह होती है: मां-बिल्ली अपने बच्चोंके लिये शिकार करती है और एक चूहा पकड़ती है। अगर वह चूहा बच्चेको यूंही पकड़ा दे तो वह उसे न खा सकेंगे क्योंकि वह सख्त और कड़ा होता है और वे इतना सख्त, कड़ा मांस नहीं खा सकते। और उस समय यह मांस अच्छा नहीं होता। इसलिये बिल्ली उससे खेलती है, जो खेलनेके जैसा लगता है, उसे उठाती, पटकती, बेलती है, उसे दौड़ने देती है, उसके पीछे दौड़ती है जबतक कि वह बिलकुल नरम न हो जाय। जब मांस अच्छी तरह गुंध जाता है, खानेलायक तैयार हो जाता है तब वह छोटे बच्चोंको दे देती है जो उसे खा सकते हैं। निश्चय ही बिल्लियां यह सब खेल खेलनेके आनंदके लिये नहीं खेलतीं। देखो, पहले वे शिकार करती हैं और फिर भोजन तैयार करती हैं। उनके पास न तो चूल्हा होता है, न आग जिसपर पकाकर मांसको नरम बनाया जा सके। उन्हें उसे तैयार करना और खानेलायक बनाना होता है।

निगलनेकी इच्छा

लेकिन यह भी कहा जाता है कि जीवित प्राणियोंमें प्रेमकी पहली अभिव्यक्ति हड़प लेनेकी इच्छामें होती है जिसमें निगल जानेकी, आत्मसात् करनेकी इच्छा होती है। एक उदाहरण है जिससे यह प्रमाणित होता हुआ लगता है कि यह बात एकदम गलत नहीं है। जब शेर अपने शिकारको या सांप अपने शिकारको पकड़ता है तो शेर और

सांप, दोनोंके शिकार अपने-आपको एक प्रकारके खाये जानेके आनंदमें छोड़ देते हैं। एक आदमीका अनुभव सुनाया जाता है जो अपने साथियोंके साथ जंगलमें गया था। वह पीछे रह गया। उसे एक नर-भक्षी शेरने पकड़ लिया। और लोग लौट आये। लौटकर उन्होंने देखा कि वह वहां नहीं आया तो वे उसकी तलाशमें दौड़े। पैरोंके निशान देखते हुए वे ठीक समयपर ही जा पहुंचे और उसे शेरके द्वारा खाये जानेसे बचा लिया। जब वह जरा होशमें आया तो उन्होंने कहा: "तुम्हें तो बड़ा ही भयानक अनुभव हुआ है।" उसने कहा: "नहीं, जरा कल्पना करो, मालूम नहीं मुझे क्या हुआ? जैसे ही शेरने मुझे पकड़ा, और जब वह मुझे घसीट रहा था तो मेरे अंदर उसके लिये तीव्र प्रेम पैदा हो गया और बहुत जोरकी इच्छा हुई कि मैं खा लिया जाऊं।"

यह बिलकुल सच है। यह मनगढ़ंत नहीं है, यह सच्ची कहानी है।

और हां, मैंने अपनी आंखोंसे देखा है . . .। मुझे लगता है कि शायद मैं तुम्हें पहले ही सुना चुकी हूं — एक छोटे-से खरगोशकी कहानी जिसे अजगरके पिंजरेमें छोड़ा गया था। मैं अचानक वहां थी। पिंजरा खोला गया और छोटा-सा सफेद खरगोश अंदर घुसा दिया गया। वह छोटा-सा, सुन्दर, सफेद खरगोश था और वह एक-दम भागकर पिंजरेके दूसरे छोरपर पहुंच गया। वह बुरी तरह कांप रहा था। यह बड़ा भयानक दृश्य था, क्योंकि वह खरगोश भली-भांति जानता था कि क्या हो रहा है। उसे लगा कि सांप है, वह बहुत अच्छी तरह जान गया। सांप अपनी चटाईपर कुंडल मारे बैठा था। ऐसा लगता था कि वह सो रहा है। चुपचाप उसने अपनी गरदन लंबाई, सिर आगे किया और फिर खरगोशकी ओर ताकना शुरू किया। वह बिना हिले-डुले ताकता गया, केवल ताकता गया। मैंने खरगोशको देखा। पहले उसने कांपना बंद कर दिया। अब उसे डर न था। वह बिलकुल दोहरा हो गया

था, अब ठीक होने लगा। और तब मैंने देखा उसने अपना सिर उठाया, आंखें पूरी-पूरी खोलीं और सांपकी ओर देखना शुरू किया। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया, बढ़ता गया, यहांतक कि वह ठीक दूरीपर था। अब सांपने बिना हलचलके, कुंडली खोले बिना, जहां था वहींसे, देख रहे हो न, एक लपकमें उसे ले लिया। और तब उसे बेलना शुरू किया। भोजनके लिये उसे तैयार करना शुरू किया। यह उससे खेलनेके लिये न था, यह उसे तैयार करनेके लिये था। उसने सारी हड्डियां अच्छी तरह पीस डालीं। उन्हें चटकाया, फिर उसपर गोंदसी चीज लपेट दी ताकि वह बिलकुल आसानीसे फिसल सके। और जब वह पूरी तरह तैयार हो गया तो अजगरने उसे धीरे-धीरे, आरामसे निगलना शुरू किया . . .। लेकिन उसे अपने-आपको बेचैन करनेकी जरूरत नहीं पड़ी, उसे जरा भी गति नहीं करती पड़ी, सिवाय उस अंतिम लपकके जब खरगोश ठीक सामने था। दूसरा प्राणी ही उसके पास आया था।

तो यूं होता है। वास्तवमें, प्रकृतिमें बहुत-सी चीजें हैं। यह चीज है, शायद यह दुर्भावना भी हो। मुझे पूरा निश्चय नहीं है कि यह मनुष्यकी मानसिक गतिविधियोंका उपहार नहीं है। . . . जैसे ही मनुष्य अपने सहज-बोधसे जुदा हुआ और उसने स्वतंत्र रूपसे काम करना चाहा . . .।

बंदर और शराब

विकृति एक मानव रोग है, पशुओंमें यह बहुत ही विरल पाया जाता है, और वह भी केवल उन्हीं पशुओंमें जो मनुष्यके ज्यादा नजदीक हैं और इसी कारण उसकी छूतमें आ गये हैं।

इस विषयमें एक कहानी है। उत्तरी अफ्रीकामें — अल्जीरियामें — कुछ अफसरोंने एक बंदर पाल रखा था। बंदर उन्हींके

साथ रहता था। एक शामको भोजन करते समय उन्हें एक भद्दा विचार आया, उन्होंने बन्दरके सामने शराब पेश की। बन्दरने पहले तो सबको पीते देखा, फिर उसे लगा यह तो कुछ मजेदार चीज है, और उसने एक गिलास पी लिया — शराबका एक पूरा गिलास। इसके बाद उसकी तबीयत खराब हुई, बेहद खराब। दर्दके मारे बेचारा मेजके नीचे लुढ़कता, छटपटाता रहा, सचमुच वह बहुत ही कष्ट पा रहा था। अर्थात् भौतिक प्रकृतिपर, जो पहलेसे भ्रष्ट न हुई हो, अलकोहलका सहज प्रभाव क्या होता है यह उसने अपने उदाहरणसे दिखा दिया। वह इस विष-प्रयोगसे मरते-मरते बचा। खैर, वह नीरव हो गया। कुछ समय बाद उसे फिर ब्यालूके लिये आने दिया गया, क्योंकि अब वह ठीक था। किसी अफसरने फिरसे उसके सामने शराबका गिलास रख दिया। भयंकर गुस्सेमें उसने गिलास उठाया और शराब देनेवालेके सिरपर दे मारा . . . इस तरह उसने दिखा दिया कि वह मनुष्योंसे ज्यादा बुद्धिमान है।

छोटी अवस्थामें ही यह शुरू करना और जान लेना अच्छा है कि यदि सार्थक जीवन जीना है और शरीर अधिक-से-अधिक जितना देने योग्य है वह पूरा-पूरा प्राप्त करना है तो बुद्धिको ही गृह-स्वामी बनाना अनिवार्य है। और यह योग करने या किसी उच्च उपलब्धिकी बात नहीं है बल्कि एक ऐसी चीज है जो सब जगह सिखायी जानी चाहिये, सब विद्यालयोंमें, सब परिवारोंमें, सब घरोंमें। मनुष्यकी रचना हुई ही इसलिये है कि वह एक मानसिक प्राणी बने, तो केवल मनुष्य होनेके लिये (हम किसी और चीजके लिये नहीं कह रहे, केवल मनुष्य होनेकी बात कर रहे हैं) जीवनपर बुद्धिका शासन होना चाहिये, प्राणिक तरंगोंका नहीं। यह चीज सब बच्चोंको बिलकुल छुटपनसे ही सिखायी जानी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति बुद्धिद्वारा शासित नहीं है तो वह उजड्ड गंवार है, सामान्य पशुसे भी गया-बीता, क्योंकि पशुओंमें मन या बुद्धि भले न हो जो उनका संचालन करे पर वे अपने जातिगत सहज-बोधका अनुसरण करते हैं।

उनमें एक ऐसा जातिगत सहज-बोध होता है जो बहुत अधिक संतुलित होता है और जो उनकी क्रियाओंको उनके हितकी दृष्टिसे व्यवस्थित करता है। और आप-से-आप, बिना जाने ही वे इस जातिगत सहज-बोधके अधीन रहते हैं जो उस जीव-जातिकी, प्रत्येक जीव-जातिकी दृष्टिसे पूरी तरह युक्तिसंगत होता है। पर वे पशु जो किसी-न-किसी कारणसे इससे बाहर आ जाते हैं — मैं अभी कुछ देर पहले उन पशुओंकी बात कर रही थी जो मनुष्यके नजदीक रहते हैं और अपने जातिगत सहज-बोधकी अपेक्षा मनुष्यकी बात मानने लगते हैं — वे बिगड़ जाते हैं और अपने जातीय गुणोंको खो बैठते हैं। यदि पशुको उसकी अपनी स्वाभाविक अवस्थाओंमें रहने दिया जाय और वह मनुष्यके प्रभावसे मुक्त हो तो वह अपनी दृष्टिसे बहुत अधिक समझदार जीव होता है क्योंकि वह केवल उन्हीं चीजोंको करता है जो उसकी प्रकृतिके और उसके हित-के अनुरूप होती हैं। अवश्य ही, वह अमंगलकारी दुर्घटनाओंसे कष्ट पाता है, क्योंकि दूसरी जातियोंके साथ उसका सतत संघर्ष चलता है, परंतु अपने-आपमें वह असंयम नहीं करता। मूर्खताओंका और विकृतिका प्रारंभ होता है सचेतन मनसे और मनुष्यजातिसे। यह मनुष्यके द्वारा अपनी मानसिक क्षमताका दुरुपयोग है। विकृति मानव जातिसे ही शुरू होती है।

पशुको समझना

(हम कुत्तेसे प्रेम क्यों करते हैं? सांपसे क्यों सहम जाते हैं? जंगली शेर या जंगली बाघको पालतू कैसे बना लेते हैं?)

जानवरोंमें मनुष्योंके लिये कैसा प्रेम होता है?

यह लगभग वैसा ही होता है जैसा अबुद्धिवादी लोगोंमें भगवान्‌के

लिये। यह सराहना, विश्वास और सुरक्षाकी भावनासे मिलकर बनता है। सराहना : वह तुम्हें सचमुच बहुत सुन्दर लगता है, और इसलिये कोई तर्क नहीं किया जाता, हृदयसे सराहना, कह सकते हैं, सहज। उदाहरणके लिये, यह चीज कुत्तोंमें बहुत अधिक होती है। और फिर विश्वास — स्वभावत: इस चीजमें कई बार और चीजें मिली होती हैं, कुछ आवश्यकताकी और निर्भरताकी भावना। क्योंकि जब मुझे भूख लगेगी तो यही व्यक्ति मुझे खाना देगा। जब मौसम खराब होगा तो यही मुझे आश्रय देगा, मेरी देखभाल करेगा। यह सबसे सुन्दर पक्ष नहीं है : और तब यह दुर्भाग्यवश एक प्रकारके भयसे मिल जाता है (मैं समझती हूं — मैं इसे पूरी तरह मनुष्यका दोष मानती हूं), निर्भरताकी भावना और अपनेसे बहुत अधिक मजबूत, बहुत अधिक ... का डर जो तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता है और तुम्हारे पास इतनी शक्ति नहीं है कि तुम उससे अपनी रक्षा कर सको। यह बात दयनीय है, पर है इसमें पूरी तरह मनुष्यका दोष।

परंतु यदि मनुष्य सचमुच पशुओंके प्रेमका अधिकारी हो तो वह प्रेम विस्मय और सुरक्षाके भावोंसे बना होगा। यह बहुत अच्छी चीज है : यह सुरक्षाका भाव कोई ऐसी चीज जो तुम्हारे रक्षा कर सकती है, तुम्हें जिस चीजकी जरूरत हो वह तुम्हें दे सकती और जिसके पास तुम हमेशा आश्रय पा सकते हो।

पशुओंमें एकदम प्रारंभिक मन होता है। मनुष्योंकी तरह उन्हें निरंतर विचार तंग नहीं किया करते। उदाहरणके लिये, तुम उनके साथ भलाई करो तो उनमें सहज कृतज्ञताका अनुभव होता है, जब कि मनुष्य सौमेंसे अट्ठानवे बार यह सोचने लगता है कि इस तरह भलाई करनेमें व्यक्तिका क्या स्वार्थ हो सकता है। यह मानसिक क्रियाकी दुर्दशाओंमें एक है। पशु इससे मुक्त हैं, तुम उनकी भलाई करो तो वे सहज रूपमें कृतज्ञ होते हैं और उन्हें विश्वास होता है। तो उनका प्रेम इन चीजोंसे बना होता है और वह बहुत प्रबल आसक्तिका रूप ले लेता है, तुम्हारे निकट रहनेकी अप्रतिरोध्य आवश्यकताके रूपमें।

कुछ और चीज भी है। अगर मालिक सचमुच अच्छा हो और जानवर वफादार हो तो उनमें चैत्य और प्राणिक शक्तियोंका आदान-प्रदान होता है जो जानवरके लिये एक अद्भुत चीज है और उसे बहुत तीव्र हर्ष प्राप्त होता है। जब वे इस तरहसे तुम्हारे बहुत नजदीक रहना चाहते हैं, जब तुम उन्हें अपने पास रखते हो तो अंदरसे वही स्पंदन होता है। तुम उन्हें जो शक्ति देते हो — स्नेहका बल, कोमल, संरक्षण आदि — उन्हें वे अनुभव करते हैं और इससे उनके अंदर गहरा स्नेह पैदा होता है। कुछ उच्चतर पशुओंमें, जैसे कुत्ते, हाथी और घोड़ेतकमें यह बहुत आसानीसे भक्तिकी एक विलक्षण आवश्यकताको पैदा करता है (और वह मनके तर्क-वितर्कों-द्वारा और दलीलोंके द्वारा विकृत नहीं होता)। वह बहुत सहज और अपने तत्त्वमें बहुत शुद्ध होता है — बहुत ही सुन्दर।

मनकी क्रियाओंमे अपने प्रारंभिक रूपमें, अपनी पहली अभिव्यक्तिमें बहुत-सी चीजें बिगाड़ दी हैं जो पहले बहुत अच्छी थीं।

स्वभावतः, यदि मनुष्य ज्यादा ऊंचे स्तरपर उठे और अपनी बुद्धिका सदुपयोग करे तो चीजें ज्यादा मूल्यवान् बन सकती हैं। लेकिन इन दोनोंके बीच एक मार्ग है जिसमें मनुष्य बुद्धिका बहुत ही गंवार और निम्न कोटिका उपयोग करता है। वह उसे हिसाब-किताबका, दूसरोंपर अधिकार जमानेका, छलनेका यंत्र बना लेता है और तब यह बहुत भद्दी बन जाती है। मैंने अपने जीवनमें ऐसे जानवरोंको देखा है जिन्हें मैंने बहुत-से मनुष्योंसे बहुत ऊंचा माना है, क्योंकि उनमें वह गंदा हिसाब-किताब, औरोंको धोखा देकर लाभ उठानेका भाव बिल्कुल न था। कुछ जानवर ऐसे होते हैं जो इस चीजको पकड़ लेते हैं — मनुष्योंके संपर्कके कारण पकड़ते हैं — लेकिन ऐसे भी हैं जिनमें यह चीज होती ही नहीं।

निष्काम, निःस्वार्थ क्रिया संसारमें चैत्य चेतनाके सबसे सुन्दर रूपोंमेंसे है, लेकिन व्यक्ति मानसिक क्रिया-कलापकी सीढ़ीपर जितना ही उठता जाता है, यह क्रिया उतनी ही विरल होती जाती है।

क्योंकि बुद्धिके साथ ही आता है कौशल और चालाकी या भ्रष्टाचार और हिसाब-किताब। उदाहरणके लिये, जब एक गुलाब खिलता है तो वह सहज रूपमें खिलता है, केवल सुन्दर होनेके आनन्दके लिये, सुगंध देने, जीवनके आनंदको अभिव्यक्त करनेके लिये खिलता है। वह हिसाब-किताब नहीं करता, उसे इस सबसे कोई लाभ नहीं उठाना होता। वह यह सब होनेके, जीनेके आनंदमें करता है। मनुष्यको लो, कुछ थोड़े-से अपवादोंको छोड़कर, जैसे ही उसका मन सक्रिय होता है वह अपनी सुन्दरता और चालाकीका लाभ उठाना चाहता है, वह उससे कुछ प्राप्त करना चाहता है, लोगोंकी प्रशंसा या इससे कहीं अधिक घिनौनी चीज पाना चाहता ह। फलत: चैत्य-दृष्टिसे गुलाब मनुष्यसे ज्यादा अच्छा है।

हां, यदि तुम सीढ़ीपर और ऊंचे चढ़ो और गुलाब जिस चीजको अचेतन अवस्थामें करता है, उसीको सचेतन रूपसे करो, तो यह कहीं ज्यादा सुन्दर होगा। लेकिन चीज वही होनी चाहिये : सौंदर्यका निष्काम, सहज रूपमें खिलना, शुद्ध रूपसे सत्ताके अंदर आनंदके लिये। कभी-कभी, हमेशा नहीं, यह चीज छोटे बच्चोंमें होती है। दुर्भाग्य-वश माता-पिता और वातावरणके असरसे बच्चे बहुत छोटी अवस्था-में ही हिसाब करना, यानी स्वार्थी होना सीख लेते हैं।

तुम्हारे पास जो है या तुम जो करते हो उनके बदले कुछ लाभ उठानेकी इच्छा संसारमें सबसे भद्दी चीजोंमेंसे है। और यह सब-से ज्यादा व्यापक है, यह इतनी व्यापक है कि मनुष्यके अंदर प्राय: सहज बन गयी है। इस तरह हिसाब-किताब करने और लाभ उठानेकी इच्छासे बढ़कर भागवत प्रेमसे पूरी तरह मुंह मोड़ लेनेवाली चीज और कोई नहीं है।

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

— श्रीमाताजी



सोसायटी समाचार

नव वर्ष १९८३ का आरंभ आश्रमके आंगनमें ध्यानके साथ हुआ जिसमें सुनीलका इस अवसरके लिये बनाया गया संगीत बजाया गया। माताजी और श्रीअरविंदके चित्रोंके कैलेंडर और कार्ड बांटे गये। शामको शारीरिक प्रशिक्षणके कार्यक्रमके बाद फिरसे ध्यान हुआ।

२१ फरवरी माताजीका जन्मदिन। इस दिन आश्रमवासी और दर्शनार्थी माताजीके कमरेका दर्शन करते हैं और समाधिके इर्द-गिर्द ध्यान होता है।

उत्तर प्रदेशकी सोसायटीकी शाखाओं और केंद्रोंका बारहवां वार्षिक अधिवेशन २७ से २९ नवंबरतक फिरोजाबादमें हुआ। सोसायटीके कार्योंके बारेमें बहुत-सा विचार-विमर्श हुआ और निश्चय किये गये। डा० महेश्वरीकी सहायतासे श्रीअरविंदकी पुस्तक 'माता' का स्वाध्याय किया गया, उसके बारेमें प्रश्नोत्तर भी हुए। इस अवसरपर मेरठ केंद्रने माधव पंडितकी साधनासंबंधी एक पुस्तिका भी प्रकाशित की जिसकी प्रतियां श्री बालकृष्ण गुप्त, पंजाब नैशनल बैंक, केसर गंज, मेरठसे मिल सकती हैं।

गुजरातकी सोसायटीके केंद्रों और शाखाओंकी बैठक २ से ४ अक्तूबरतक बड़ौदामें हुई जिसमें आश्रमके चम्पकलाल जी भी उपस्थित थे। सर्वश्री रमणभाई अमीन, उत्सवभाई परीख, अम्बाप्रेमी, अनिरुद्ध स्मार्त और अश्विन कापड़ियाने प्रमुख भाग लिया। श्री रतिलाल शाहने गतवर्षका विवरण और लेखा-जोखा प्रस्तुत किया, विश्व-संस्कृत परिषद्की गुजरात शाखाने भी अपने संस्कृतसंबंधी कार्यका ब्यौरा दिया।

बड़ौदामें डा० शिशिरकुमार घोषने बड़ौदा राजनिगमके तत्त्वावधानमें होनेवाले श्रीअरविंद स्मारक भाषाके सिलसिलेमें लाइफ डिवाइनपर भाषण दिया। श्रीअरविंद निवासमें भी उनके कुछ भाषण हुए।

मानवी (जिला रायचूर, कर्णाटक) ने नवम्बरमें एक दिनका कार्यक्रम रखा जिसमें श्रीघण्टोजी आदि कई सज्जनोंके भाषण हुए।

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

वैंगलोरके श्रीअरविंद भवनमें १६ दिसंबरको पूनामें श्री वस्वानी ने 'मृत्युके बाद जीवन' पर भाषण दिया।

कलकत्तेके श्रीअरविंद भवनने युवा शिविरकी व्यवस्था की।

अग्निशिखाके पाठकोंसे

पुरोधा और अग्निशिखाकी सहायता करने और लोगोंतक श्रीअरविंद और माताजीका संदेश पहुंचानेके लिये दिल्लीकी श्रीअरविंद चेतना समाजने अपनी ओरसे सौसे अधिक व्यक्तियोंके नाम अग्निशिखा और अन्योंके नाम पुरोधा भेजना शुरू किया है। विचार यह है कि साल भरतक पत्रिका पढ़नेके बाद स्वयं वे ग्राहक बन जायेंगे। उसका यह कार्यक्रम चलता रहेगा।

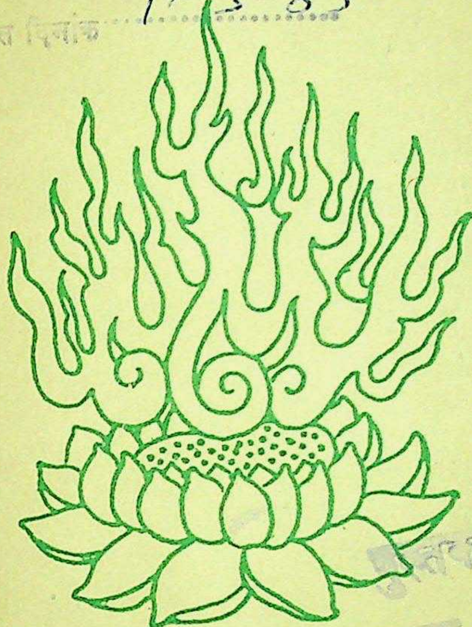
इसी तरह फिरोजाबाद और बंगलौरमें कुछ मित्रोंने ग्राहक बनानेका अभियान शुरू किया है। आप भी अपनी ओरसे, अपनी संस्था या अपनी दुकान या अपने विभागकी ओरसे लोगोंके या संस्थाओंके पास पत्रिकाएं भेजकर, नये ग्राहक बनाकर, [illegible] पर उपहारस्वरूप ये पत्रिकाएं भेजकर, लोगोंतक [illegible] श्रीअरविंदका संदेश पहुंचानेमें हमारी सहायता [illegible]

— संपादक पु[illegible]

घोषणाएं

(१) सावित्रीका पूरा अनुवाद एक खंडमें छपकर तैयार है। पृष्ठ संख्या ७१०, मूल्य ८०.००। अधिक प्रतियां लेनेपर खास रियायत मिलेगी। पत्राचार 'शब्द' श्रीअरविंदाश्रम, पांडिचेरी-६०५००२ से करें

(२) हमारा हस्तकला विद्यालय कई तरहकी अगरबत्तियां बनाता है, जिन्हें इसमें रस हो वे मैनेजर मीराम्बिका अगरबत्ती द्वारा श्रीअरविंद सोसायटी ६०५००२ से पत्रव्यवहार करें।



उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

वर्ष १३, अंक ८, पूर्णांक १५२

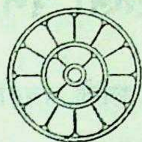
विषय-सूची

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :
संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२



Life is meant for seeking the Divine.
Life is realised when finding the Divine.

The Mother

जीवन भगवान्‌को खोजनेके लिये है।
भगवान्‌को पाकर जीवन सिद्ध होता है।

— श्रीमां

*

अग्निशिखा दैनन्दिनी

(माताजीके वचनोंसे)

मार्च

१—सभी अच्छा काम मिल-जुलकर धीरजके साथ किये गये प्रयाससे होता है।

२—जब कभी चीजें कठिन हो जाएं तो हमें शान्त और नीरव रहना चाहिये।

३—काममें पूर्णता ही लक्ष्य होना चाहिये लेकिन यह बड़े धीरजके साथ प्रयास करनेसे प्राप्त होती है।

४—अपनी भूलोंको पहचाननेसे बड़ा कोई और साहस नहीं है।

५—अपने ऊपर संयम रखनेसे बड़ी कोई और विजय नहीं है।

६—हम भागवत प्रेमसे पूरा सहारा और पूरी सान्त्वना पाते हैं।

७—भागवत कृपा हमें कभी निराश न करेगी — अपने हृदयमें सदा यह श्रद्धा बनाये रखो।

८—जब हम भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखते हैं तो हमें अक्षय साहस मिलता है।

९—हम स्थिर मन और शांत हृदयके साथ खुशीसे काम करें।

१०—भगवान् हमारे शरीरके परमाणुओं तकमें उपस्थित हैं।

११—तूफान केवल समुद्रकी सतहपर रहता है। गहराइयां एकदम शान्त हैं।

१२—पीछे मत देखो, हमेशा सामने देखो। उसे देखो जो तुम करना चाहते हो, तुम निश्चय ही प्रगति करोगे।

१३—भागवत कृपापर पूरा भरोसा रखो। भागवत कृपा सब तरह तुम्हारी सहायता करेगी।

१४—भगवान्की सहायता हो तो कुछ भी असंभव नहीं है।

१५—सच्ची शक्ति अविचल शांतिमें ही मिल सकती है।

१६—हम जितना अधिक जानते हैं उतना ही अधिक देख सकते हैं कि हम नहीं जानते।

१७—औरोंकी भूलोंपर नाराज होनेसे पहले अपनी भूलोंको याद कर लो।

१८—सभी सच्ची प्रार्थनाएं स्वीकृत होती हैं, हर प्रार्थनाका उत्तर मिलता है।

१९—हम अपने आप प्रगति करें, औरोंसे प्रगति करवानेका सबसे अच्छा उपाय यही है।

२०—भागवत चेतना ही हमें रास्ता दिखलाये।

२१—जब प्रलोभन जागे तो उसका विरोध करो। उसके आगे सिर न झुकाओ।

२२—किसी चीजके बारेमें डींग न मारो, तुम्हारे काम ही तुम्हारे लिये बोला करें।

२३—मनुष्यकी कोई इच्छा भगवान्की इच्छाके सामने टिक नहीं सकती।

२४—यह तो है ही, अगर तुम योग करना चाहते हो तो झूठ कभी न बोलो।

२५—दूसरोंके बारेमें बोलना व्यर्थ ही नहीं, कभी-कभी हानिकर भी होता है।

२६—स्थिर रहो, स्थिरतासे सच्ची सहज अभीप्सा होगी।

२७—सभी कठिनाइयां श्रद्धाकी सहनशक्तिको परखनेके लिये होती हैं।

२८—जरूरी चीज है आंतरिक परिवर्तन।

२९—मिथ्यात्व मृत्युका बड़ा साथी है।

३०—स्वतंत्रता बाहरी परिस्थितियोंपर नहीं आंतरिक स्थितिपर निर्भर होती है।

३१—भारतकी आत्मा ही देशको एक कर सकती है।

संपादकीय :

पुनरागमनाय

जीवन और मृत्यु हमारे अस्तित्वके चित और पट हैं। एकके बारेमें हमें भ्रम है कि हम उसे जानते हैं, दूसरेके लिये मानते हैं कि वह हमारे लिये अगोचर और अंधकारमय है। उस दुरूह अंधकार मेंसे कोई वहांका हाल सुनानेके लिये लौटकर नहीं आया इसलिये हमारे लिये अपरिचितका भय, आशंका और त्रास मृत्युके साथ जुड़े रहते हैं, किन्तु जब कोई सुहृद् उस अजाने प्रदेशके लिये चल पड़े तो हम उसके साथ जीवनकी भूल-भुलैयाकी फिरसे टोह लेने लगते हैं जिसकी सैर उस सुहृद्के साथ की थी।

ऐसा एक सुहृदय १९ जनवरीकी सुबह हमें छोड़कर उस अज्ञात प्रदेशकी ओर चल पड़ा। सुदूर अतीतकी ओर चलते-चलते देखा कि एक किशोर अपने माता-पिताके साथ आश्रमकी यात्रा करने बार-बार आता है। वह किशोर कब युवक बन गया इसका कुछ पता नहीं।

एक दिन सुना कि बम्बईके अमीरोंमें जिनकी गणना होती है, वे केशवदेव पोद्दार आ रहे हैं। हठात् परिचय पाकर सुखद आश्चर्य हुआ। अरे, यह तो वही सभ्य शिष्ट किशोर था जो माता-पिताके साथ आश्रमके चक्कर लगाया करता था।

श्रीअरविंदके शरीर-त्यागके कुछ समय बाद सुना कि वह फलता-फूलता व्यापारी अपने पनपते व्यापारको तिलांजलि देकर आश्रमवासी बन गया। उसके लिये यह नया जन्म था। उसीके अनुसार माताजीने उसे नाम दिया 'नवजात'। इस प्रकार नवजात द्विज बनकर आश्रमका अंग बन गये।

माताजीके बहुविध कार्योंके लिये भिन्न-भिन्न प्रकृति और क्षमता वाले मनुष्योंकी आवश्यकता पड़ने लगी और अपने मौलिक कार्य

लिये उन्होंने पृथ्वीके कोने-कोनेसे कार्यकर्ता चुने। जिस कार्यके लिये नवजात चुने गये उसके लिये अदम्य साहस, असीम उत्साह और लगनकी मांग थी। ऐसे चरित्रको आह्वान था जिसने हार मानना, निराश होना या सिर झुकाना जाना ही न हो।

माताजीकी एक नये शहरकी परिकल्पनाको साकार रूप देनेका सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ और बहुत वर्षोंतक अथक श्रम करके उन्होंने शहरको खड़ा करना शुरू किया। इतना ही नहीं माताजी और श्रीअरविंदके क्रांतिकारी आध्यात्मिक दर्शनको पृथ्वीके कोने-कोनेतक फैलानेके लये उन्होंने भारतमें, विदेशोंमें केन्द्र खोले।

इस प्रसंगके छिड़नेसे कितनी घटनाएं स्मृतिपटलपर उभरती चली आती हैं।

एक दिन एक बंजर भूमि दिखाकर वे कह रहे हैं, "यहां जापानी शैलीके बगीचे होंगे, बीचमें दो मकान। उनमें वस्त्र, बरतन भोजन सब कुछ जापानी ढंगके होंगे।" नवजातका वर्णन इतना सजीव है कि हम उस बंजर मैदानकी जगह जापानी उपवन, इमारत और प्यारे-प्यारे जापानी चेहरे एक सौंदर्य भीगे, मोहक वातावरणमें तैरते देखने लगे। ऐसी कल्पनाशक्तिके धनीके पास जो भी जाता, नये विचार, नया उत्साह लेकर ही लौटता। वे जिस किसी चीज-की कल्पना करते थे, उसे आंखोंके आगे देखते और दूसरेको भी दिखा सकते थे।

व्यापारी आता तो वे उसे सार्थक व्यापारके अनेक गुर सुझाते, आदर्शवादीको, बेकारोंको किन-किन कामोंमें लगाकर उपयोगी बनाया जाय उसका गुर बताते। अध्यापक आते तो उन्हें शिक्षाके नये विचार देते ताकि बालक कमरोंकी चारदीवारी और समयकी कैदसे मुक्त होकर, जिज्ञासासे प्रेरित हो अपने मनको विकसित कर सके। कलाकार आते तो एक ही विषयकी प्रस्तुतिके अनेक नये आयाम दिखा देते। ऐसी अबाध कल्पनाके प्रदेशमें उनका कोई हमसफर था तो केवल एक फिल्म जगत्का जादूगर वाल्ट डिसनी।

इतना ही नहीं, जीवन संघर्षमें जब भी झुकनेके अवसर आये तो राजस्थानका रक्त उनकी रगोंमें खौल पड़ा। राणा प्रतापकी न्याई उन्होंने टूटना जाना, झुकना नहीं।

सपनोंका ऐसा द्रष्टा जब पक्षी राज घोड़ेपर सवार होकर किसी कल्पनातीत जगत्‌की सैर करने निकल पड़ा तो ऐसा लगा कि श्रम-से क्लान्त अपने शिशुको जगज्जननीने अपनी गोदमें खींच लिया है और थपकी दे-देकर उसे तरोताजा बनाकर फिरसे इस धरतीके आंगनमें खेलनेके लिये भेजनेकी तैयारी कर रही हैं।

पुनरागमनाय।

—अनुबेन

एशियाई-खेल

एशियाई खेल समारोह भारतके लिये इस क्षेत्रमें पहली चुनौती था, और सब बड़ी उत्सुकतासे उसकी ओर ताक रहे थे। उसने अपनी जिम्मेदारी किस तरह निभायी यह संसारको भली-भांति मालूम है।

इसमें कोई शंका नहीं कि यह उत्सव हमारे लिये ताजी हवाकी तरह उल्लास और नया जीवन देनेवाला था।

पहली बार भारतके नागरिकने अपने देशकी कई क्षमताएं देख-कर गौरवका अनुभव किया। अभीतक यूरोपकी तथाकथित श्रेष्ठता-के भारसे दबे भारतीयने देखा कि वह भी कुछ कम नहीं है। हीनता ग्रंथिका सूक्ष्म जाल जो हमें जकड़े हुए था, कई स्थानोंसे टूटने लगा। यह है हमारी पहली उपलब्धि और इसीसे आरंभ होगा भारतका नव जागरण।

सबने भारतके अनुशासन और व्यवस्थाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। किसी-किसीने तो यहां तक कहा कि इसके लिये स्वर्ण पदक दिया

जा सकता है परंतु क्या हम इससे संतुष्ट होकर बैठ जायेंगे ? किसी कविने ठीक ही कहा है "दिव्य-असंतोष मानव प्रगतिका अग्रदूत है।"

अब जब उत्तेजना और तनावका वातावरण छंट गया है तो हम भारतके कार्य-कलापोंका लेखा-जोखा कर सकते हैं।

भारतके कई नागरिकोंको इस समारोहमें त्रुटियां दिखायी दीं। उद्घाटनके दिनसे ही देखें। जिस तरह उस विराट् मानव समूहने मौन रहकर प्रसंगको गरिमा दी वह सराहनीय था। शानदार घुड़सवारोंके प्रवेशसे जनता राष्ट्रपतिके आगमनके लिये उत्सुक हो उठी और जब वे एक कारसे उतरे तो बड़ी निराशा हुई। हमने आशा की थी कि राष्ट्रपतिकी शानदार बग्घी इस चित्रमें रंग भरेगी लेकिन सुरुचिभंगका दुःख घावमें नमक-सा जलने लगा।

साधारणतः जब लयबद्ध संगीत हो तो आशा की जाती है कि उसके साथ चलनेवाले कम-से-कम कदम मिलाकर तो चलेंगे। किंतु यहां भी एक ठेस लगी। भद्दी बात तो यह थी कि झंडा तथा देशका नामपट्ट लेकर चलनेवाले तो तालमें कदम रख रहे थे पर उनके पीछेके लोगोंमें इस चीजका अभाव था।

गुलाबी साड़ीमें सजी लड़कियां सुन्दर अवश्य लग रही थीं किंतु साड़ीमें मार्चिंग करना वैसा ही बेढंगा लगता है जैसा शर्ट पैण्टमें भांवरें लेना। हमारे देशमें सुन्दर वेशभूषाकी कमी नहीं। सलवार कमीज, चूड़ीदार पाजामा कमीजमें मार्च करती लड़कियां अधिक चुस्त लगतीं।

फिर हमारे धावकोंने मशाल लिये प्रवेश किया तब भी उनके कदमोंमें वह चुस्ती, ताजगी न थी जिसकी आशा थी। अग्नि-शिखा जिस पात्रमें जलाई गयी वह भी कुछ जंचा नहीं। ऐसे समारोहोंके लिये कोई खास प्रतिबंध हो, या विशिष्ट आकारपर आग्रह हो तो बात अलग है वरना हमने खिलते कमलसे धधकती ज्वालाकी कल्पना की थी जो भारतके अनुरूप होती। अजंता, एलोरासे लेकर कहीं भी दृष्टि डालें हमें कमलका महत्त्वपूर्ण स्थान

दिखाई देगा। फिर कमल भारतका राष्ट्रीय पुष्प भी है।

अब देखें भारतका खेल-कूदमें अपना स्थान। वैसे हम कह सकते हैं कि पांचवा स्थान बुरा नहीं रहा किंतु ऐसे विशाल देशके लिये क्या यह लज्जाकी बात न थी कि पिद्दी-सा कोरिया और जापान उसे बहुत पीछे छोड़ जायें?

समापन दिन भी कुछ निराशाजनक रहा। लास्ट स्ट्रिीटके स्थान-पर अवश्य किसी नयी भारतीय कल्पनाको चरितार्थ किया जा सकता था।

फिरसे एक बार उद्घाटन दिनकी ओर देखें। पं० रविशंकरजी-का 'स्वागतम्' अवश्य कर्णमधुर था। अगर उसके साथ उचित वृन्द वाद्य होते और पार्श्व संगीत ऐसा विराट् होता कि सारे एशियाको अपने विशाल पंखोंपर आकाशकी ओर उड़ा ले जाता तो सोनेमें सुहागा होता।

और सचमुचका अप्पु बेचारा! उसे प्रशिक्षणका कष्ट भी दिया गया और अंतमें केवल आलोचनाकी वजहसे वह पुरस्कार भी न मिला जो उसे मिलना चाहिये था। हमारा यह ख्याल कि जानवर कुछ समझते नहीं गलत है। वे समझते हैं, और खूब समझते हैं। अप्पु, छोटे शिशुको उसकी मांसे अलग कर जो कष्ट दिया गया और फिर उसे समारोहसे वंचित रखा गया, बस, इसे कहते हैं जलेपर नमक छिड़कना।

उससे भी हास्यास्पद और करुण अवस्था थी उन हाथियोंकी जिन्हें ठेठ दक्षिणसे सारा भारत पार करके दिल्ली लाया गया। उसके बाद अधिकारी वर्ग जागा और फैसला हो गया कि उनका नाच न होगा। बादमें उनके साथ जो व्यवहार हुआ, वह भी भारत जैसे देशके लिये अशोभनीय था। हम गणपतिको विघ्नेश्वर कह कर पूजते हैं और उन्हींके प्रतीकका ऐसा अपमान जरा समझसे परेकी बात है। कम-से-कम उनका प्रदर्शन समापनके दिन रखते तो शायद मैदानकी समतलता भले गड़बड़ा जाती लेकिन उससे अधिक नुकसान न होता।

भारतीय खिलाड़ियोंकी पोशाक देखकर रोना आता था। भई, यह ब्लेजर कबसे भारतीय पोशाक बन गयी? अचानक वर्षों पहले सुना फिल्मी गाना याद आया: मेरा जूता है जापानी — दिल है हिन्दुस्तानी। देखकर उल्टा ही लगा, मानों भारतीयका चरित्र कुछ यूरोयीय, कुछ हिन्दुस्तानी बन गया है।

कुर्ता, पाजामा क्या बुरा लगता या फिर शेरवानी चूड़ीदार और सिरपर शानदार पगड़ी। हमें विश्वास है सब खिलाड़ी राजसी लगते।

हॉकी का तो जो कबाड़ा हुआ सभीने देखा लेकिन उससे भी बढ़-कर शर्मकी बात थी पाकिस्तानके कप्तानका वक्तव्य। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि अगर टीमका चुनाव योग्यताके आधारपर किया जाता तो भारतीय प्रदर्शन अधिक अच्छा रहता।

हमें ये सब छोटी-बड़ी त्रुटियां खलीं तो सही किंतु एशियाई खेलने जनतामें जो आत्म-विश्वास और आशा जगाई उससे हमें प्रसन्नता हुई। हमारे भारतका हर कार्य, यहांकी हर व्यवस्था सर्वांग संपूर्ण हो यह देखनेके हमारी चाह हमें इन दोषोंकी ओर अंगुली निर्देश करनेके लिये बाधित करती है। आशा है अगला समारोह ऐसा होगा जिसका अनुकरण करनेमें अन्य देश भी गौरवका अनुभव करेंगे।

भारतकी जय हो।

—अनुबेन

अपने मनमें अंतिम विजयकी निश्चितिको हमेशा बनाये रखो और रास्ता ज्यादा छोटा हो जायगा।

—श्रीमां

श्रीअरविंदाश्रम

योगके बारेमें शोधकार्य करनेवाली संस्था

परियोजना

आश्रमके अन्वेषणकी परियोजना यौगिक है, मुख्य रूपसे मानव स्वभावको दिव्य बनाना।

कार्यान्वयन

इस विषयको कार्यान्वित करनेका तरीका है चेतनाका परिवर्तन जो एक 'नयी शक्ति'के अवतरण तथा एक नयी जातिके आगमनसे सिद्ध होगा।

पद्धतियां

श्रीअरविंद और माताजीकी विविध रचनाओंमें इन पद्धतियोंका पूर्ण रूपसे वर्णन किया गया है।

मूल्यांकन

इस अन्वेषण-कार्यमें भाग लेनेवालोंकी प्रगतिके मूल्यांकनके लिये कसौटी यह है :

जो सब प्रकारकी घटनाओंके आगे जितना शांत रहे, सब प्रकारकी परिस्थितियोंमें समता बनाए रखे, और चाहे जो कुछ भी हो अपने ऊपर पूरा संयम रखे और शांत रहे वह लक्ष्यकी ओर उतना ही अधिक बढ़ा हुआ होगा।

"शांति"। सबसे पहली चीज होनी चाहिये 'शांति'। तुम जो कुछ करो उसे शांतिपूर्वक पूर्ण तरीकेसे करना चाहिये।

दूसरी आवश्यक चीज है 'सामंजस्य', केवल सामान्य सामंजस्य ही नहीं, बल्कि वहां रहनेवाले व्यक्तियोंमें सामंजस्य'। तुम्हें हर व्यक्तिमें "सामंजस्य" की खोज करनी चाहिये और असामंजस्यके बारेमें सोचते न रहना चाहिये। हर जगह असामंजस्य है लेकिन तुम्हें उसे अस्वीकार करके केवल "सामंजस्यको ही अपने अंदर पैठने देना चाहिये।

व्यवस्थाका भाव होना चाहिये।

हर एक व्यक्तिमें आत्म-अनुशासन का भाव होना चाहिये और उसका सचमुच अभ्यास करना चाहिये।

शांति, सामंजस्य, व्यवस्था, आत्म-अनुशासन।

सरल और आस्थावान् हृदय

सरल और आस्थावान् हृदय महान् वरदान है।

*

सरल और आस्थावान् हृदयकी नीरव निश्चलतामें तुम अवतारके रहस्यको समझ सकते हो।

*

....तर्कशील मन भगवान्‌तक पहुंचनेमें बहुत कठिनाईका अनुभव करता है, लेकिन सरल हृदय प्रायः बिना प्रयासके उनके संपर्कमें आ सकता है।

*

जिन लोगोंको विचारोंके साथ खेलनेकी आदत होती है,

उन्हें ही आगे बढ़नेमें सबसे अधिक बाधाका सामना करना पड़ता है। यह ऐसा खेल है जो सुन्दर और मोहक है, यह तुम्हें आभास देता है कि तुम एकदमसे सामान्य नहीं हो, सामान्य जीवनके स्तरपर नहीं हो, लेकिन यह तुम्हारे पंख कतर देता है।

पंख सिरमें नहीं होते, पंख होते हैं हृदयमें। यहीं है...हां, यही अनिवार्य आवश्यकता है।

*

मैं केवल एक चीजकी मांग करती हूं: अपने अंहपर कान न दो।

अगर तुम्हारे हृदयमें निष्कपट 'हां' है, तो तुम मुझे पूरी तरहसे संतुष्ट करोगे। मुझे शब्दोंकी आवश्यकता नहीं है, मुझे आवश्यकता है तुम्हारे हृदयके निष्कपट लगावकी।

*

तुम्हें सदा पूरी सहायता दी जाती है, लेकिन तुम्हें उसे बाहरी साधनोंद्वारा नहीं बल्कि अपने हृदयकी निश्चल नीरवतासे ग्रहण करना सीखना चाहिये। तुम्हारे हृदयकी निश्चल नीरवतामें ही परम-प्रभु तुमसे बोलेंगे, तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगे और तुम्हें अपने लक्ष्य-तक पहुंचायेंगे। लेकिन इसके लिये तुम्हारे अंदर भागवत कृपा और भागवत प्रेमपर पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये।

*

अपने हृदयमें एकाग्र हो। उसके अंदर प्रवेश करो; उसके अंदर गहरे, अधिकसे अधिक दूर जाओ। अपनी चेतनाके इधर-उधर फैले सभी धागोंको लपेटकर उसे इकट्ठा करो और फिर डुबकी लगाकर गहराईमें पैठ जाओ।

हृदयकी गहन निश्चलतामें एक अग्नि जल रही है। वह तुम्हारे अंदर देवत्व — तुम्हारी सच्ची सत्ता है। उसकी आवाज सुनो, उसके आदेशोंका पालन करो।

*

भगवान् हमेशा तुम्हारे हृदयमें आसीन रहते हैं, सचेतन रूपसे तुम्हारे अंदर निवास करते हैं।

*

अपने हृदयकी गहराइयोंमें झांको और वहां तुम भागवत उपस्थिति-के दर्शन करोगे।

*

जैसे ही तुम पर्याप्त गहरे उतरते हो तुम कोई ऐसी चीज पाते हो जो सबमें एक ही है। सब कुछ भगवान्में जा मिलता है...। अगर तुम किसीके साथ ऐक्यका अनुभव न कर सको, तो इसका यह अर्थ है कि तुम अपनी संवेदनामें पर्याप्त गहरे नहीं उतरे।

— माताजी

असंभव

मधुर मां, यहां श्रीअरविंदने कहा है: "यह असंभव है।" क्यों? क्योंकि आपने तो कहा है कि कुछ भी असंभव नहीं है!

सिद्धांतमें कुछ भी असंभव नहीं है। लेकिन अगर तुम जो आवश्यक है उसे करनेसे इंकार करो, तो स्पष्ट है कि तुम सफल नहीं हो सकते।

भौतिक जगत्में शर्तें होती हैं, अन्यथा वह जो है वह न होगा। अगर शर्तें और पद्धतियां न होतीं, तो सब कुछ रूपांतरित हो जाता और चमत्कारी रूपसे किया जाता। लेकिन स्पष्ट है कि इस तरह करनेका नहीं निश्चय किया गया था, क्योंकि चीजें चमत्कारिक ढंगसे नहीं होतीं —— कम-से-कम, उस तरहके चमत्कार नहीं होते जिनकी मानव मन कल्पना करता है, यानी, सतत मनमाने निर्णय नहीं होते। यह तो स्पष्ट ही है कि जगत्में कोई मनमाने निर्णय नहीं हुआ करते।

श्रीअरविंद कहते हैं: अमुक चीज करनेके लिये ये शर्तें हैं। अगर तुम उन शर्तोंको पूरा करनेसे इंकार करो तो तुम वह वस्तु विशेष नहीं करोगे; तुम कुछ और करोगे, यह तो स्पष्ट ही है कि वही एकमात्र संभव चीज नहीं है। लेकिन अगर तुम वही चीज करना चाहते हो, तो तुम्हें शर्तें पूरी करनी होंगी . . .। तुम कुछ और कर सकते हो!

मुझे लगता है कि अगर तुम जगत्को उसकी समग्रतामें, 'देश' और 'काल'में लो, तो स्पष्टतः तुम कह सकते हो: "कुछ भी असंभव नहीं है," और संभवतः सब कुछ होगा; परंतु यह समग्रतामें है और 'देश' और 'काल'में है यानी, कालकी शाश्वतताओं और देशकी अनंतताओंमें सब कुछ संभव है। परंतु निर्दिष्ट समयपर निर्दिष्ट स्थानपर, सब-की-सब नहीं, कुछ संख्यामें "संभावनाएं" होती हैं, और इन संभावनाओंके चरितार्थ होनेके लिये कुछ शर्तें पूरी करनी होती हैं। संसार इसी तरह बना है। हम इसके बारेमें कुछ नहीं कर सकते। मेरा मतलब यह कहना बेकार है: "यह और तरहसे होना चाहिये था।" यह ऐसा है, हमें इसे इसी तरह स्वीकार कर लेना चाहिये, उसमें यथासंभव अच्छे-से-अच्छा बनानेकी कोशिश करनी चाहिये।

(श्रीमातृवाणी खंड ८

औरोंका मूल्यांकन करना

मन जितना अज्ञानी होता है उतनी ही ज्यादा आसानीसे हर उस चीजका मूल्यांकन करता है जिसे वह नहीं जानता या जिसे समझनेमें वह अक्षम है।

*

मैं चाहती हूं कि तुम्हारे मनमें शांति आये और साथ ही वह अचंचलता, धैर्यशील बुद्धिमत्ता जो तुम्हें जल्दबाजीमें निष्कर्ष निकालने या मूल्यांकन करनेसे रोकती है।

*

आवश्यक जानकारी प्राप्त होनेसे पहले मनको अचंचल रखना और जल्दबाजीमें निष्कर्ष निकालनेसे बचना हमेशा अच्छा है।

(१२ अप्रैल, १९३२)

*

अपने प्राणसे कहो कि रूप-रंगके आधारपर मूल्यांकन न करे और सहयोग न दे। आगे चलकर सब कुछ अच्छा होगा।

*

तुम्हारा व्याकुल होना गलत था। वह दिखाता है कि तुम्हारे मन और हृदयमें संदेह था। और अगर तुम अपने-आप पूरी तरह शुद्ध हो तो तुम्हें संदेह नहीं हो सकता। मन जाननेमें अक्षम

है। वह बाहरी रूप-रंगके आधारपर मूल्यांकन करता है और उनकी भी समग्रता नहीं बल्कि उस अंशके आधारपर जिसे वह देख सकता है और उसका मूल्यांकन निश्चय ही मिथ्या होता है। केवल सत्य-चेतना ही सत्यको जान सकती है और वह कभी न तो संदेह करती है, न मूल्यांकन।

(१४ नवंबर, १९५२)

*

यह निर्णय करनेसे पहले कि औरोंमें या परिस्थितियोंमें कुछ भूल है, तुम्हें अपने मूल्यांकनके ठीक होनेका पूरा विश्वास होना चाहिये। और कौन-सा मूल्यांकन ठीक हो सकता है जबतक कि तुम सामान्य चेतनामें निवास करते हो जो अज्ञानपर आधारित और मिथ्यात्वसे भरी है।

केवल 'सत्य-चेतना' ही मूल्यांकन कर सकती है इसलिये ज्यादा अच्छा यह है कि सभी परिस्थितियोंमें निर्णय भगवान्पर छोड़ दो।

*

जब कभी कोई सामान्य नमूनेके अनुसार ठीक नहीं होता, अगर उसके सभी अंगों और क्रियाओंमें सामान्य संतुलन नहीं है, अगर कमोबेश किन्हीं क्षमताओंकी कमी है और कुछ अन्य बढ़ी-चढ़ी हुई हैं तो सामान्य और सरल आदतके अनुसार उसे "अपसामान्य" घोषित कर दिया जाता है और जल्दबाजीके साथ की गयी इस दण्डाज्ञाके बाद मामला खतम। और अगर यह संक्षिप्त-सा निर्णय किसी ऐसेने दिया हो जो किसी शक्तिके पदपर हो तो इसके नतीजे अनर्थकारी हो सकते हैं। ऐसे लोगोंको जानना चाहिये कि सच्ची अनुकंपा क्या है, तब वे और तरहसे व्यवहार करेंगे।

पहली आवश्यकता यह है कि किसीके बारेमें निन्दात्मक ढंगसे सोचनेसे परहेज करो। जब हम किसी आदमीसे मिलते हैं तो हमारे आलोचनात्मक विचार मानों उसकी नाकपर घूंसा लगाते हैं जो स्वभावतः उसके अंदर विद्रोह पैदा करता है। हमारी मानसिक रचना उस व्यक्तिके लिये विकार पैदा करनेवाले दर्पणका काम देती है और तब आदमी विचित्र न हो तो भी हो जायगा। लोग अपने मनसे यह विचार क्यों नहीं निकाल सकते कि यह या वह व्यक्ति अस्वाभाविक है। वे किस कसौटीसे परखते हैं? वास्तवमें स्वाभाविक है कौन? मैं तुमसे कह सकती हूं कि एक भी व्यक्ति सामान्य या स्वाभाविक नहीं है क्योंकि स्वाभाविक होनेका अर्थ है भगवान् होना।

मनुष्यका एक पैर मानवतामें है दूसरा पाशविकतामें और साथ-ही-साथ वह देवत्वका प्रत्याशी है। उसकी अवस्था सुखद नहीं है। सच्चे पशु ज्यादा अच्छी हालतमें हैं। वे आपसमें ज्यादा सामंजस्य-पूर्ण हैं। वे मनुष्योंकी तरह लड़ते झगड़ते नहीं। वे अकड़फूं नहीं करते, वे लोगोंको नीचा समझकर उन्हें दूर नहीं रखते।

तुम्हारे अंदर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण होना चाहिये और तुम्हें अपने साथियोंके साथ सहयोग करना सीखना चाहिये। उनके अंदर जो कुछ घटिया दीखता हो उसका मजाक उड़ानेकी जगह उनकी सहायता करना और उन्हें ऊंचा उठाना चाहिये।

अगर किसीके अंदर कुछ त्रुटि है और वह अति संवेदनशील और हठी है तो तुम उसे बाधित करने या निकाल बाहर करनेके संक्षिप्त तरीकोंद्वारा सुधारनेकी आशा नहीं कर सकते। उसी तरीकेसे काम करके उसके अहंकारको अपने अहंकारद्वारा बाधित मत करो। उसकी प्रकृतिके अनुसार, नरमी और समझदारीके साथ उसका पथ-प्रदर्शन करो। यह देखो कि क्या तुम उसे ऐसी जगह रख सकते हो जहां वह औरोंके साथ संघर्षमें आये विना काम कर सके।

अगर, जिन लोगोंके हाथमें शक्ति है वे अपनी महत्तासे फूले रहें

तो वे सच्चे कार्यमें वाधा देते हैं। उनके अंदर जो भी क्षमता हो उसकी उपलब्धि ही वास्तविक चीज नहीं है।

लेकिन ऐसी बात नहीं है कि उनमें हमेशा सद्भावनाकी कमी होती है। क्या उचित है इसके बारेमें उनके अंदर गलत विचार होते हैं। अगर वे भागवत लक्ष्यके बारेमें ज्यादा सचेतन हो जायें तो वे निश्चय ही उसे पूरा करनेमें सफल हो सकते हैं।

*

हमारी अपनी पूर्णताके साथ-ही-साथ हमारे अंदर दूसरोंको उदारता-के साथ समझनेकी क्षमता बढ़ती है।

(१८ जुलाई, १९५४)

*

और लोग क्या करते हैं, इससे अपने-आपको व्यथित न करो, यह बात जितनी बार कही जाय कम है। मूल्यांकन न करो, आलोचना न करो, तुलना न करो, यह तुम्हारा काम नहीं है।

(१९५७)

*

तुम्हें किसी आदमीका मूल्य आंकनेका कोई अधिकार नहीं है जब-तक कि वह जो काम करता है तुम उससे ज्यादा अच्छी तरह न कर सको।

(२७ जून, १९६४)

और 'क' के निर्णयकी कसौटी क्या है? क्या वह भगवान् बन गया है? केवल भगवान् ही हरएकका सच्चा मूल्य जानते हैं।

(२५ जुलाई, १९७१)

वह सद्यःप्राप्त शुद्धिकी ऊंचाइयोंपर चढ़कर ऐसे बड़े भाईका मूल्यांकन और उसकी अनुचित आलोचना करती है जो हमेशा उसके प्रति बहुत दयालु रहा है।

*

औरोंके साथ सख्ती करनेसे पहले अपने साथ कठोर बनो।

*

औरोंकी मूर्खताओंकी परवाह न करो, अपनी मूर्खताओंको देखो।

*

ज्यादा अच्छा होगा कि मन भी औरोंके मामलेमें टांग न अड़ाये। और भी ज्यादा अच्छा होगा कि प्राण भी उनमें कोई रस न ले।

*

मैं तुम्हारे भविष्यके मार्गदर्शनके लिये यह सुझाव दूंगी कि उन मामलोंमें हस्तक्षेप न करो जिनका तुम्हारे साथ संबंध नहीं है। अगर "क" अब भी यहां है तो इसका कारण यह है कि मैं उसे अपने साथ रखना पसंद करती हूं।

*

उच्चतम गुणोंमेंसे एक है औरोंके मामलोंमें टांग न अड़ाना।

*

आश्रम क्या है ?

अब हम जो कर रहे हैं वह एक नयी चीज है; अतीतसे उसका कोई नाता नहीं।

स्वतंत्रता संभव है केवल भगवान्के साथ तादात्म्यमें।

भगवान्के साथ एक होनेके लिये यह जरूरी है कि तुम अपने अंदर कामनाकी संभावनातक पर विजय प्राप्त कर लो।

(२८-२-६९)

मानवजातिकी वर्तमान उपलब्धियोंमेंसे कोई भी — वे चाहे कितनी भी बड़ी क्यों न हों — हमारे लिये अनुकरणीय आदर्श नहीं हो सकती। मानव आदर्शोंके परीक्षण क्षेत्रके लिये विस्तृत संसार पड़ा है।

हमारा उद्देश्य बिलकुल अलग है और अगर अभी हमारी सफलताके अवसर बहुत कम हैं तो भी हमें विश्वास है कि हम भविष्यको तैयार करनेके लिये काम कर रहे हैं।

मैं जानती हूं कि बाहरी दृष्टिसे हम आजकलकी दुनियाकी नवीन उपलब्धियोंसे नीचे हैं, लेकिन हमारा उद्देश्य मनुष्यके मापदण्डके अनुसार पूर्णता प्राप्त करना नहीं है। हम किसी और ही चीजके लिये प्रयास कर रहे हैं जो भविष्यकी है।

आश्रम नवीन जगत्के पालनेके रूपमें स्थापित किया गया है और वह इसीके लिये है।

प्रेरणा ऊपर की है, निर्देशक शक्ति ऊपर की है, सर्जक शक्ति ऊपर की है, और ये नवीन सिद्धिके अवतरणके लिये काममें लगी है।

आश्रम केवल अपनी त्रुटियों, अपनी अपूर्णताओं और अपनी असफलताओंके कारण ही वर्तमान जगत्का है।

मानवजातिकी वर्तमान उपलब्धियोंमेंसे किसीमें भी वह शक्ति

नहीं है जो आश्रमको उसकी कठिनाइयोंमेंसे बाहर निकाल सके।

उसके सभी सदस्योंके संपूर्ण रूपांतरसे और नीचे उतरते हुए सत्यके प्रकाशकी ओर पूरी तरह खुलनेसे ही उसकी आत्म-सिद्धिमें सहायता मिल सकती है।

निःसंदेह, कार्य अत्यन्त कठिन है लेकिन हमें उसे पूरा करनेका आदेश मिला है और उसी उद्देश्यको पूरा करनेके लिये धरती पर हैं।

हम परम प्रभुके 'संकल्प' और उनकी 'सहायता' पर अक्षय विश्वास-के साथ अंततक चलते रहेंगे।

द्वार खुला हुआ है और उन लोगोंके लिये हमेशा खुला रहेगा जो इस उद्देश्यके लिये अपना जीवन देनेका निश्चय करते हैं।

(१३-६-६४)

माताजीका एक वक्तव्य

श्रीअरविंदके अंतदर्शनको मूर्त रूप देनेका काम माताजीको सौंपा गया है। नयी चेतनाको अभिव्यक्त करने और ठोस रूप देनेवाले नए जगत्, नयी मानवजाति, नए समाजका सर्जन, वह काम है जो उन्होंने अपने हाथमें लिया है। चीजोंकी प्रकृतिके अनुसार, यह एक सामूहिक आदर्श है जो सर्वांगीण मानवी पूर्णताकी शर्तों पर, उसे सिद्ध करनेके लिये सामूहिक प्रयासकी मांग करता है।

माताजीद्वारा स्थापित और निर्मित यह आश्रम, इस लक्ष्यकी पूर्तिकी ओर पहला कदम है। ओरोवीलकी योजना अगला कदम है, "ज्यादा बाहरी", कदम जो इस प्रयासके आधारको विस्तृत करनेकी कोशिश करता है ताकि मानवजातिके सामूहिक जीवनमें, शरीर और अंतरात्मामें, आत्मा और प्रकृतिमें, स्वर्ग और धरामें, सामंजस्य स्थापित हो सके।

आश्रम--राजनीति

श्रीअरविंद राजनीतिसे अलग हो गये थे और उनके आश्रमके महत्त्वपूर्ण नियमोंमेंसे एक यह है कि सब प्रकारकी राजनीतिसे अलग रहा जाय। यह बात नहीं है कि श्रीअरविंदको संसारकी गति-विधिमें रस नहीं था, बल्कि इसलिये कि आजकल राजनीति एक बहुत ही निम्न कोटिकी और भद्दी चीज है जो पूरी मिथ्यात्व, चालाकी, अन्याय, शक्तिका दुरुपयोग आदिसे भरी है। राजनीतिमें भाग लेनेके लिये कपट, धोखेबाजी और बेतहाशा महत्त्वाकांक्षा पैदा करनेकी जरूरत है।

हमारे योगका आधार है सचाई, ईमानदारी, अहंकारका निषेध, भागवत कार्यके लिये निःस्वार्थ आत्मदान, चरित्रकी उदात्तता और ऋजुता। जो लोग इन आधारभूत गुणोंको अपने जीवनमें नहीं लाते वे श्रीअरविंदके शिष्य नहीं हैं और इस आश्रममें उनके लिये स्थान नहीं है। इसलिये मैं आश्रमपर किये गये उन मूर्खतापूर्ण और निराधार आक्षेपोंका उत्तर देनेसे इंकार करती हूं जो विकृत भावना और बुरे इरादेसे किये जाते हैं।

श्रीअरविंद हमेशा अपनी मातृभूमिसे प्रगाढ़ प्रेम रखते थे, लेकिन वे चाहते थे कि वह महान्, उदात्त, पवित्र हो, संसारमें अपने महान् लक्ष्यके अनुरूप हो। उन्हें यह स्वीकार न था कि वह गंदे, अधम, अपरिष्कृत, अंधे, स्वार्थपूर्ण और अज्ञान-भरे पूर्वाग्रहोंके स्तरपर उतरे। इसीलिये हम उनकी इच्छाके साथ-साथ चलते हुए सत्य, प्रगति और मानव रूपांतरकी ध्वजा उंची उठाते हैं, उन सबकी परवाह न करते हुए जो अज्ञान, मूढ़ता, ईर्ष्या और दुर्भावनाके कारण उसे गंदा करना या कीचड़में घसीटना चाहते हैं — उसे ऊंचे-से-ऊंचा फहराते हैं ताकि जिन्हें उससे प्रेम हो वे उसे देख सकें और उसके चारों ओर इकट्ठे हो सकें। (२५-४-५४)

हम जिसके लिये काम कर रहे हैं
(माताजीका एक पत्र)

प्र० — मेरी इच्छा है कि मेरे धनका उपयोग विशुद्ध रूपसे हमारे दुःखों और कष्टोंके कारणोंपर विजय प्राप्त करने लिये किया जाए।

उ० — हम यहां ठीक इसीके लिये काम कर रहे हैं लेकिन उन परोपकारियोंके कृत्रिम ढंगसे नहीं जो केवल बाहरी प्रभावोंमें ही व्यस्त हैं।

हम सर्वांगीण रूपांतर द्वारा जड़-भौतिकको दिव्य बनाकर सदाके लिये कष्टके कारणको मिटाना चाहते हैं।

आशीर्वाद।

श्रीअरविंदके साथ बातचीत :
(स्मृतिके आधारपर)
२९-५-२३

आंतरिक विकास

एक शिष्यने किसी विद्यार्थीकी चैत्य अनुभूतियोंके बारेमें सुनाया।

श्रीअरविंद : चैत्य अनुभूतियोंके और उपलब्धियोंके पीछे दौड़नेका कोई लाभ नहीं। तुम्हें पहले अपने भौतिक मनको और अपनी बुद्धिको साधारण ज्ञान और योगसंबंधी ज्ञानके द्वारा तैयार करना चाहिये। तुम्हें जानना चाहिये कि तुम्हारे अंदर क्या हो रहा है। तुम्हें आत्म-निरीक्षण, कर्मयोग और भक्तिद्वारा अपनी शुद्धि करनी चाहिये और तब एक पग आगे बढ़ाया जा सकता है।

(इस विषयपर बातचीत हो रही थी कि गुरु शिष्यको आध्यात्मिक अनुभूतियां प्रदान करते हैं)

श्रीअरविंद : इसका मतलब यही है कि तैयारी पहलेसे ही थी।

गुरुकी सहायता बाधाओंको हटाती है और स्वाभाविक विकास होता है। लेकिन कोई भी चेतनामें स्थायी परिवर्तन नहीं ला सकता।

शिष्य: हम लोगोंकी बड़ी मुश्किल यह है कि हम आसान रास्ता ढूंढ़ते हैं और आसानीसे संतुष्ट हो जाते हैं, पहाड़पर चढ़ना पसंद नहीं करते।

श्रीअरविंद: पहली बात तो यह कि लोग आसानीसे संतुष्ट हो जाते हैं। लेकिन एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है चेतनामें स्थायी परिवर्तन। लेकिन हमारे लोग कष्ट नहीं सहना चाहते। और फिर योगको तो चमत्कारोंका क्षेत्र माना जाता है। और फिर वे अपने साथ सख्ती नहीं करना चाहते, वे यही मान लेना चाहते हैं कि "मैं ठीक हूं।"

'क' को यह अनुभूति प्राप्त हुई, उसने सिरके ऊपर माताजीका सुनहरा अंतर्दर्शन पाया और फिर अचंचलताका अवतरण हुआ। अगला काम यह था कि सारी सत्ताको शुद्ध किया जाय ताकि अनुभूति बनी रहे। लेकिन वह इतना न कर पाया और अनुभूतिको खो बैठा। उसे एक बार अनुभूति प्राप्त हुई और उसने मान लिया कि बस सब कुछ हो गया। वह कह सकता था, "आखिर यह अनुभूति क्या है? इसके बाद?" इन लोगोंको सब प्रकारकी अनुभूतियां होती हैं पर जब स्थायी परिवर्तनकी बात आती है तो वे मजबूतीसे कदम नहीं उठा पाते।

११-११-१९२९

श्रीअरविंद: यह योग भली-भांति करना हो तो पूर्ण संतुलन जरूरी है। इसलिये जिन लोगोंमें योगके लिये सामान्य-सी पुकार हो उन्हें इसके लिये नहीं आना चाहिये क्योंकि यह जहां उच्चतर चेतनाके कार्यके लिये दरवाजा खोल देता है वहां प्राणिक शक्तियोंके ऊपर उठनेकी भी संभावना पैदा कर देता है और यह शक्तियां आदमीपर कब्जा कर लेती हैं। अगर आदमीमें पूरा संतुलन न हो तो यह

शक्तियां ज्यादा आसानीसे कब्जा कर लेती हैं। कभी-कभी अदृश्य चीजोंपर विश्वास करनेवाले और गुहविद्याओंकी ओर प्रवृत्तिवालेकी अपेक्षा अदृश्य चीजोंको न माननेवाला ज्यादा अच्छा रहता है। वह अन्य लोकों और सत्ताओंको नहीं मानता, उनके अस्तित्वको ही नहीं स्वीकार करता इसलिये वह उनके हमलोंसे अपेक्षाकृत ज्यादा बचा रहता है जब कि उन्हें माननेवाला उन्हें अवसर देता है। इस योगमें तुम्हारा मन स्वस्थ और संतुलित होना चाहिये।

शिष्य : सामान्यत: यह माना जाता है कि जब तक दिमागके कील-कांटे ढीले न हों तबतक आदमी इस मार्गपर नहीं आता।

श्रीअरविंद : तुम्हारा मतलब क्या है? अगर एक भी कील-कांटा ठीक न हो तो मशीन काम ही नहीं कर सकती।

शिष्य : मान्यता कुछ ऐसी है जितने अधिक कील-कांटे ढीले हों, आदमी योगके लिये उतना ही उपयुक्त होता है।

श्रीअरविंद : पूर्ण योगके लिये आदमी पूरी तरह संतुलित होना चाहिये।

शिष्य : पर मेरा ख्याल है साधारणत: संतुलित आदमी एकदम 'सांसारिक' होते हैं।

श्रीअरविंद : जरूरी नहीं है। लेकिन संतुलितसे तुम्हारा मतलब क्या है?

शिष्य : संतुलितका मतलब मन्द नहीं है।

श्रीअरविंद : हर्गिज नहीं। जब मैं इन लोगोंमें संतुलनके अभावकी बात करता हूं तो मेरा मतलब यह नहीं होता कि वे पागल हैं। इसका मतलब बस यही होता है कि उनमें उचित अनुपातमें विकास नहीं हुआ। उनका विकास एक-तरफा है या उनमें कहीं ऐसी ऐंठन है जो सब भागोंको विकसित नहीं होने देती।

(लंबा मौन)

यह पूर्ण संतुलन ही ऐसी चीज थी जिसने मुझे बचा लिया। सबसे पहले मुझे विश्वास था कि कुछ भी असंभव नहीं है और साथ

ही मैं हर बातपर प्रश्न कर सकता था अगर मैं आनेवाली हर चीज को मान लेता तो मैं विजय कृष्ण गोस्वामी जैसा हो जाता।

शिष्य : पूर्ण संतुलन क्या है ?

श्रीअरविंद : पूर्ण योगीमें बहुत प्रबल कल्पना हो सकती है और साथ ही समान रूपसे प्रबल तर्क-बुद्धि। कल्पना हर चीजपर विश्वास कर सकती है जब कि तर्क-बुद्धि तर्कसंगत अवस्थाएं तैयार करती है। तुम देखोगे कि वैज्ञानिकोंमें प्रबल कल्पना शक्ति होती है।

शिष्य : शायद वह ठीक-ठीक कल्पना नहीं होती।

श्रीअरविंद : कल्पना जीवनकी सामान्य अनुभूतिसे परेकी बातोंके बारेमें सोचनेकी शक्ति है।

शिष्य : क्या वह सत्यके साथ मेल खाती है या कोई उच्चतर क्षमता है और कल्पना मनमें उसके प्रतिनिधिका काम करती है।

श्रीअरविंद : जब वह ऊंची उठ जाती है तो प्रेरणाका रूप ले लेती है। वह जितनी शुद्ध हो उतनी ही सत्यके नजदीक जा पहुंचती है। उदाहरणके लिये कवियोंमें प्रेरणायुक्त कल्पना कार्य करती है। तुम वैज्ञानिकके बारेमें जो कहना चाहते थे वह शायद अंतर्भास है।

मेरे बौद्धिक विकासका मुख्य काल वह था जब मैं स्पष्ट देख सकता था कि बुद्धि जो कुछ कहती है वह ठीक हो भी सकता है और नहीं भी, कि बुद्धि जिस बातको युक्ति-युक्त बतलाती है वह सच है लेकिन उससे उल्टी बात भी सच्ची है। मैंने अपने मनमें कभी किसी चीजको ऐकान्तिक रूपसे सच नहीं माना, उससे उल्टी चीजके लिये भी द्वार खुला रखता था।

मनका अर्थ है अनंत संभावनाएं। तर्क-बुद्धि या समझ और सब संभावनाओंको परे हटाकर एकको पकड़ लेती है। तर्क-बुद्धि एकको मूल्य देती है और चुन लेती है। यह विज्ञानके नियमोंकी तरह है। तुम नियमको इसलिये स्वीकारते हो क्योंकि वह बहुत-से प्रश्नोंका

समाधान कर देता है। मनमें हम एक संभावनाको मान लेते हैं और बाकीको दबा देते हैं। हम अपनी दृष्टिके कारणोंको देख पाते हैं और औरोंकी अवहेलना करते हैं। या बुद्धि सत्ताके किसी और भागद्वारा चुनी हुई बातको न्यायसंगत ठहरानेके लिये व्यर्थकी ऊहा-पोह करती है।

बुद्धि चुनती है। मैंने बहुत समय पहले इसे अनुभव किया था और इसका परिणाम यह हुआ कि बुद्धिका भान कम हो गया। जैसे-जैसे तुम ऊपर उठते हो एक अधिक विस्तृत गति विकसित होती है जो परस्पर-विरोधी चीजोंमें समन्वय ले आती है।

वहां तुम उन शक्तियोंको देख सकते हो जो मानसिक विचारोंके पीछे हैं। लेकिन साधारण आदमीसे यह बात कहना बेकार है। अगर वह सभी बातोंको केवल संभावनाओंके रूपमें देखे तो वह बहुत अधिक चकरा जायगा। अगर मैं तुम्हारे आगे सभी संभावनाएं रख दूं तो तुम पूरी तरह चकरा जाओगे।

शिष्य : जब सभी बौद्धिक क्रियाएं केवल संभावनाओंके रूपमें दीखें तो क्रियान्वित करनेके लिये चुनाव कैसे किया जाय?

श्रीअरविंद : घबरानेकी कोई जरूरत नहीं है। उन्हें अच्छी तरह देखो, उनका निरीक्षण करो और यह जाननेकी कोशिश करो कि उनके पीछे क्या है।

उदाहरणके लिये मैं शंकरके मायावादपर हंस सकता हूं लेकिन मैं उन दोनोंके पीछेके सत्यको देख सकता हूं। मैं जानता हूं कि संसार-में शक्तियोंकी लीलामें उनका क्या स्थान है। सचमुच चीज यही है।

शिष्य : क्या संतुलनकी कमीको पूरा किया जा सकता है?

श्रीअरविंद : सब कुछ किया जा सकता है। तुम अपनी सीमाओं-में यह कर सकते हो। जो भाग अधिक विकसित हो तुम उनकी अतियोंको ठीक कर सकते हो और जो विकसित नहीं है उन्हें विकसित करके संतुलन ला सकते हो।

(पुराणीकृत 'ईवनिंग टाक्स'पर आधारित)

श्रीअरविंद वचन :

भौतिक विज्ञान

भौतिक ज्ञान, बाहरी चीजोंके ज्ञानका चाहे अधिक-से-अधिक विस्तार हो जाय, वह दूर-दूरके सौर मण्डलोंकी खबर ले आये, पृथ्वी और सागरोंकी अधिक-से-अधिक गहराइयां छू ले, भौतिक तत्त्व और ऊर्जाकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म शक्तियोंका भी पता लगा ले, फिर भी हमारे लिये इससे कोई तात्त्विक लाभ न होगा, यह वह चीज न होगी जिसे प्राप्त करनेकी हमें सबसे अधिक आवश्यकता है। इसीलिये भौतिक विज्ञानकी चौंधियानेवाली विजयोंके बावजूद, जड़वादका शास्त्र अंतमें चलकर असहाय और व्यर्थ मत सिद्ध होता है। इसलिये अपनी सभी उपलब्धियोंके बावजूद, चाहे वह कितनी भी सुख-सुविधा पा ले, फिर भी भौतिक विज्ञान कभी मानवजातिके लिये सत्ताका आनंद और उसकी पूर्ति नहीं ला सकता। हमारा सच्चा आनंद हमारी समस्त सत्ताके विकासमें, जीवनके समस्त क्षेत्रकी विजयमें, बाह्यके साथ-साथ और बाह्यसे बढ़कर, आंतरिक जीवनमें प्रकट और गुप्त स्वभावमें है। हमारी सच्ची पूर्णता, हमने जिस स्तरपर शुरू किया था उसीपर बड़े-बड़े चक्र बनानेसे नहीं, उनके पार जानेसे आयेगी।

("लाइफ डिवाइन")

जो शक्ति जगत्पर शासन कर रही है वह कम-से-कम तुम्हारे जितनी बुद्धिमान तो है ही, और यह एकदम जरूरी नहीं है कि उसकी व्यवस्थामें तुम से सलाह ली जाए, भगवान् उसकी देखभाल कर रहे हैं।

—श्रीमां

मानव त्रुटियां

मानव प्रकृति त्रुटियोंसे भरी है और इससे भिन्न हो भी नहीं सकती। लेकिन उसमें अन्य तत्त्व और संभावनाएं भी हैं जो यद्यपि पूरी तरह शुद्ध तो नहीं होतीं, पर मनुष्यका पूरा रूप देखनेके लिये उन्हें जानना भी जरूरी है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि मनुष्यके बारेमें सत्य जाननेसे दोष-दर्शनकी वृत्ति आये। उससे तुम्हारे अंदर चुप-चाप अलग-थलग रहनेकी वृत्ति आ सकती है, लेकिन उसमें निराशा या कटुता बिलकुल नहीं होती। उसमें चैत्य उदारता हो सकती है जो सब प्रकारके दोष देख सकनेके बावजूद, प्रेम और सहायता करती है। आध्यात्मिक चेतना किसी ओरसे आंखें मूंद नहीं लेती, न उसे कभी धोखा होता है, न वह घृणा करती है, क्योंकि वह बाहरी आवरणके पीछे छिपे उस भागवत तत्वको देख सकती है जो अभीतक बाहर प्रकट नहीं हुआ है।

('फ्यूचर पोएट्री')

भाषाकी विभिन्नता

भाषा किसी जातिके सांस्कृतिक जीवनका चिह्न, उसके विचार और मनके पीछे स्थित अंतरात्माका सूचक है। भाषाओंकी विभि-भिन्नताको बनाये रखना जरूरी है, क्योंकि संस्कृतियोंकी विभिन्नता-को बनाये रखना जरूरी है। उसके बिना जीवनकी विभिन्नता नहीं खिल सकती। इस विभिन्नताके अभावमें पतन होने या सड़ांध पैदा होनेकी संभावना ही नहीं, अनिवार्यता आ जाती है।

बहुत-से लोग एक भाषा, एक संस्कृतिवाली मानवताके स्वप्न

लेते हैं। ऐसा होनेमें बहुत-सी सुविधाएं हो सकती हैं, बहुत-सी समस्याओंका हल निकल सकता है, जैसा कि रोमन साम्राज्यमें हुआ था, लेकिन आखिर उसका लाभ क्या? उसके कारण जातियोंके मानसमें बांझपन आ जाता है, वे कोई मौलिक चीज करनेमें अक्षम हो जाती हैं।

इतना काफी नहीं है कि मानवजाति खाती-पीती और समृद्ध रहे, जीवनमें स्वाधीनता और ओजकी जरूरत है और इनके लिये विभिन्नता जरूरी है। प्राचीन यूनान, इटली और भारतके छोटे-छोटे राज्य राजनीतिक दृष्टिसे चाहे कितने भी असंतोषजनक रहे हों, लेकिन इस बातसे इंकार नहीं किया जा सकता कि कला, शिल्प, संगीत, नृत्य, आदि, रूपोंमें संस्कृतिको उन्होंने जितना प्रोत्साहन दिया, जितना आगे बढ़ाया उसका उदाहरण मिलना कठिन है।

('ह्यूमन साइकल'के आधारपर)

ईषोपनिषद्के आधारपर —७

त्यागका अर्थ

कर्मयोगी इस जगत्का त्याग करेगा ताकि वह उसका उपभोग कर सके। वह सिकन्दरकी तरह सारे संसारको भौतिक रूपमें अपने अधिकारमें करनेकी कोशिश नहीं करेगा बल्कि देवताओंकी तरह इस जगत्को अपनी अन्तरात्मामें पानेकी कोशिश करेगा। वह अपनी सीमित सत्तामें अपने-आपको खो देगा ताकि अपने-आपको दूसरोंकी सत्ताओंमें असीम रूपसे पा सके। जगत्को छोड़नेका मतलब इससे कम नहीं है कि हम अपनी तुच्छ व्यक्तिगत खुशियों और सुखोंको छोड़ दें ताकि दूसरोंके आनन्दमें गलेतक डूब सकें। एक मनुष्य जितनी चाहे खुशी पा सकता है लेकिन सैंकड़ोंकी इकट्ठी खुशी एककी खुशीसे कहीं ज्यादा होगी। इसी तरह भोगका त्याग

करके तुम सौ गुना अधिक उपभोग कर सकते हो। सच्चे प्रेमीका हमेशासे यह एक विशेष अधिकार रहा है। अगर तुम किसी स्त्रीके सच्चे प्रेमी हो तो तुम्हें अपनी खुशीसे कहीं अधिक उसकी खुशियां प्रसन्न बनाती हैं; अगर तुम अपने मित्रोंके सच्चे प्रेमी हो तो उनकी समृद्धि और उनके चमकते हुए चेहरे तुम्हें ऐसा आनन्द देंगे जिसे तुम अपनी छोटी और सीमित खुशियोंमें कभी नहीं पा सकते। अगर तुम अपने राष्ट्रके सच्चे प्रेमी हो तो उसके सैकड़ों लोगोंके आनन्द, भव्यता और धन संपत्ति तुम्हारी ही होंगी, अगर तुम मानवताके सच्चे प्रेमी हो तो पृथ्वी भरके असंख्य लोगोंका हर्ष अमृतके सागरकी तरह तुम्हारी अन्तरात्मासे बहेगा। तुम कहोगे कि दूसरोंके दुःख भी तुम्हारे अपने दुःख होंगे। लेकिन जिनसे तुम प्रेम करते हो उनके दुःखोंको बांटना क्या तुम्हारी अपनी खुशीसे ज्यादा कीमती न होगा? क्या ऐसा करना तुम्हारे लिये विशेष लाभ न होगा? दुःखमें साथ देनेसे जो खुशियां तुम्हें मिलेंगी उनपर भी जरा ध्यान दो। अगर तुम्हारे अन्दर शक्ति है, — योग हमेशा अपने साथ शक्ति लाता है, — तो तुम अपने मित्र या प्रेमीके दुःख-को सुखमें बदलने या जिस राष्ट्रके लिये तुमने अपने-आपको अर्पित किया, उसके पतन और दुःखोंको दूर करने या जिस मानवतामें तुम भगवान्‌को पाना चाहते हो उसके कष्टोंको दूर करनेके असीम हर्षको पा सकोगे। यहां तक कि इसे करनेके निरन्तर धीरजसे भरे निश्चित प्रयाससे ही ऐसा हर्ष आता है जिसके बारेमें कहा नहीं जा सकता। यहां तक कि ऐसे प्रयासमें हुई हार भी ऐसा कठोर सुख लाती है जो तुम्हें नये और कभी हार न माननेवाले कठिन कामके लिये मजबूत बनाती है। अगर तुम मुक्त करने या इस प्रयासको जारी रखनेकी शक्ति न जुटा पाओ, फिर भी दूसरोंके लिये दुःख सहने, दूसरोंके लिये मरनेकी खुशी तो तुम्हारे हिस्सेमें आती है। "किसी मनुष्यके लिये इस प्रेमसे बढ़कर कोई प्रेम नहीं है कि वह अपने मित्रके लिये जान दे दे।" हां, और वह सबसे

महान् प्रेम ही सबसे बड़ा अधिक हर्ष भी है। "अपने राष्ट्रके लिये मर मिटना मधुर और उदात्त चीज है।" कितने ही शहीदोंने अपने अन्तिम क्षणोंमें यह महसूस किया होगा कि यह बात कोरा काव्य नहीं है बल्कि एक भव्य सत्यका धुंधला और अस्पष्ट भाव है जिसे कहा नहीं जा सकता। कहा जाता है कि ईसाको सूलीपर बहुत कष्ट हुआ, हां, निश्चित रूपसे शरीर कष्ट पा रहा था लेकिन क्या ईसा कष्ट पा रहे थे या क्या वे अपनी अन्तरात्मामें देवत्वके आनन्दका अनुभव नहीं कर रहे थे? गेटेस्मान[1]की यातना आनेवाली सूलीकी यातना न थी। उन्होंने जिस प्यालेको अपने होठोंसे हटाने-की प्रार्थना की थी वह भौतिक पीड़ाका प्याला नहीं बल्कि मानवता-के पापोंका कड़वा प्याला था जिसे उन्हें पीना पड़ा था। अगर ऐसा न होता तो हमें कहना पड़ता कि यह ईसामसीह न थे, भग-वान्के पुत्र न थे, वह अवतार न थे जो यह कहनेका साहस करता कि, "मैं और मेरे पिता एक हैं," बल्कि वह एक ऐसा तुच्छ कम-जोर मनुष्य था जो मायाकी भ्रांतिमें अपने शरीरको अपना स्व मान बैठा। हमेशा यह बात याद रखो कि जो अपनी आत्मामें कमजोर है उसे शाश्वत अपने-आपको पूरी तरह नहीं देते, बलशाली और तेजस्वी आत्मा ही भगवान्को पाती हैं। दूसरे दूरसे ही उनकी परछाईको केवल छू सकते हैं। मुण्डक उपनिषद्में कहा है — नाय-मात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात् — इस आत्माको बलहीन पुरुष नहीं पा सकता। न ही सच्चे हेतुके बिना तपस्यासे ही इसे पाया जाता है।

कर्मयोगीसे जगत्के जिस त्यागकी बात कही जाती है वह जरूरी नहीं है कि भौतिक चीजोंका त्याग हो। तुमसे घर-द्वार, धन-दौलत, पत्नी, बच्चों, मित्रोंको छोड़नेके लिये नहीं कहा गया है।

---

[1] वह स्थान जहां ईसामसीहके साथ विश्वासघात किया गया था और बादमें सूलीपर चढ़ाया गया था।

तुम्हें जिस चीजको छोड़ना है वह है उनके लिये स्वार्थी कामना और उनको अपना हक और अपनी संपत्ति मान बैठनेकी आदत, और यह मान बैठना कि वे केवल तुम्हारी खुशीके लिये तुम्हारी अपनी चीजें हैं। तुम्हें अपनी कामनाकी चीजोंको दूर फेंक देनेके लिये नहीं कहा गया है बल्कि अपने हृदयसे उन्हें त्यागनेके लये कहा गया है यानी तुम्हें कामनाकी चीजोंको नहीं बल्कि उस कामना-को छोड़ना होगा। इसलिये जिस त्यागके लिये तुमसे कहा गया है वह आध्यात्मिक त्याग है, यानी तुम अपनी भौतिक चीजोंसे चिपके बिना उनका उपभोग करनेकी ऐसी शक्ति पाओगे कि तुम अपनी प्राप्तिसे न तो खुशीसे पागल हो उटो और न अपनी हानिसे एक-दम निरुत्साह हो जाओ, यही है इसके सत्यकी परीक्षा — उन चीजों-से भागो मत, ऐसा करना तो लालचसे भागना होगा। कर्मयोगीको इस संसारके अंदर रहकर उसपर विजय पानी है, वह इस द्वंद्वसे भाग नहीं सकता न इस संघर्षसे बच, कतराकर निकल सकता है। जीवनके नाटकमें उसकी भूमिका मुख्य पात्रकी है — उसके अंदर जिस गुणका होना जरूरी है वह है सिंह जैसा साहस और इस साहसके द्वारा वह अपने आध्यात्मिक शत्रुओंसे उन्हींके राज्यमें, उन्हींके दुर्गमें भिड़कर उन्हें अपने पैरों तले रौंद सकता है। कर्मयोगीको आध्यात्मिक त्यागपर ज्यादा जोर देना चाहिये क्योंकि शरीर तो केवल उस आत्माका खाका है। शरीरको भी पवित्र करना अच्छा है और इसी कारण ताकि आत्माको पवित्र करना आसान हो जाये। आत्मा पवित्र हो जाय तो शरीरपर गन्दगीका स्पर्श तक न होगा। अगर आत्मापर लालसाका धब्बा न लगे तो विषयोंका भौतिक उप-भोग उसपर धब्बा नहीं लगा सकता। क्योंकि अगर मेरी आत्मा नयी-नयी संपदाओंके पीछे नहीं भागती और संपत्तिको दांतों तले नहीं दबाती तो निश्चय ही संपत्तिका उपभोग मैं निस्स्वार्थ और निर्दोष रूपसे करूंगा और एक बार आत्मामें उनसे अलग होकर उन्हें भगवान्‌की तिजोरीमें दे देनेपर मैं सचमुच उन्हें अपने अधिकारमें

कर उनका उपभोग कर सकता हूं। ऐसा उपभोग स्वच्छ, गंभीर और शांत होता है, भाग्य इसे तितर-बितर नहीं कर सकता, डाकू इसे चुरा नहीं सकते, दुश्मन इसे बरबाद नहीं कर सकते। दूसरे सभी अधिकारके सुखोंमें उतार-चढ़ाव होता है, भय, दुःख, मुसीबत और आवेगसे उनके टूटनेका डर होता है -- अधिक सुख पानेका आवेग होता है, वह नष्ट-भ्रष्ट न हो इसके लिये मुसीबत उठानी पड़ती है, उसके कम हो जानेका दुःख होता है, और उस सुखके एकदमसे चले जानेका भय रहता है। आवेगके बिना भोग ही शुद्ध और बिना किसी मिलावटका आनंद देता है। अगर तुम सचमुच भौतिक रूपके साथ-साथ आत्मामें भी धन-वैभवको छोड़नेका चुनाव कर लो तो यह भी बहुत अच्छी बात है बशर्ते तुम इस बातपर विशेष ध्यान रखो कि तुम उसके विचारको अपने मनके अंदर न पोसो। जो लोग आध्यात्मिक त्यागके मार्गको चुनते हैं उनमेंसे बहुतोंने इस बातका अनुभव किया है कि उनके साथ एक अजीब-सा नियम लग जाता है। त्यागके साथका अनूठा नियम यह है कि जो धन-संपत्ति पानेकी जितनी कम कोशिश करता है उतनी ही अधिक संपत्ति उसके पास आती है। बलशाली समर्थ इच्छाशक्ति जी जानसे पैसा बनाकर निस्संदेह अपनी इच्छाओंको पूरा कर लेती है लेकिन बहुधा यह देखा गया है कि जो लोग धन, यश और सफलताके पीछे भागते हैं उतनी ही ये चीजें उनसे दूर भागती हैं और उनके पास आ जाती हैं जिन्होंने अपनी लालसाको जीत लिया है। धन-दौलतके प्रेमी उन्हें पाये बिना कूचकर जाते हैं या फिर उसे पापसे सने हाथों, कठिनाइयोंके पहाड़ और जी तोड़ मेहनतसे ही पाते हैं जब कि जो मनुष्य उनकी तरफसे पीठ फेर लेता है वह देखता है कि ये सारी चीजें अपने-आप ही आकर उसके आस-पास इकट्ठी हो रही हैं। उस समय या तो वह इनका उपभोग कर सकता है या इन्हें त्याग सकता है। त्याग करना महान् पथपर चलना है और असंख्य ऋषि मुनियोंने इसी पथको चुना है। लेकिन कर्मयोगी उनका भोग कर

सकता है, निश्चित रूपसे अपनी निजी खुशीके लिये यानी अपने मिथ्या स्वके लिये नहीं क्योंकि इस तरहके भोगको कर्मयोगी पहले ही छोड़ देता है बल्कि वह इन चीजोंमें भगवान्का और उनका भगवान्के लिये उपभोग कर सकता है। जिस तरह कोई राजा अपने सामने लाये नजरानेको छूकर सरकारी तिजोरीके लिये भेज देता है उसी तरहसे कर्मयोगी अपने पास आये धन-दौलतको बस छूकर अपने आस-पासके लोगों, गरीबों, काम करनेवालों, देश, मानवताके हितके लिये उंडेल देता है क्योंकि वह इन सभी चीजोंमें ब्रह्मको देखता है। अगर यश और कीर्ति उसे मिलें तो वह उन्हें शांति और संकोचसे भरी सच्ची नम्रताके परदोंके पीछे खिसका देगा और वह कीर्ति जो प्रभाव लायेगी उसको अपने लिये नहीं बल्कि मनुष्योंके काममें लायेगा ताकि उन्हें ऊपर भगवान्की ओर उठानेमें उनकी सहायता कर सकें। इस तरहका व्यक्ति जल्दी ही सुख दुःख, सफलता असफलता, विजय पराजयसे ऊपर उठ जायेगा क्योंकि जिस तरह दुःखमें, उसी तरह सुखमें भी वह अपने-आपको भगवान्के निकट पायेगा। वह निकटता गहरी होती हुई निरंतर मैत्रीमें बदलेगी, और उस मैत्रीके द्वारा वह भगवान्की आध्यात्मिक प्रतिमामें बदलता जाएगा। यहां तक कि भगवान्के साथ अंतिम शिखरतक पहुंचते-पहुंचते मनुष्य तादात्म्यद्वारा भगवान्से एक हो जायगा, यानी मनुष्य जिसने अपने देवत्वको भुला दिया था, उसे अपना देवत्व पूरी तरह याद हो आता है और वह शाश्वत बन जाता है। इस तरह त्यागका सच्चा और एकमात्र नियम है निस्स्वार्थता, अपने-आपके अधिक विशाल स्व यानी दूसरोंके लिये प्रेम करना ही निस्स्वार्थताको बढ़ाना है, हर एक पार्थिव चीजमें भागवत उपस्थिति-का अनुभव करनेपर वह निस्स्वार्थता अपनी जड़ें पकड़ लेती है और स्थिर हो जाती है, उसकी प्राप्ति और उसका लक्ष्य है ब्रह्मको पाना और कुछ नहीं।

एक तरुण साधकका माताजी और श्रीअरविंदके साथ पत्रव्यवहार

जो प्रार्थनाएं मैं कोई आपको लिखता हूं कभी-कभी मैं उन्हें 'क' को दिखाना चाहता हूं। क्या यह कामना गलत है?

तुम जो प्रार्थनाएं लिखते हो वे किसीको नहीं दिखानी चाहियें, केवल फ्रेंच सीखनेके लिये तुम उन्हें 'ज्ञ'को दिखा सकते हो।
(७ फरवरी, १९३३) — श्रीअरविंद

मान लीजिये मैंने कोई गलत काम किया और उसे करनेके बाद ही मैं उसके बारेमें सचेतन हुआ। तुरंत सचेतन होनेके लिये मुझे क्या करना चाहिये ताकि क्रिया दोहरायी न जाये?

अगर तुम इसे बहुत तीव्रतासे चाहते हो और इसके लिये अभीप्सा करते हो, तो यह चीज इन कई तरीकोंमेंसे किसी एकसे आ सकती है —

१ — तुम्हारे अंदर अपनी गतिविधियोंको देखनेकी ऐसी आदत या ऐसी क्षमता आ जायेगी कि तुम क्रियाके आवेगको आता हुआ देखोगे और उसकी प्रकृतिको भी देख सकोगे,

२ — ऐसी चेतना आ सकती है जो, किसी गलत विचार, गलत क्रियाके लिये आवेग या संवेदनके आनेपर एकदम बेचैनीका अनुभव करती है,

३ — जब तुम कोई गलत क्रिया करने जा रहे हो तो तुम्हारे अंदरकी कोई चीज चेतावनी दे सकती है और तुम्हें उसे करनेसे रोक सकती है।
(७ फरवरी, १९३३) — श्रीअरविंद

मेरी चेतना ऐसी है जो मुझे बहुधा गलत रास्तेपर जाने या बुरा कार्य करनेसे रोकती है, लेकिन कभी-कभी वह नहीं रोकती।

मैं एक भी ऐसी क्रिया नहीं चाहता जिसे माताजी पसंद नहीं करतीं।

अगर तुम प्रबल रूपसे चाहो और अगर तुम हमेशा सावधान रहनेकी कोशिश करो, तो वह भी हो जायेगा।
(८ फरवरी, १९३३) — श्रीअरविंद

मैं दोपहरके भोजनके बाद कुछ आराम करता हूं और बहुत बार नींद आ जाती है। रातमें दिनकी तरह नींद नहीं आती है। रातको सोना बंद कर देना और बिना सोये आराम करना अच्छा है क्या?

सोना एकदमसे अनिवार्य है। तुम्हें २४ घण्टोंमें कम-से-कम आठ घण्टे सोना चाहिये। स्वभावतः रात सोनेका उचित समय है लेकिन तुम दिनमें भी एक दो घण्टे सो सकते हो।
(९ फरवरी, १९३३) — श्रीअरविंद

व्यक्ति निरर्थक विचारोंसे कैसे छुटकारा पा सकता है?

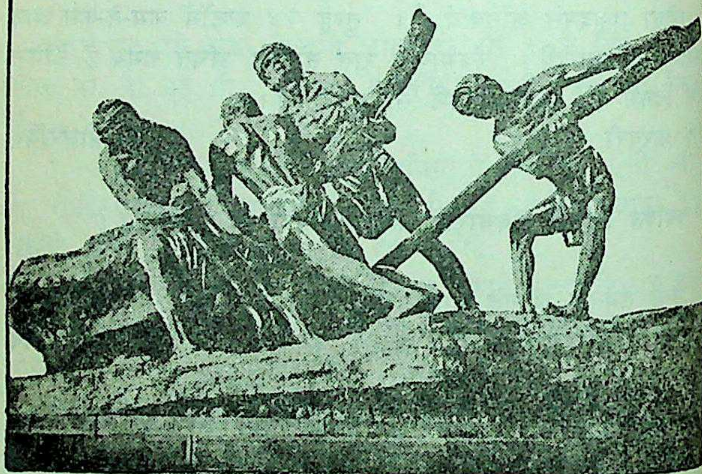
उन्हें तबतक त्यागते जाओ जबतक वे आना बंद न कर दें।
(९ फरवरी, १९३३) — श्रीअरविंद

लिफाफेके ऊपर जो वाहमृग (रेण्डियर)का चित्र है वह सहन-शक्तिका प्रतीक है।
(१५ फरवरी, १९३३) — माताजी

"गरीबी मिटाने का एक ही जादू है--और वह है कड़ी मेहनत, इसके साथ ही अनुशासन और अपने उद्देश्यों की सही और साफ़ जानकारी।"

–इन्दिरा गांधी

सत्यमेव जयते-श्रम एव जयते



Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

Sri Aurobindo

Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है। तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये भी बहुमूल्य हो जायगा।

— श्री मां



Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

Statement about ownership and other particulars about Newspaper (AGNISHIKHA) *to be published in the first issue every year after the last day of February*

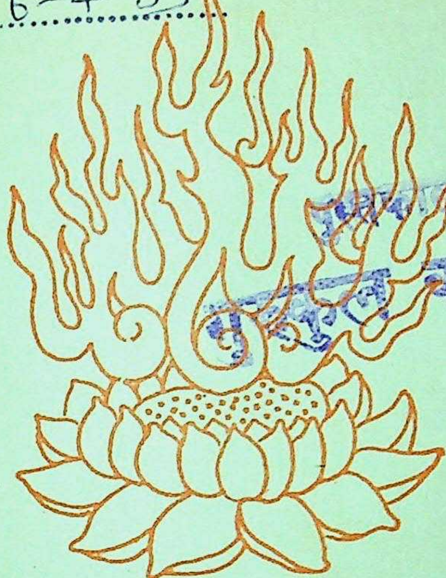
FORM IV (See Rule 8)

1.	Place of Publication:	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-605002
2.	Periodicity of its publication:	Monthly
3.	Printer's Name:	Amiyo Ranjan Ganguli
	Nationality	Indian
	Address	Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry-605002
4.	Publisher's Name:	Secretary, Sri Aurobindo Society
	Nationality	Indian
	Address	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-605002
5.	Editor's Name:	Ravindra
	Nationality	Indian
	Address	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-605002
6.	Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital:	Sri Aurobindo Society, Pondicherry-605002

I, Gurupershad, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Date: March, 1983

(Sd) Gurupershad
Signature of Publisher



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

(माताजी और श्रीअरविंद अपने बारेमें)

अप्रैल १९८३ वर्ष १३, अंक ९, पूर्णांक १५३

विषय-सूची

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :
संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००

संपादकीय :

चट्टान और लहरें

हम सब जीवन-सागरकी लहरें हैं जो कभी चट्टानोंसे टकराकर बिखर जाती हैं तो कभी समुद्र-तटकी बालूपर अपने-आपको न्योछावर कर देती हैं। समयके आवर्तनोंमें हठात् उस सागरमें ठोस, निश्चल और अडिग द्वीप उभर आते हैं जो हम छोटी लहरोंके लिये सहारा और संकेत-बिन्दु बन जाते हैं। वैसे ही द्वीप-द्वयकी अन्तरंग झांकी इस अङ्कमें प्रस्तुत है।

कहते हैं कि समान कोटि और चरित्रके व्यक्ति ही एक दूसरेको पुस्तककी भांति पढ़ सकते हैं। यहां वैसी ही युगल मूर्ति एक-दूसरेको बांचकर हमारे लिये कई समस्याएं हल कर रही है। आशा है उनके चरित्रकी झांकी पाकर हम छोटी लहरें प्रचण्ड, वेगवान उद्देश्यसे प्रेरित जल-धाराएं बनकर धीरे-धीरे जीवन-सागरके रंग-रूपको अधिक रोचक, सुन्दर और सार्थक बना पाएंगी।

—अनुबेन

*

दैनन्दिनी

अप्रैल

१. तुमसे मुझे यह कहना है: दुःखको दुलारो मत और दुःख तुम्हें पूरी तरह छोड़ देगा। प्रगतिके लिये दुःख अनिवार्य बिलकुल नहीं है। सबसे महान् प्रगति स्थिर और प्रसन्नतापूर्ण समचित्ततामें की जाती है।

२. संसार दुःखों और क्लेशोंसे भरा है। तुम्हें यह कोशिश करनी चाहिये कि तुम किसी अतिरिक्त दुःखका कारण न बनो।

३. सभी मानव दुःखोंका एकमात्र उपचार: भागवत प्रेम।

४. भगवान्‌की ओर मुड़ो, तुम्हारे सभी दुःख गायब हो जायेंगे।

५. हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् हमें हमेशा अधिकाधिक सिखायें, अधिकाधिक बोध दें, हमारे अज्ञानको छिन्न-भिन्न करें, हमारे मनोंको प्रकाश दें।

६. भागवत कृपाके प्रति कभी तीव्र और सच्ची प्रार्थना व्यर्थ नहीं की जाती।

७. परम प्रभु भागवत ज्ञान और पूर्ण ऐक्य हैं। दिनके प्रत्येक क्षण हम उनका आह्वान करें ताकि हम उनके सिवा और कुछ न हों।

८. जब हम अपनी निराशामें, भगवान्‌को पुकारते हैं तो वे हमेशा हमारी पुकारका उत्तर देते हैं।

९. हम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी कृतज्ञताकी प्रदीप्त ज्वालाको और आनंदमय और पूरी तरह विश्वस्त निष्ठाको स्वीकार करें।

१०. उचित रूपसे निवेदित की गयी हर प्रार्थना हमें भगवान्‌के अधिक नजदीक लाती है और उनके साथ ठीक-ठीक संबंध स्थापित करती है।

११. जो सचाईके साथ भगवान्‌को पुकारते हैं उनके लिये कुछ भी कठिन नहीं है।

१२. मैं केवल अज्ञानकी बलिकी मांग कर रही हूं — यानी निश्चेतना और अहंकी सीमाओंकी बलिकी — लेकिन कितने अद्वितीय और अद्‌भुत लाभके लिये !!

१३. तुम्हारा जीवन पूर्णतः, ऐकांतिक रूपसे परम प्रभुद्वारा शासित हो।

१४. तुम्हारी उच्चतम अभीप्सा तुम्हारे जीवनको व्यवस्थित करे।

१५. अपनी अभीप्साको उद्दीप्त और निष्कपट बनाओ और यह कभी न भूलो कि तुम भगवान्‌के बालक हो। यह तुम्हें कोई भी ऐसी चीज करनेसे रोकेगा जो भगवान्‌के बालकोंके अयोग्य हो।

१६. सब कुछ हर एककी वृत्ति और उसके अभिगमनकी सचाई-पर निर्भर है।

१७. परम प्रभु, हमें नीरव रहना सिखा ताकि नीरवतामें हम तेरी शक्ति पा सकें और तेरी इच्छाको समझ सकें।

१८. हमें सत्यकी ओर अपने प्रयासमें वास्तविक रूपसे सच्चा होना सिखला।

१९. प्रभु, परम सत्य,
हम तुझे जानने और तेरी सेवा करनेके लिये अभीप्सा करते हैं। हमारी सहायता कर कि हम तेरे योग्य बालक बन सकें। और इसके लिये हमें तू अपने सतत उपहारोंके बारेमें अवगत कर ताकि कृतज्ञता हमारे हृदयोंको भर सके और हमारे जीवनपर राज कर सके।

२०. प्रभु, तेरा प्रेम इतना महान् है, इतना उदात्त और इतना पवित्र है कि वह हमारी समझके परे है। वह अमित और अनन्त है। हमें उसे घुटने टेककर ग्रहण करना चाहिये। फिर भी तूने उसे इतना मधुर बना दिया है कि हममेंसे सबसे निर्बल भी, एक बच्चा भी तेरे पास आ सकता है।

२१. स्थिर शांत और शुद्ध भक्तिके साथ हम तुझे नमस्कार करते हैं और तुझे, अपनी सत्ताकी एकमात्र सद्वस्तुके रूपमें स्वीकार करते हैं।

२२. प्रभु, सुन्दरता और सामंजस्यके देव,
वर दे कि हम संसारमें तेरी परम सुन्दरताको अभिव्यक्त करने योग्य यंत्र बन सकें।
यही हमारी प्रार्थना और हमारी अभीप्सा है।

२३. मधुर मां, वर दे कि हम सरल रूपसे अब और हमेशाके लिये तेरे नन्हें बालक बने रहें।

२४. "मेरे मनका प्रत्येक विचार मेरे हृदयका हर एक भाव मेरी सत्ताकी हर एक गति, हर एक भावना और हर एक संवेदन मेरे शरीरका हर एक कोषाणु, मेरे रक्तकी हर बूंद, सब, सब कुछ तुम्हारा है, पूरी तरह तुम्हारा है, बिना कुछ बचाये तुम्हारा है, तुम मेरे जीवनका निश्चय कर सकते हो या मेरे मरणका, मेरे सुखका या मेरे दुखका, मेरी खुशीका या मेरे कष्टका, तुम मेरे साथ जो भी करो, मेरे लिये तुम्हारे पाससे जो भी आये, वह मुझे भागवत आनंदकी ओर ले जायेगा।"

२५. यहां हर एक, समाधान करनेके लिये किसी-न-किसी असंभवता-का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन हे प्रभु, तेरी दिव्य शक्तिके लिये सब कुछ संभव है। क्या ब्यौरेमें और समग्रमें इन सब असंभावनाओंको दिव्य उपलब्धियोंमें रूपांतरित कर देना ही तेरा कार्य न होगा?

२६. हे मेरे मधुर स्वामी, तू ही विजेता है और तू ही विजय, तू ही जय है और तू ही जयी!

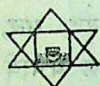
२७. तेरा हृदय मेरे लिये परम आश्रय है जहां हर चिन्ता शांत हो जाती है। कृपा कर कि यह हृदय पूरा खुला रहे ताकि वे सब जो यातनामें हैं, परम आश्रय पा सकें।

२८. समस्त हिंसाको शांत कर दे, तेरा प्रेम ही राज्य करे।

२९. हे प्रभु, तेरी इच्छा पूर्ण हो। तू ही सर्वश्रेष्ठ पूर्ण सुरक्षा है।

३०. प्रत्येक कार्यको ठीक-ठीक पूजाके रूपमें करना चाहिये।

श्रीअरविन्द अपने विषयमें



केवल मैं ही अपने भूतकालकी चीजोंके बारेमें उन्हें उनका सच्चा रूप और महत्त्व देते हुए कह सकता हूं।

*



न तो तुम और न कोई और ही मेरे जीवनके बारेमें कुछ भी जानता है। वह ऊपरी सतहपर नहीं जिया गया कि लोग देख सकें।

*

मेरा प्रबल विश्वास है कि आप भगवान्‌के अवतार हैं। क्या मेरा विश्वास ठीक है?



अपने विश्वासका अनुसरण करो — संभवतः यह विश्वास तुम्हें भटकाएगा नहीं।

*



एकमात्र दिव्य प्रेम ही उस भारको वहन कर सकता है जिसे मुझे वहन करना है, जिसे उन सब लोगोंको वहन करना होता है जिन्होंने पृथ्वीको अंधकारके अंदरसे भगवान्‌की ओर उठा ले जानेके एकमात्र उद्देश्यके लिये बाकी सब कुछ न्यौछावर कर दिया है। गालियो (Gallio) का-सा

कोई परवाह नहीं करता" का सिद्धांत ("Je mén fiche"-ism) मुझे एक पग भी आगे नहीं ले जा सकता; निश्चय ही वह भाव दिव्य नहीं हो सकता। वह चीज तो बिलकुल दूसरी ही है जो मुझे बिना रोये-गाये अपने लक्ष्यकी ओर जानेकी शक्ति देती है।

*

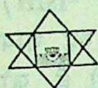
मैं मनकी भाषाका प्रयोग इसलिये करता हूं कि और कोई ऐसी भाषा है ही नहीं जिसे मनुष्य समझ सकें, — यद्यपि उनमें अधिकतर इसे अशुद्ध रूपमें ही समझते हैं। यदि मैं ज्वायस (Joyce) की तरह किसी अतिमानसिक भाषाका प्रयोग करता तो उसे समझनेका भ्रम भी तुम्हें न होता; अतएव, आयर्लैंडका निवासी न होनेके कारण, मैं वैसा प्रयास नहीं करता। परन्तु, इसमें संदेह नहीं कि जो कोई विश्व प्रकृतिको बदलना चाहता है उसे इसे बदलनेके लिये सबसे पहले इसको अपनाना होगा। यहां अपनी एक अप्रकाशित कविता[1] का एक अंश उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा:

He who would bring the heavens here,
  Must descend himself into clay
And the burden of earthly nature bear
  And tread the dolorous way... ... ...

अर्थात् "जो स्वर्गको यहां उतारना चाहता है उसे पहले स्वयं यहां कीचड़में उतरना होगा और पार्थिव प्रकृतिका भार वहन करते हुए यहांके दुःखदायी मार्गपर चलना होगा।

---

[1] "God's labour" शीर्षक कविता जो अब उनके Poems Past and Present नामक कविता संग्रहमें प्रकाशित हो गई है। द्रष्टव्य Collected Poems (कलेक्टिड पोयम्स) शताब्दी संस्करण १९७२, खण्ड ५, पृ. ९९.



मेरे अंदर आध्यात्मिकताके लिये अन्तर्वेग नहीं था, मैंने आध्यात्मिकताको विकसित किया। मैं दर्शनशास्त्र समझनेमें असमर्थ था, मैं विकसित होते-होते दार्शनिक बन गया। मुझमें चित्रकलाके लिये पारखी आंख नहीं थी — मैंने इसे योगद्वारा विकसित किया। मेरी प्रकृति जो कुछ थी उससे मैंने उसे उसमें बदल डाला जो वह नहीं थी। यह कार्य मैंने एक विशेष विधिसे किया, किसी चमत्कारके द्वारा नहीं और ऐसा मैंने यह दिखानेके लिये किया कि क्या-क्या किया जा सकता है और उसे कैसे किया जा सकता है। यह सब मैंने अपनी किसी वैयक्तिक आवश्यकताके वश नहीं किया, न ही किसी प्रक्रियाके विना एक चमत्कारके द्वारा। मैं कहता हूं कि यदि ऐसी बात नहीं है तो मेरा योग निरर्थक है और मेरा जीवन एक भूल था — प्रकृतिकी एक निरी मूर्खतापूर्ण सनक जिसका न कोई अर्थ है न परिणाम। तुम सब यह सोचते दीखते हो कि यह कहना मेरी बड़ी भारी स्तुति है कि मैंने जो कुछ किया है उसका मेरे सिवा और किसीके लिये कुछ अर्थ नहीं — उल्टे, यह मेरे कामकी अधिक-से-अधिक क्षतिकारी आलोचना है जो की जा सकती है। साथ ही, यह कार्य मैंने भी अपने-आप, अपने बल-बूतेपर नहीं किया, यदि मेरे अपने-आपसे तुम्हारा मतलब उस अरविंदसे है जो पहले था। उसने यह श्रीकृष्ण और भगवती शक्तिकी सहायतासे ही किया। मानवीय स्रोतोंसे भी मुझे सहायता मिली।

*



अवतारोंके विषयमें मुझे पता नहीं। क्रियात्मक रूपमें मुझे जो मालूम है वह यह है कि जब मैंने साधना आरंभ की तो मुझमें सब आवश्यक शक्तियां नहीं थीं, मुझे योगद्वारा उन्हें विकसित करना पड़ा, कम-से-कम उनमेंसे बहुत-सी

शक्तियोंको जो मेरी साधनाके आरंभमें मेरे अंदर थी ही नहीं, और जो मुझमें थीं भी उन्हें भी मुझे सधाकर अधिक ऊंची कोटिकी बनाना पड़ा। इस विषयमें मेरा अपना विचार यह है कि अवतारका जीवन और कार्य चमत्कार नहीं होते। यदि वे ऐसे होते तो उसका अस्तित्व सर्वथा निरर्थक होता, प्रकृतिकी एक व्यर्थकी मौजमात्र। वह तो पार्थिव अवस्थाओंको स्वीकार करता है, साधनोंका प्रयोग करता है, मानवजातिको मार्ग दिखाता है और उसे सहायता भी देता है। नहीं तो उससे क्या लाभ और वह यहां आता ही क्यों है?

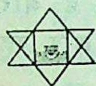
*

तो तुम सोचते हो कि मुझमें (माताजीको मैं यहां अपने साथ सम्मिलित नहीं करता) कभी कोई संदेह या निराशा हुई ही नहीं, इस प्रकारके कोई आक्रमण हुए ही नहीं। मैंने ऐसा हर आक्रमण झेला है जिसे मनुष्य झेल चुके हैं, अन्यथा मैं किसीको यह आश्वासन न दे सकता कि "इसपर भी विजय पाई जा सकती है।" कम-से-कम मुझे ऐसा कहनेका कोई अधिकार न होता। तुम्हारा मनोविज्ञान तो भीषण रूपसे कठोर है। मैं फिर कहे देता हूं कि भगवान् जब पार्थिव प्रकृतिका भार अपने ऊपर लेते हैं तो वे इसे जादूगरकी-सी किन्हीं चालाकियों या बहानेबाजीके बिना पूरी तरह और सच्चाईसे निभाते हैं। यदि कोई ऐसी चीज उनके पीछे स्थित होती है जो पर्दोंमेंसे सदा ही प्रकट हो उठती है तो वह सारतः वही वस्तु होती है जो दूसरोंके पीछे भी स्थित होती है, भले ही वह उनमें अधिक मात्रामें क्यों न हो — और उस वस्तुको जगानेके लिये ही वे यहां भूतलपर विद्यमान होते हैं।

जो लोग आध्यात्मिक मार्गका अनुसरण करनेके लिये अभिप्रेत हैं उन सबके लिये चैत्यपुरुष एक-सी ही क्रिया करता है — उसका

अनुसरण करनेके लिये मनुष्योंके लिये यह आवश्यक नहीं कि वे असाधारण व्यक्ति हों। तुम यही भूल कर रहे हो — महानताका राग अलापना, मानों केवल महापुरुष ही आध्यात्मिक हो सकते हों।

*



मैं तुम्हें यह बता रहा था कि तत्त्वतः सभी चीजें संभव हैं — अतः तुम्हें यह नहीं कहना चाहिये कि भगवान् यह नहीं कर सकते, वह नहीं कर सकते। पर साथ ही मैं यह भी दर्शा रहा था कि जब भगवान् अपनी इच्छासे ही किन्हीं नियत अवस्थाओंमें कुछ कर रहे होते हैं तो वे इसके लिये वाध्य नहीं कि बिलकुल अकारण ही अपनी सर्वशक्तिमत्ता दिखाने लगें। क्योंकि यह तर्क करनेसे कि भगवान् ऐसा या वैसा नहीं कर सकते, वे अक्षम हैं, जो आजतक कभी नहीं हुआ उसे वे नहीं कर सकते इत्यादि, तुम वस्तुओंको बदलनेकी और इस प्रकार क्रमविकासकी, असिद्धको साधित करनेकी, भागवत शक्ति एवं भागवत कृपाके कार्यकी संभावनासे ही इन्कार कर देते हो, और इस प्रकार सब कुछको एक अनमनीय एवं अपरिवर्तनीय 'यथापूर्व स्थिति' का रूप दे देते हो, जो तथ्य और तर्क (!) दोनोंकी और साथ ही पारबौद्धिक तर्ककी भी धृष्टतापूर्ण अवज्ञा ही है। अब कुछ समझे?

जहांतक मेरा और माताजीका प्रश्न है, — ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं, "यदि अतिमानसको उतरना ही है तो वह हर एक आदमीमें उतर सकता है, तो पहले उनमें ही क्यों? हम ही उसे उनसे पहले क्यों न पायें? उनके द्वारा ही क्यों, सीधे क्यों नहीं?" यह बात बहुत ही युक्तियुक्त, तर्कसंगत और अत्यन्त न्यायोचित लगती है। कठिनाई यह है कि यह तर्क उसकी प्राप्तिकी शर्तोंकी उपेक्षा कर देता है, मूर्खतापूर्वक यह मान लेता है कि अतिमानस क्या है, इसे जरा भी जाने बिना मनुष्य उसे अपने अंदर उतार

ला सकता है और इस प्रकार एक बिलकुल उलटे चमत्कारकी कल्पना एवं आशा करता है — जो कोई भी ऐसा करनेकी चेष्टा करेगा वह एक अति बीभत्स पतनके गर्तमें गिरे बिना नहीं रह सकता — जैसे कि इससे पहले वे सब गिर चुके हैं जिन्होंने ऐसा करनेका यत्न किया। यह तो ऐसा सोचनेके बराबर है कि मनुष्यको मार्गदर्शकका अनुसरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं और उसके बिना ही वह, ढालू चट्टानके किनारेके जिस संकरे मार्गपर वह चल रहा है उसीके सहारे बस हवामें छलांग लगाकर, पर्वतकी चोटीपर पहुंच सकता है। उसका जो परिणाम होता है वह होकर रहेगा।

मेरा इरादा केवल अपने लिये अतिमानसको प्राप्त करनेका बिलकुल नहीं है। मैं अपने लिये कुछ भी नहीं कर रहा, क्योंकि मुझे अपने लिये किसी चीजकी जरूरत नहीं है, न तो मोक्षकी और न अतिमानसिक स्थितिकी। यदि मैं अतिमानसीकरणके लिये कोशिश कर रहा हूं तो वह सिर्फ इसलिये कि पृथ्वी-चेतनाके लिये इस कामका किया जाना आवश्यक है और अगर यह मेरे अन्दर सिद्ध न हो तो दूसरोंमें भी नहीं हो सकेगा। स्वयं मेरा अतिमानसिक स्थितिको प्राप्त करना पृथ्वी-चेतनाके लिये अतिमानसके द्वार खोलनेकी कुंजीमात्र है। मेरा उसको केवल प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ही प्राप्त करना बिलकुल बेकार होगा। परन्तु इससे यह परिणाम भी नहीं निकाल सकते कि यदि, या जब मैं अतिमानसिक हो जाऊंगा तो प्रत्येक मनुष्य ही अतिमानसिक हो जायगा। दूसरे जो भी मनुष्य इसके लिये तैयार होंगे, और जब वे इसके लिये तैयार होंगे तब वे भी अतिमानसिक बन सकेंगे — यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मेरी उपलब्धि उनके लिये इसमें अत्यन्त सहायक होगी। अतएव इसके लिये अभीप्सा करना सर्वथा उचित है। यदि : —

१. मनुष्य इसे अतीव वैयक्तिक या अहंभावमय विषय बनाकर

अतिमानव बननेकी नीत्शे[1]की-सी या और किसी महत्त्वाकांक्षाका रूप न दे।

२. वह इस उपलब्धिके लिये जरूरी और अनिवार्य अवस्थाओं और स्थितियोंमेंसे गुजरनेके लिये तैयार हो।

३ वह सच्चा हो और इसे भगवान्‌की खोज एवं उससे फलित होनेवाली अपने अंदर भागवत संकल्पकी सिद्धिका अंग माने और इससे अधिक और किसी चीजका आग्रह न करे कि वह परम संकल्प चरितार्थ हो, चरितार्थताका रूप चाहे जो भी हो — आन्तरात्मीकरण, आध्यात्मीकरण या अतिमानसीकरण। इसे संसारमें ईश्वरके कार्यकी परिपूर्णता समझना चाहिये, वैयक्तिक सुयोग या उपलब्धि नहीं।

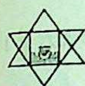
परन्तु जो घटनाएं आज हो रही हैं उनसे मैं निरुत्साहित नहीं हुआ हूं, क्योंकि मैं यह जानता हूं और मैंने सैकड़ों बार यह अनुभव किया है कि जो व्यक्ति भगवान्‌का यंत्र है उसके लिये घोर-से-घोर अंधकारके परे भागवत विजयकी ज्योति विद्यमान रहती है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैंने इस संसारमें किसी बातके लिये — यहां मैं व्यक्तिगत चीजोंके बारेमें नहीं कह रहा हूं — कोई प्रबल और आग्रहपूर्ण संकल्प किया हो और वह पूरी न हुई हो, भले ही उसके पूरे होनेमें विलम्ब हुआ हो या पराजय और महाविपत्तिका सामना करना पड़ा हो। एक समय था जब हिटलरकी सर्वत्र विजय हो रही थी और यह निश्चित प्रतीत होता था कि असुरका अंधकारपूर्ण जुआ समस्त संसारके कंधोंपर लाद दिया जायगा, परन्तु अब कहां है हिटलर और कहां है उसका राज्य? बर्लिन और न्यूरेमबर्गने मानव इतिहासके उस भयानक अध्यायका अंत सूचित कर दिया है। अब अन्य अंधकारमय शक्तियां मानवजातिको ढक देने या निगल जानेकी धमकी दे रही हैं, पर वे भी उसी प्रकार नष्ट हो जायंगी जिस प्रकार वह दुःस्वप्न नष्ट हो

---

[1]एक जर्मन दार्शनिक जिसके अनुसार अतिमानवीय बल भी वैयक्तिक अहंकार था और महत्त्वाकांक्षाका रूप था।

गया है। अपने इस विश्वासको पुष्ट करनेवाली सभी बातोंको मैं पूर्ण रूपसे इस पत्रमें नहीं लिख सकता — संभवतः एक दिन आयेगा जब मैं ऐसा कर सकूंगा।

*



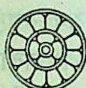
तुमने अपने एक पत्रमें अपने चारों ओर जगत्में छाये हुए अंधकारके बारेमें अपनी भावना प्रकट की है। शायद यह भी एक कारण है जिससे तुम इतनी बुरी तरह परेशान हो गये हो और आक्रमणको तुरन्त ही पीछे धकेलनेमें असमर्थ हो। जहांतक मेरा संबंध है, मुझे अंधकारमयी अवस्थाएं निरुत्साहित नहीं करतीं और न मेरे अंदर यह विश्वास ही बिठाती हैं कि "संसारकी सहायता" करनेका मेरा संकल्प निरर्थक है, क्योंकि मुझे मालूम था कि ऐसी अवस्थाएं आयेंगी; वे विश्वप्रकृतिमें मौजूद थीं और उनका प्रकट होना जरूरी था ताकि वे समाप्त की जा सकें या निकाल फेंकी जायं और उनसे मुक्त एक अधिक अच्छा संसार जन्म ले सके। आखिर बाह्य क्षेत्रमें कुछ तो किया ही गया है और वह आंतरिक क्षेत्रमें भी कुछ करनेमें सहायक हो सकता है या उसके लिये तैयारी कर सकता है। उदाहरणके लिये, भारत अब स्वतन्त्र है और इसकी स्वतन्त्रता भगवान्का काम पूरा होनेके लिये जरूरी थी। आज जो कठिनाइयां उसे घेरे हुई हैं और जो शायद कुछ समयतक बढ़ती ही जायं — विशेषकर पाकिस्तानके झमेले-झंझटको लेकर — वे भी ऐसी चीजें हैं जिनका आना जरूरी था ताकि उन्हें साफ किया जा सके। यहां भी पूरे तौरसे सफाई जल्द होगी यद्यपि दुर्भाग्यवश इस प्रक्रियामें मनुष्यको काफी मुसीबतें उठानी पड़ेंगी। पर भगवान्का काम ज्यादा संभव हो सकेगा और यह जरूर हो सकता है कि संसारको आध्यात्मिक प्रकाशकी ओर ले जानेका स्वप्न — यदि वह स्वप्न है — एक वास्तविक सत्य बन जाय।

3

मैं आज भी, इन सब अंधकारमयी अवस्थाओंके होते हुए भी, यह माननेको तैयार नहीं हूं कि मेरा जगत्‌की सहायता करनेका संकल्प जरूर असफल होगा।

माताजी श्रीअरविन्दके विषयमें

आपने श्रीअरविंदके जन्मको विश्व-इतिहासमें "शाश्वत' 'बतलाया है। "शाश्वत" का ठीक अर्थ क्या है ?



इसे चेतनाके उत्तरोत्तर चढ़ते हुए चार भिन्न तरीकोंसे समझा जा सकता है :

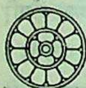
१. भौतिक, जन्मके परिणाम जगत्‌के लिये शाश्वत महत्त्वके होंगे।

२. मानसिक, यह एक ऐसा जन्म है जिसे विश्व इतिहास शाश्वत रूपसे याद रखेगा।

३. चैत्य, एक ऐसा जन्म जो धरतीपर युग-युगमें हमेशाके लिये होता है।

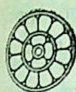
४. आध्यात्मिक, 'शाश्वत' का धरतीपर जन्म।

*



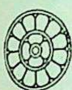
हमने कल जिन्हें देखा था वे तो धरतीपर हैं; उनकी उपस्थिति इस बातको सिद्ध करनेके लिये काफ़ी है कि वह दिन आयगा जब अंधकार प्रकाशमें बदल जायगा और तेरा राज्य धरतीपर स्थापित होगा।

*



जगत्के इतिहासमें श्रीअरविंद जिस चीजका प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, वह कोई अंतःप्रकाश भी नहीं है, वह परम पुरुषकी निर्णायक क्रिया है।

*



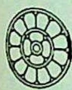
संभवनकी शाश्वततामें प्रत्येक अवतार एक अधिक पूर्ण सिद्धिका उद्घोषक और अग्रदूत होता है।

फिर भी लोगोंमें हमेशा यह वृत्ति रहती है कि भविष्यके अवतारोंके विरुद्ध भूतकालके अवतारकी पूजा करें।

अब फिरसे श्रीअरविंद जगत्के सामने आगामी कलकी उपलब्धिकी घोषणा करने आये हैं, और फिरसे उनके संदेशका उसी तरह विरोध हो रहा है जैसा उनसे पहले आनेवालोंका हुआ था।

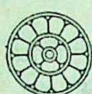
लेकिन आगामी कल उनके द्वारा प्रकाशमें लाये गये सत्यको प्रमाणित करेगा और उनका कार्य पूरा होगा।

*



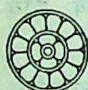
श्रीअरविंद हमसे यह कहनेके लिये आये थे कि सत्यको पानेके लिये जगत्को छोड़नेकी जरूरत नहीं, अन्तरात्माको पानेके लिये जीवनको त्यागनेकी जरूरत नहीं है, भगवान्के साथ संबंध स्थापित करनेके लिये संसारको छोड़ने या केवल सीमित रखनेकी जरूरत नहीं है। भगवान् हर जगह हैं, हर चीजमें हैं और अगर वे छिपे हुए हैं तो इसलिये कि हम उन्हें खोजनेका कष्ट नहीं करते।

*



श्रीअरविंदने मानव शरीरमें अतिमानसिक चेतनाको अवतरित किया, उन्होंने केवल हमें अनुसरण करने योग्य पथका स्वरूप और अनुसरणका तरीका ही नहीं दिखलाया जिससे हम लक्ष्यतक पहुंच सकें बल्कि उन्होंने स्वयं अपनी उपलब्धिद्वारा हमारे आगे उदाहरण रखा है। उन्होंने हमारे आगे यह प्रमाण भी रखा है कि यह चीज की जा सकती है और उसे क़रनेका समय आ गया है।

*



श्रीअरविंदने अपना जीवन दे दिया ताकि हम 'भागवत चेतना' में जन्म ले सकें।

*



हमें प्रतीतियोंसे चकरा नहीं जाना चाहिये। श्रीअरविंदने हमें छोड़ा नहीं है। श्रीअरविंद यहां हैं, हमेशाकी तरह सजीव और विद्यमान और यह हमारे जिम्मे है कि उनके कामको उसके लिए आवश्यक पूरी सच्चाई उत्सुकता और एकाग्रताके साथ चरितार्थ करें।

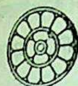
*



श्रीअरविंद अतीतके नहीं हैं और न इतिहासके ही हैं। श्रीअरविंद चरितार्थ होनेके लिये आगे बढ़ता हुआ दिव्य भविष्य हैं।

अतः हमें द्रुत प्रगतिके लिए आवश्यक चिर यौवनको आसरा देना चाहिये, ताकि हम रास्तेपर फिसड्डी न बन जायें।

*



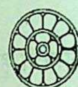
मनुष्य बीते कलकी सृष्टि है।
श्रीअरविंद आगामी कलकी सृष्टि — अतिमानसिक सत्ता के आने — की घोषणा करने आये थे।

*



श्रीअरविंदका संदेश भविष्यपर प्रसारित होता हुआ अमर सूर्यालोक है।

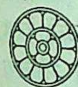
*



श्रीअरविंद परम पुरुषके एक निर्गत अंश हैं जो धरती-पर एक नयी जाति और एक नये जगत् — "अति-मानसिक" — की अभिव्यक्तिकी घोषणा करने आये थे।

आओ, हम पूरी सच्चाई और उत्सुकताके साथ उसके लिये तैयारी करें।

*

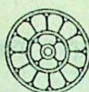


श्रीअरविंद जगत्को उस भविष्यके सौंदर्यके बारेमें बत-लाने आये थे जिसे चरितार्थ करना चाहिये।

वे उस भव्यताकी आशा ही नहीं, निश्चिति देने आये थे जिसकी ओर जगत् गति कर रहा है। जगत् एक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना नहीं है, यह एक अद्भुत चीज है जो अपनी अभिव्यक्तिकी ओर गति कर रही है।

जगत्के भविष्यको सौंदर्यकी निश्चितिकी जरूरत है। और श्रीअरविंदने यह आश्वासन दिया है।

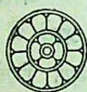
*



श्रीअरविंदके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये लिये हम उनकी शिक्षाके जीवित नमूनेसे बढ़कर और कुछ नहीं कर सकते।

*

आपने या श्रीअरविंदने बाह्य मानवीय चेतनाकी बाधाओंको जीतनेके एक साधनके रूपमें चमत्कारोंका अत्यधिक उपयोग क्यों नहीं किया है? आप लोगोंने बाहरी चेतनाके प्रति इस प्रकारकी उपेक्षा, इस प्रकार हस्तक्षेप न करने या इस प्रकार सावधानीके साथ विवेक करनेका भाव क्यों रखा है?



जहांतक श्रीअरविंदका प्रश्न है, मैं बस वही जानती हूं जो उन्होंने मुझसे कई बार कहा है। साधारणतया लोग भौतिक जगत् या प्राणिक जगत्‌में किये गये हस्तक्षेपको ही "चमत्कार" कहते हैं। इन हस्तक्षेपोंमें हमेशा अज्ञानकी क्रियाएं तथा स्वेच्छाचारिता मिली-जुली होती है।

परन्तु मनके राज्यमें श्रीअरविंदने जो चमत्कार किये हैं वे अगणित हैं; परन्तु स्वभावतः ही उन्हें वे ही देख सकते थे जिन्हें एक सीधी सच्ची और शुद्ध दर्शन-शक्ति प्राप्त थी — और बहुतोंने उन्हें देखा है। परन्तु इस मिश्रणके कारण ही वे कोई प्राणिक या भौतिक चमत्कार करनेसे इंकार करते थे — मैं जानती हूं — उन्होंने यह अस्वीकार किया था।

मेरा अनुभव यह है कि अभी जगत् जिस स्थितिमें है उसमें यदि कोई प्रत्यक्ष चमत्कार, कोई भौतिक या प्राणिक चमत्कार होगा तो वह अवश्यमेव मिथ्यात्वके बहुतसे तत्त्वोंको अपने हिसाबमें शामिल कर लेगा जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। ये निश्चित रूपसे मिथ्या चमत्कार होते हैं और उन्हें स्वीकार नहीं किया जा

सकता। मैंने उन घटनाओंको देखा है जिन्हें लोग चमत्कार कहते हैं; मैंने एक बार बहुत-सी घटनाओंको देखा जिन्होंने अनेक ऐसी चीजोंके बने रहनेका अधिकार दिया जो मेरे लिये अनुमोदनीय नहीं हैं।

आजकल लोग जिस चीजको चमत्कार कहते हैं वह प्रायः हमेशा प्राणिक जगत्की सत्ताओंके द्वारा संपन्न की जाती है अथवा उन मनुष्योंके द्वारा की जाती है जो प्राण-जगत्की सत्ताओंके साथ संपर्क बनाये रहते हैं और यह चीज एक मिश्रण होती है — यह कुछ ऐसी चीजोंको वास्तविक या सत्य स्वीकार करती है जो सत्य नहीं हैं। और यह इसी आधारपर कार्य करती है। अतएव यह स्वीकार्य नहीं है।

श्रीअरविन्दकी शिक्षा और साधनाशैली

श्रीअरविंदकी शिक्षा भारतके प्राचीन ऋषियोंकी इस शिक्षासे आरम्भ होती है कि विश्वब्रह्माण्डके दिखाई देनेवाले रूपके पीछे एक सत्ता और चेतनाका सत्य-स्वरूप है, सब वस्तुओंकी एक अद्वितीय और शाश्वत आत्मा है। सभी सत्ताएं उस एक आत्माके अंदर युक्त हैं, परन्तु चेतनाकी एक प्रकारकी पृथक्ताके कारण, मन, प्राण और शरीरमें अपनी सत्य आत्मा और सत्य-स्वरूपके विषयका ज्ञान न होनेके कारण विभक्त हैं। परन्तु एक मनोवैज्ञानिक साधनाके द्वारा भेदात्मक चेतनाके इस पर्देको दूर किया जा सकता है और अपने सच्चे आत्म-स्वरूपको, अपने अंदर तथा सबके अंदर विद्यमान भगवान्को जाना जा सकता है।

श्रीअरविंदकी शिक्षा यह कहती है कि 'एक' सत्ता और चेतना यहां जड़तत्त्वमें अन्तर्निहित है और विकासकी प्रक्रियाके द्वारा वह

अपने-आपको मुक्त करती है। जो कुछ निश्चेतन प्रतीत होता है उसीमें चेतना दिखाई देती है और जब एक बार चेतना प्रकट हो जाती है तो उसके बाद वह अपने-आप ही क्रमशः ऊंची होती और साथ ही बड़ीसे बड़ी पूर्णताकी ओर बढ़ती और विकसित होती है। चेतनाकी इस उन्मुक्तिकी प्रथम अवस्था है प्राण; दूसरी अवस्था है मन; परन्तु मनतक आकर ही चेतनाका क्रमविकास समाप्त नहीं हो जाता, वह किसी और बड़ी चीजके अंदर, एक आध्यात्मिक और अतिमानसिक चेतनाके अंदर जा मिलनेके लिये प्रतीक्षा कर रहा है। अतएव क्रमविकासका अगला कदम होगा सचेतन सत्तामें अतिमानस और आत्माके सर्वोपरि शक्ति बननेकी ओर प्रगति करना, और केवल उसी अवस्थामें सभी वस्तुओंमें अन्तर्लीन भगवान् अपनेको पूरी तरह मुक्त करेंगे और जीवन पूर्णताको व्यक्त करनेमें समर्थ होगा।

परन्तु जहां प्रकृतिने विकासके पहले कदम पौधे और पशुओंमें कोई सचेतन इच्छा हुए बिना ही आगे बढ़ाये थे, वहां मनुष्यमें आकर वह अपने यंत्रकी सचेतन इच्छाशक्तिकी सहायतासे विकसित होनेके योग्य हो जाती है। परन्तु मनुष्यकी केवल मानसिक इच्छाशक्तिकी सहायतासे ही पूर्ण रूपसे यह कार्य संपन्न नहीं हो सकता, क्योंकि मन कुछ दूर तक ही जाता है, और उसके बाद केवल गोल-गोल चक्कर काट सकता है। एक बड़े परिवर्तनका होना, चेतनाका पलट जाना अत्यन्त आवश्यक होता है जिससे कि मन एक उच्चतर तत्त्वमें बदल जाय। इसकी पद्धति हमें योगके प्राचीन मनोवैज्ञानिक अनुशासन और साधनामें मिलती है। प्राचीन कालमें इस संसारसे अलग होकर तथा आत्मा या आत्मतत्त्वकी उच्चतामें विलीन होकर इसे साधित करनेकी चेष्टा की जाती थी। परन्तु श्रीअरविंदकी शिक्षा यह है कि एक उच्चतर तत्त्वका अवतरण संभव है और वह अवतरण हमारे आध्यात्मिक आत्मस्वरूपको केवल जगत्से बाहर ले जाकर ही मुक्त नहीं करेगा बल्कि इस जगत्के अंदर

भी मुक्त करेगा, मनके अज्ञान या इसके अत्यन्त सीमित ज्ञानके स्थानपर अतिमानसिक सत्य-चेतनाको स्थापित करेगा जो आंतरिक आत्माका ठीक यंत्र होगी और इसीकी सहायतासे मनुष्य अन्तर्मुख और क्रियाशील दोनों भावोंमें अपने-आपको प्राप्त करेगा और अपनी पशुतासे भरी मनुष्यतासे निकलकर एक दिव्यजातिमें परिणत होगा। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये योग और साधनाका उपयोग किया जा सकता है — अपनी सत्ताके सभी अंगोंको खोलकर और उच्चतर तथा अबतक छिपे हुए अतिमानस-तत्त्वके अवतरण तथा उसकी क्रियाकी सहायतासे परिवर्तन या रूपांतर लाकर इस उद्देश्यको सिद्ध किया जा सकता है।

पर यह कार्य एकदम या थोड़ेसे समयमें अथवा किसी तेज या चमत्कारपूर्ण रूपांतरके द्वारा नहीं पूरा किया जा सकता। साधकको बहुतसे स्तर पार करने होते हैं और तब कहीं अतिमानसका अवतरण संभव होता है। साधारण तौरपर मनुष्य अधिकांशमें अपने ऊपरी मन, प्राण और शरीरमें ही रहता है, पर उसके अंदर एक आंतर सत्ता भी है जिसमें बहुत-सी महत्तर संभावनाएं हैं और अपनी इस आंतर सत्ताके विषयमें उसे सचेतन होना है। अभी उस सत्ताका एक अत्यन्त सीमित प्रभावमात्र ही मनुष्य ग्रहण करता है और वही उसे सदा एक महत्तर सौंदर्य, सामंजस्य, शक्ति और ज्ञानकी खोजमें लगाये रहता है। अतएव योगकी सबसे पहली प्रक्रिया है इस आंतर सत्ताके सभी क्षेत्रोंको खोल देना और वहां रहते हुए बाहरी जीवन बिताना, एक आंतरिक ज्योति और शक्तिकी सहायतासे अपने बाहरी जीवनको नियंत्रित करना। जब मनुष्य ऐसा करता है तब वह उसके फलस्वरूप अपने अंदर अपनी सच्ची अंतरात्माका पता पा लेता है जो केवल मन, प्राण और शरीररूपी तत्त्वोंका बाहरी संमिश्रण ही नहीं है, बल्कि इन सबके पीछे विद्यमान परम सद्वस्तुका एक अंश है, अद्वितीय भागवत अग्निकी एक चिनगारी है। मनुष्यको अपनी इस अंतरात्मामें निवास

करना सीखना होगा और अंतरात्माका जो सत्यकी ओर एक प्रवेग है उसके द्वारा अपनी बाकी प्रकृतिको शुद्ध करना तथा उसे भी लक्ष्यकी ओर मोड़ना होगा। उसके बाद फिर हमारा आधार ऊपरकी ओर खुल सकता है और उसके अंदर दिव्य सत्ताका एक उच्चतर तत्त्व अवतरित हो सकता है। परंतु इतना होनेपर भी एकाएक पूर्ण अतिमानसिक ज्योति और शक्तिका अवतरण नहीं होता; क्योंकि साधारण मानव मन और अतिमानसिक सत्य-चेतनाके बीच चेतनाकी बहुत-सी भूमिकाएं हैं। इन मध्यवर्ती भूमिकाओंको भी खोलना होगा और उनकी शक्तिको मन, प्राण और शरीरमें उतारना होगा और ऐसा कर लेनेके बाद ही अतिमानसिक सत्य-चेतनाकी पूर्ण शक्ति मनुष्यकी प्रकृतिके अंदर कार्य कर सकती है। अतएव इस आत्मानुशासन या साधनाकी प्रक्रिया लम्बी और कठिन है, परंतु इसका थोड़ा-सा भी अंश यदि जीवनमें उतारा जाय तो वह भी लाभ ही है, क्योंकि उससे अन्तिम मुक्ति और सिद्धि प्राप्त करना अधिक संभव हो जाता है।

प्राचीन योगपद्धतियोंमें ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनकी इस पथमें भी आवश्यकता होती है — जैसे, एक महत्तर विशालताकी ओर तथा आत्मा और अनन्तकी अनुभूतिकी ओर अपने मनको खोलना, जिसे विश्वचेतना कहा जाता है उसमें प्रवेश, वासनाओं और षड्-रिपुओंपर प्रभुत्व स्थापित करना। बाह्य तपस्या आवश्यक नहीं है, परन्तु कामना-वासना और आसक्तिपर विजय प्राप्त करना तथा शरीर और उसकी आवश्यकताओंको, उसकी लालसाओं और अंध-प्रेरणाओंको संयमित करना आवश्यक है। इस मार्गमें प्राचीन योगपद्धतियोंकी सभी मूल बातोंका समावेश किया गया है — जैसे, ज्ञानमार्गका मनके द्वारा सद्वस्तु और बाह्य रूपके बीच विवेक करना, हृदयमार्गका भक्ति, प्रेम और आत्मसमर्पण करना, कर्म-मार्गका अपनी इच्छाशक्तिको स्वार्थपूर्ण उद्देश्योंसे हटाकर सत्यकी ओर लगाना, अपने अहंसे बड़ी दिव्य सद्वस्तुकी सेवामें लगाना

इत्यादि। इस मार्गमें सारी सत्ताको इस प्रकार तैयार करना है कि जब महत्तर ज्योति और शक्तिके लिये हमारी प्रकृतिके अंदर क्रिया करना संभव हो तब हमारी सारी सत्ता उनकी क्रियाको प्रत्युत्तर दे सके तथा रूपांतरित हो सके।

इस साधनामें गुरुकी प्रेरणा तथा कठिन अवस्थाओंमें उनका नियंत्रण और उनकी उपस्थिति आवश्यक है। इनके अभावमें इस पथपर वहुत ठोकरें खाये विना और भूलें किये बिना नहीं चला जा सकता; यहांतक कि इनके कारण सफलताकी सारी संभावना ही नष्ट हो सकती है। गुरु वे हैं जो उच्चतर चेतना और सत्ताको प्राप्त हो चुके हैं। उन्हें वहुधा उस चेतना और सत्ताका व्यक्त रूप या प्रतिनिधि माना जाता है। वह केवल अपनी शिक्षाद्वारा और उससे भी अधिक अपने प्रभाव तथा उदाहरणके द्वारा ही नहीं, बल्कि अपनी अनुभूतिको दूसरोंतक पहुंचा सकनेके द्वारा भी सहायता करते हैं।

यही श्रीअरविंदकी शिक्षा तथा उनकी साधनापद्धति है। किसी एक धर्मविशेषको उन्नत करना, अथवा प्राचीन धर्मोंको एक साथ मिला देना या कोई नया धर्म प्रचलित करना उनका उद्देश्य नहीं है, क्योंकि इनमेंसे प्रत्येक चीज उनके मुख्य उद्देश्यसे दूर हटा ले जायेगी। उनके योगका एकमात्र उद्देश्य है आंतरिक आत्मविकास जिसके द्वारा इस योगका प्रत्येक साधक यथासमय सर्व भूतोंमें स्थित अद्वितीय आत्माको प्राप्त कर सके तथा अपने अंदर मानसिक चेतनासे उच्चतर एक ऐसी चेतनाको, एक ऐसी आध्यात्मिक और अतिमानसिक चेतनाको विकसित कर सके जो मानव-प्रकृतिको रूपांतरित करके दिव्य बना दे।

श्रीअरविन्दद्वारा दिया गया सन्देश

पन्द्रह अगस्त १९४७

१५ अगस्त १९४७ स्वाधीन भारतका जन्मदिन है। यह दिन भारतके लिये पुराने युगकी समाप्ति और नये युगका प्रारंभ सूचित करता है। परंतु हम एक स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें अपने जीवन और कार्यके द्वारा इसे ऐसा महत्त्वपूर्ण दिन भी बना सकते हैं जो संपूर्ण जगत्के लिये, सारी मानवजातिके राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भविष्यके लिये नवयुग लानेवाला सिद्ध हो।

१५ अगस्त मेरा अपना जन्मदिन है और स्वभावतः ही यह मेरे लिये प्रसन्नताकी बात है कि इस दिनने इतना विशाल अर्थ तथा महत्त्व प्राप्त कर लिया है। परंतु इसके भारतीय स्वाधीनता-दिवस भी हो जानेको मैं कोई आकस्मिक संयोग नहीं मानता, बल्कि यह मानता हूं कि जिस कर्मको लेकर मैंने अपना जीवन आरंभ किया था उसको मेरा पथ-प्रदर्शन करनेवाली भागवती शक्तिने इस तरह मंजूर कर लिया है और उसपर मुहर भी लगा दी है और वह कार्य पूर्ण रूपसे सफल होना आरंभ हो गया है। निस्संदेह, आजके दिन मैं प्रायः उन सभी जागतिक आन्दोलनोंको,—जिन्हें मैंने अपने जीवनकालमें ही सफल देखनेकी आशा की थी, यद्यपि उस समय वे असंभव स्वप्न जैसे ही दिखाई देते थे—सफल होते हुए या अपनी सफलताके मार्गपर जाते हुए देख सकता हूं। इन सभी आन्दोलनों-में स्वाधीन भारत एक बहुत अच्छी भूमिका अच्छी तरह अदा कर सकता है और एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकता है।

इन स्वप्नोंमें पहला था एक क्रंतिकारी आन्दोलन जो स्वाधीन

और एकीभूत भारतको जन्म दे। भारत आज स्वाधीन हो गया है पर उसने एकता नहीं प्राप्त की। एक समय प्रायः ऐसा दीखता था मानों अपने स्वाधीन होनेकी प्रक्रियामें ही वह फिरसे उस पृथक्-पृथक् राज्योंकी अव्यवस्थापूर्ण स्थितिमें जा गिरेगा जो विजयसे पहले विद्यमान थी। परंतु सौभाग्यसे अब ऐसी प्रबल संभावना हो गई है कि यह संकट टल जायगा और अभी पूर्ण न सही पर एक विशाल तथा शक्तिशाली एकत्व अवश्य स्थापित हो जायेगा। विधानपरिषद्की दूरदर्शितापूर्ण प्रबल नीतिने इस बातको संभव बना दिया है कि दलित वर्गोंकी समस्या बिना फूट-फटावके हल हो जायगी। परंतु हिन्दुओं तथा मुसलमानोंका पुराना साम्प्रदायिक भेद देशके स्थायी राजनीतिक विभाजनके रूपमें सुदृढ़ हो गया दीखता है। यह आशा करनी चाहिये कि इस तय किये गये विभाजनको पत्थरकी लकीर नहीं मान लिया जायगा और इसे एक कामचलाऊ अस्थायी उपायसे बढ़कर और कुछ न माना जायगा। क्योंकि यदि यह कायम रहे तो भारत भयानक रूपमें दुर्बल और अपंग तक हो सकता है; गृह-कलहका होना सदा ही संभव बना रह सकता है, नये आक्रमण और विदेशी राज्यका हो जाना तक संभव हो सकता है। भारतकी आंतरिक उन्नति और समृद्धि रुक सकती है, राष्ट्रोंके बीच उसकी स्थिति दुर्बल हो सकती है, उसका भविष्य कुंठित, यहांतक कि व्यर्थ भी हो सकता है। यह नहीं होना चाहिये, देशका विभाजन अवश्य दूर होना चाहिये। हम आशा करें कि यह कार्य स्वाभाविक रूपसे ही हो जायगा, न केवल शांति और मेलमिलापकी, बल्कि मिल-जुलकर काम करनेकी भी आवश्यकताको उत्तरोत्तर समझ लेने तथा मिल-जुलकर काम करनेके अभ्यास और उसके लिये साधनोंको उत्पन्न कर लेनेसे संपन्न हो जायगा। इस प्रकार अन्तमें एकता चाहे किसी भी रूपमें आ सकती है — उसके ठीक-ठीक रूपका व्यावहारिक महत्त्व भले ही हो, पर कोई प्रधान महत्त्व नहीं। परंतु चाहे किसी भी उपायसे हो, चाहे किसी भी प्रकारसे हो, विभाजन अवश्य हटना

चाहिये एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिये और स्थापित होगी ही, क्योंकि भारतकी भविष्यकी महानताके लिये यह आवश्यक है।

दूसरा स्वप्न था एशियाकी जातियोंका पुनरुत्थान तथा स्वातन्त्र्य और मानव-सभ्यताकी उन्नतिके कार्यमें एशियाका जो महान् स्थान पहले था उसी स्थानपर उसका लौट जाना। एशिया जग गया है; उसके बड़े-बड़े भाग स्वतन्त्र हो गये हैं या इस समय बन्धनमुक्त हो रहे हैं; इसके अन्य भाग जो अभी परतन्त्र या अशंतः परतन्त्र हैं वे भी, चाहे कैसे भी घोर संघर्षोंमेंसे गुजरते हुए, स्वतन्त्रताकी ओर बढ़ रहे हैं। केवल थोड़ा ही करना बाकी है और वह आज न सही कल पूरा हो जायगा। उसमें भारतको अपनी भूमिका अदा करनी है और उसने एक ऐसी सामर्थ्य और योग्यताके साथ करना शुरू कर दिया है जो अभीसे उसकी संभावनाओंकी मात्राको तथा उस स्थानको सूचित करती है जिसे वह राष्ट्रोंकी सभामें ग्रहण कर सकता है।

तीसरा स्वप्न था एक विश्व-संघ जो समस्त मानवजातिके लिये एक सुन्दरतर, उज्ज्वलतर और महतर जीवनका बाहरी आधार निर्मित करे। मानव संसारका वह एकीकरण प्रगतिके पथपर है। एक अधूरा प्रारंभ संगठित किया गया है पर वह बड़ी भारी कठिनाइयोंके विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। किन्तु उसमें एक वेग है और वह अनिवार्य रूपसे बढ़ता चला जायगा और विजयी होगा। इस कार्यमें भी भारतवर्षने प्रमुख भाग लेना प्रारंभ कर दिया है और यदि वह उस अधिक विशाल राजनीतिज्ञताको विकसित कर सके जो वर्तमान घटनाओं और तात्कालिक संभावनाओंसे ही सीमित नहीं होती, बल्कि भविष्यको देख लेती और उसे निकट लाती है, तो भारतकी उपस्थिति मन्द एवं भीरुतापूर्ण विकास और द्रुत एवं साहसपूर्ण विकासमें जो महान् भेद है, उसे प्रदर्शित कर सकती है। जो कार्य किया जा रहा है उसमें महान् विपत्ति आ सकती है और वह उसमें बाधा डाल सकती है या उसे नष्ट कर सकती है, किंतु

तो भी अंतिम परिणाम निश्चित है। क्योंकि एकीकरण प्रकृतिकी आवश्यकता है, अनिवार्य गति है। इसकी आवश्यकता राष्ट्रोंके लिये भी स्पष्ट है; क्योंकि इसके बिना छोटे-छोटे राष्ट्रोंकी स्वाधीनता किसी भी क्षण खतरेमें पड़ सकती है और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्रोंकी भी जीवन असुरक्षित हो सकता है। इसलिये इस एकीकरणमें ही सबका हित है और केवल मानवीय निःशक्तता तथा मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता ही इसे रोक सकती है; परंतु ये भी प्रकृतिकी आवश्यकता और भगवान्‌की इच्छाके विरुद्ध हमेशा नहीं ठहर सकती। परंतु एक बाहरी आधार ही पर्याप्त नहीं है, अन्तर्राष्ट्रीय भाव और दृष्टिकोण भी अवश्य विकसित होने चाहियें, अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति तथा संस्थाएं भी अवश्य प्रादुर्भूत होनी चाहिये। शायद इस प्रकारकी प्रगतियां भी पैदा हों जैसे कि दो या अनेक देशोंका एकसंग नागरिक होना, संस्कृतियोंका आपसमें ऐच्छिक दान-प्रतिदान या उनका स्वेच्छापूर्वक घुलना-मिलना। राष्ट्रीयता तब अपने-आपको चरितार्थ कर चुकी होगी और अपनी युद्धप्रियताको छोड़ चुकी होगी, और तब वह ऐसी चीजोंको आत्म-संरक्षण तथा अपनी दृष्टिकी अखण्डतासे असंगत नहीं अनुभव करेगी। एकत्वकी एक नई भावना मनुष्यजातिपर, आधिपत्य जमा लेगी।

चौथा स्वप्न, संसारको भारतका आध्यात्मिक दान, पहिलेसे ही प्रारंभ हो चुका है। भारतकी आध्यात्मिकता यूरोप और अमेरिका-में नित्य बढ़ती हुई मात्रामें प्रवेश कर रही है। यह आन्दोलन बढ़ेगा; वर्तमान कालकी विपदाओंके बीच अधिकाधिक लोगोंकी आंखें आशाके साथ भारतकी ओर मुड़ रही हैं और न केवल उसकी शिक्षाओंका अपितु उसकी आंतरात्मिक और आध्यात्मिक साधनाका भी उत्तरोत्तर आश्रय लिया जा रहा है।

अंतिम स्वप्न था क्रमविकासमें अगला कदम जो मनुष्यको एक उच्च-तर और विशालतर चेतनामें उठा ले जायगा और उन समस्याओंका हल करना प्रारंभ कर देगा जिन समस्याओंने मनुष्यको तभीसे हैरान

और परेशान कर रखा है जबसे कि उसने वैयक्तिक पूर्णता और पूर्ण समाजके विषयमें सोचना विचारना शुरू किया था। यह अभी तक एक व्यक्तिगत आशा और विचार और आदर्शमात्र है जिसने भारत और पश्चिममें दोनों जगह दूरदर्शी विचारकोंको वशमें करना शुरू कर दिया है। इस मार्गकी कठिनाइयां प्रयासके किसी भी अन्य क्षेत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक जबर्दस्त हैं परंतु कठिनाइयां जीती जानेके लिये ही बनी थीं और यदि दिव्य परम इच्छाशक्तिका अस्तित्व है तो वे दूर होंगी ही। यहां भी, यदि इस विकासको घटित होना है तो, चूंकि यह आत्मा और आंतर चेतनाकी अभिवृद्धिद्वारा ही होगा, इसका प्रारंभ भारतवर्ष ही कर सकता है और यद्यपि इसका क्षेत्र सार्वभौम होगा, तथापि केन्द्रीय आन्दोलन भारत ही करेगा।

ये हैं वे भाव और भावनाएं जिनको मैं भारतीय स्वाधानताकी इस तिथिके साथ सम्बद्ध करता हूं। क्या ये आशाएं ठीक सिद्ध होंगी, यह कहांतक सिद्ध होंगी, यह बात नये और स्वाधीन भारतपर निर्भर करती है।

माताजीके वचन

जब तुम अपने हृदय और विचारमें मेरे और श्रीअरविंदके बीच कोई भेद न करोगे, जब अनिवार्य रूपसे श्रीअरविंदके बारेमें सोचना मेरे बारेमें सोचना हो और मेरे बारेमें सोचनेका अर्थ हो श्रीअरविंदके बारेमें सोचना, जब एकको देखनेका अनिवार्य अर्थ हो दूसरेको **एक और अभिन्न** व्यक्तिके रूपमें देखना, तब तुम यह जान लोगे कि तुम अतिमानसिक शक्ति और चेतनाके प्रति खुलना शुरू कर रहे हो।

उनके बिना, मेरा अस्तित्व नहीं है;
मेरे बिना, वे अनभिव्यक्त हैं।

श्रीअरविन्द अपने और माताजीके विषयमें



माताजीकी और मेरी चेतना एक ही है, एक ही भागवत चेतना दोनोंमें है, क्योंकि लीलाके लिये यह आवश्यक है। माताजीके ज्ञान और बलके बिना, उनकी चेतनाके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति सचमुच उनकी चेतनाको अनुभव करता है तो उसे जानना चाहिये कि उसके पीछे मैं उपस्थित हूं और यदि वह मुझे अनुभव करता है तो वैसे ही माताजी भी मेरे पीछे उपस्थित होती हैं। यदि इस प्रकार भेद किया जाय (उन लोगोंके मन इन चीजोंको इतने प्रबल रूपमें जो आकार दे देते हैं उन्हें तो मैं एक ओर ही छोड़े देता हूं), तो भला सत्य अपनेको कैसे स्थापित कर सकता है — सत्यकी दृष्टिसे ऐसा कोई भेद नहीं है।

*



माताजीकी चेतना दिव्य चेतना है और उससे जो ज्योति आती है वह दिव्य सत्यकी ज्योति है। जो मनुष्य माताजीकी ज्योतिको ग्रहण करता, स्वीकार करता और उसमें निवास करता है, वह मनोमय, प्राणमय, और अन्नमय आदि सभी स्तरोंपर सत्यको देखना आरम्भ कर देता है। जो कुछ अदिव्य है उस सबका वह त्याग करता है —और अदिव्य है मिथ्यापन, अज्ञान, अन्धकारकी शक्तियोंकी भूल-भ्रांति, वह सब कुछ अदिव्य है जो अन्धकारपूर्ण है और दिव्य सत्य और उसकी ज्योति और शक्तिको स्वीकार करनेके लिये इच्छुक नहीं है। अतएव अदिव्य वह सब कुछ है जो श्रीमांकी ज्योति और शक्तिको स्वीकार करना नहीं चाहता। यही कारण

हैं कि मैं बराबर ही तुमसे कहता रहता हूं कि तुम श्रीमांके साथ और उनकी ज्योति और शक्तिके साथ संस्पर्श बनाये रखो। क्योंकि केवल ऐसा करनेपर ही तुम इस गोलमाल और अन्धकारसे बाहर निकल सकते हो और ऊपरसे आनेवाले सत्यको ग्रहण कर सकते हो।

जब हम एक विशेष अर्थमें मांकी ज्योति या मेरी ज्योतिकी बात कहते हैं तब हम एक विशिष्ट गुह्य क्रियाकी बात कहते हैं — हम किन्हीं ऐसी ज्योतियोंकी बात कहते हैं जो अतिमानससे आती हैं। इस क्रियामें श्रीमांकी ज्योति श्वेत होती है जो पवित्र बनाती, आलोकित करती, सत्यके समस्त सारतत्त्व और शक्तिको नीचे लाती और रूपान्तरको संभव बनाती है। परन्तु सच पूछा जाय तो जो ज्योतियां ऊपरसे, उच्चतम दिव्य सत्यसे आती हैं वे सबकी सब श्रीमांकी ही हैं।

श्रीमां और मेरे पथमें कोई अन्तर नहीं है; हमारा पथ एक ही है और सदा एक ही रहा है — यह वह पथ है जो अतिमानसिक परिवर्तन और दिव्य सिद्धितक ले जाता है; हमारा पथ केवल अन्तमें ही एक नहीं है, बल्कि वह आरम्भसे ही एक रहा है।

श्रीमांको एक ओर और मुझे दूसरी ओर एक-दूसरेके विरुद्ध या एकदम भिन्न पक्षमें रखकर एक विभेद और विरोध खड़ा करनेकी चेष्टा करना सदा ही मिथ्यापनकी शक्तियोंकी एक चालबाजी रही है और वे इसे उस समय प्रयुक्त करती हैं जब वे साधकको सत्यपर पहुंचनेसे रोकना चाहती हैं। ऐसे सभी मिथ्यापनोंको अपने मनसे बाहर निकाल दो।

जान लो कि श्रीमांकी ज्योति और शक्ति सत्यकी ज्योति और शक्ति है। बराबर श्रीमांकी ज्योति और शक्तिके साथ संपर्क बनाये रखो, केवल तभी तुम दिव्य सत्यमें बढ़ सकते हो।

श्रीमांकी घोषणा

मैं इस दिनके साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषाकी अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूं -- वह है भारतीय नागरिक बननेकी अभिलाषा। सन् १९१४ से ही, जब मैं पहली बार भारतमें आयी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा और अंतःकरणका देश है। मैंने निश्चय किया कि ज्यों ही भारत स्वतंत्र होगा मैं अपनी यह अभिलाषा पूरी करूंगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहां पांडिचेरीके आश्रमके प्रति अपने भारी उत्तरदायित्वके कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जब कि मैं अपने विषयमें यह घोषणा कर सकती हूं।

लेकिन, श्रीअरविंदके आदर्शके अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्वमें है न कि विभाजनमें। एक राष्ट्रीयता प्राप्त करनेके लिये दूसरीको छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है, इसलिये मैं आशा करती हूं कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनानेकी छूट रहेगी अर्थात् भारतीय हो जानेपर भी मैं फ्रेंच बनी रहूंगी।

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षासे मैं फ्रेंच हूं। अपनी इच्छा और रुचिसे मैं भारतीय हूं। मेरी चेतनामें इन दोनों बातोंमें कोई विरोध नहीं है, इसके विपरीत वे एक-दूसरेसे भली प्रकार मेल खाती हैं और एक दूसरीकी पूरक हैं। मैं यह भी जानती हूं कि मैं दोनों देशोंकी समान रूपसे सेवा कर सकती हूं, क्योंकि मेरे जीवनका एकमात्र ध्येय है श्रीअरविंदकी महान् शिक्षाओंको मूर्त रूप देना और उन्होंने अपनी शिक्षाओंमें यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुतः एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधताके द्वारा इस भूमिपर भागवत एकत्वको अभिव्यक्त करनेके लिये ही उनका अस्तित्व है।

श्रीअरविन्द-वाणी

जहांतक माताजीका और स्वयं मेरा संबंध है, हमें सभी मार्गोंका परीक्षण करना, सभी विधियोंका अनुसरण करना पड़ा है; और कठिनाइयोंके पहाड़ोंको पार करना पड़ा है; तुम्हारी अपेक्षा या आश्रमके या बाहरके और किसी भी व्यक्तिकी अपेक्षा कहीं अधिक भारी बोझ उठाना, कहीं अधिक विकट परिस्थितियों और युद्धोंका सामना करना, आघातोंको सहना, दुर्भेद्य दलदल, मरुस्थल और जंगलको चीरकर रास्ता बनाना और शत्रुओंके दलोंको जीतना पड़ा है — ऐसा काम करना पड़ा है जो, निःसंदेह, हमसे पूर्व और किसीको भी नहीं करना पड़ा। कारण, हमारे जैसे कार्यमें मार्गके नायकका काम केवल इतना ही नहीं है कि वह भगवान्को नीचे उतारे या उनका प्रतिनिधित्व करे और उन्हें मूर्त्तिमान् करे, वरन् यह भी है कि वह मानवताके ऊपर उठनेवाले तत्त्वका प्रतिनिधित्व करे, मानवजातिका भार पूरा-पूरा वहन करे और इस मार्गकी समस्त बाधा, कठिनाई और विरोधको, और पराजित, कुंठित तथा केवल धीरे-धीरे विजयी होनेवाले संघर्षको केवल लीलाके भावमें ही नहीं, बल्कि कठोर यथार्थताके साथ अनुभव करे। परन्तु यह आवश्यक नहीं और न यह वांछनीय ही है कि यह सब कुछ दूसरोंके अनुभवमें भी नये सिरेसे पूरा-का-पूरा दुहराया जाय। चूंकि हमें पूर्ण अनुभव है इसलिये हम दूसरोंको अधिक सीधा और अधिक सरल मार्ग दिखा सकते हैं — यदि वे केवल इसका अवलम्बन करना स्वीकार करें। बड़े भारी मूल्यपर प्राप्त अपने अनुभवके कारण ही हम तुमसे तथा दूसरोंसे बलपूर्वक कह सकते हैं, "आन्तरात्मिक वृत्ति धारण करो, सरल प्रकाशमय पथका अनुसरण करो जिसमें भगवान् तुम्हें प्रकट और गुप्त रूपसे धारण किये रहते हैं।

अभी चाहे वे गुप्त रूपमें ही आश्रय दें पर वे यथासमय अपनेको प्रकाशित भी करेंगे, --- कठिन, कंटकाकीर्ण, वक्र, विषम पथपर मत अड़े रहो।"

*

शुरू-शुरूमें यहां कोई आश्रम नहीं था, केवल कुछ लोग श्रीअरविंदके पास रहने तथा योग-साधना करनेके लिये आये थे।

माताजीके जापानसे आनेके कुछ समय बाद ही इसने आश्रमका रूप धारण किया और इसका कारण माताजी या श्रीअरविंदकी कोई इच्छा या योजना नहीं थी, वल्कि उन साधकोंकी इच्छा थी जो अपना समस्त आन्तरिक और वाह्य जीवन माताजीको सौंपना चाहते थे।

*

हलकी नीली ज्योति मेरी है और सफेद ज्योति श्रीमाताजीकी है (यह कभी-कभी सुनहली भी होती है) साधारणतया लोग श्रीमांके चारों ओर सफेद या सफेद हलकी नीली ज्योति देखते हैं।

माताजी और साधक

अगर साधना व्यक्तिगत नहीं, सामुदायिक है तो हमें क्या करना चाहिये?

तुम्हें अपना विस्तार करना चाहिये।

काम अधिक जटिल और अधिक पेचीदा है जिसके लिये ज्यादा वल, ज्यादा विस्तार, ज्यादा धैर्य, ज्यादा उदारता और ज्यादा सहिष्णुताकी जरूरत है।

हां, अगर हर एक जो उसे करना है उसे पूर्णताके साथ करे तो सब मिलकर एक व्यष्टि बन जाते हैं जो समष्टिके लिये साधना कर रहा है। अगर पचास आदमी पूर्ण योग कर रहे हों और केवल एक कार्य करता हो तो वह सबके लिये कार्य करता है। लेकिन उन पचासमेंसे हर-एक पचासोंके लिये करता हो तो वस्तुतः वह केवल एकके लिये करता है क्योंकि हर एक हर एकके लिये काम करता है। यह उन सबमें एक ऐसा ऐक्य बना देगा जो इतना मजबूत होगा कि एक-दूसरेसे भेद करना असंभव होगा और यह आदर्श तरीका है कि सब मिलकर केवल एक ही शरीर बनें, एक व्यक्तित्व बनाएं जो अपने लिये और बिना भेदभाव, सबके लिये कार्य करे।

सचमुच, जब मैं पहले पहल श्रीअरविंदसे मिली तो यह पहला प्रश्न उठा क्या हम जगत्‌से हटकर यानी औरोंके साथ किसी तरह-का संपर्क न रखकर तीव्र व्यक्तिगत साधना करें या जो समान अभीप्साके साथ आयें, उन्हें आने दें, समुदयको अपने-आप स्वाभाविक सहज रूपसे बनने दें और सब मिलकर लक्ष्यकी ओर चलें? दो संभा-वनाएं थीं।

निश्चय कोई मानसिक चुनाव न था, बिलकुल नहीं। बिलकुल सहज स्वाभाविक रूपसे दल बन गया और अपने-आपको अनिवार्य आवश्यकताके रूपमें दृढ़ बना लिया। चुनाव करनेकी बात ही न थी।

और एक बार तुम यह राह पकड़ लो, तो बस, तुम्हें सीधे लक्ष्य-तक जाना ही होगा।

*

अगर तुम बिलकुल अकेले ही काम करना चाहो तो इसे पूरी तरहसे करना एकदम असंभव है क्योंकि सारी भौतिक सत्ता, वह चाहे जितनी पूर्ण क्यों न हो, चाहे वह एकदम उच्चतर गुणोंवाली हो,

चाहे उसकी रचना बहुत विशेष कामके लिये की गयी हो, फिर भी एकांगी और सीमित होगी। वह केवल एक सत्यका, जगत्में एक विधानका प्रतिनिधित्व करती है, वह बहुत जटिल विधान हो सकता है फिर भी वह केवल एक विधान है जिसे भारतमें धर्म कहते हैं और रूपांतरकी पूर्णता केवल उसके द्वारा, एकमात्र शरीरके द्वारा नहीं साधी जा सकती।

इसीलिये सहज रूपसे बहुविधताकी रचना हो गयी।

तुम अपनी निजी पूर्णता अपने आप पा सकते हो। तुम अपनी चेतनामें अनन्त और पूर्ण बन सकते हो। आंतरिक सिद्धिकी कोई सीमा नहीं लेकिन इसके विपरीत बाहरी सिद्धि आवश्यक रूपसे सीमित है अतः यदि तुम व्यापक क्रिया चाहते हो तो लोगों-की कम-से-कम कुछ संख्या तो जरूरी है ही।

एक बहुत पुरानी परंपराके अनुसार यह संख्या बारह है लेकिन आधुनिक जीवनकी जटिलताके कारण यह काफी नहीं मालूम होती। एक प्रतिनिधि दलकी जरूरत है।

इसलिये इस बारेमें कुछ भी न जानते हुए भी तुममेंसे हर एक उन कठिनाइयोंमेंसे एकका प्रतिनिधि है जिन्हें रूपांतरके लिये पार करना है। इससे बहुत सारी कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं। यह एकसे अधिक कठिनाई है। मेरा ख्याल है कि मैंने कुछ समय पहले तुमसे कहा था कि तुमसे हर एक किसी असंभाव्यताका प्रतिनिधि है जिसे दूर करना है और जब सभी असंभावनाएं दूर हो जायेंगी तब कार्य पूरा होगा।

और अब मैं ज्यादा मेहरबान हूं। अब मैं असंभावना नहीं कठिनाई कहती हूं क्योंकि शायद अब ये असंभावनाएं नहीं रहीं।

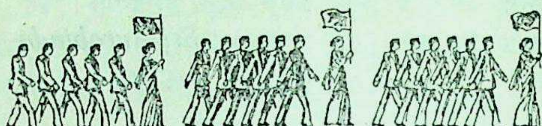
जिसे भगवान्‌के साथ ऐक्य प्राप्त है उसके लिये हर जगह भगवान्‌का पूर्ण सुख और आनंद है। वह हर जगह और हर परिस्थितिमें हमारे साथ रहता है।

—श्रीमां



Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

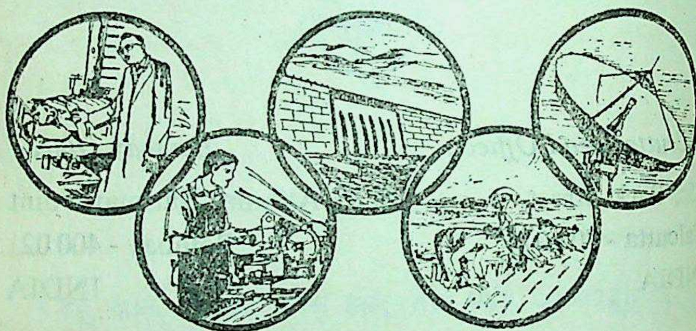
Sri Aurobindo



सदा आगे ही आगे

[illegible] खेलों का [illegible] के लिए [illegible] भर से बधाई सन्देश प्राप्त हो रहे हैं।

[illegible] देखने ही [illegible] तैयार कर [illegible] माध्यम से अपने देश के भी और अन्य देशों के भी लाखों-करोड़ों लोगों ने इन खेलों का भरपूर आनन्द उठाया। इन सब कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिए कम्प्यूटरों, इलेक्ट्रानिक एक्सचेंजों, माइक्रोवेव और उपग्रह प्रणाली जैसे नवीनतम वैज्ञानिक साधनों का उपयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया।





यह इस बात का बड़ा सुन्दर उदाहरण है कि मिले-जुले प्रयास और कठिन परिश्रम से कितनी बड़ी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

यदि हम इसी भावना और उत्साह से काम करें तो राष्ट्र के विकास के अन्य क्षेत्रों में भी इतनी बड़ी सफलता क्यों नहीं प्राप्त कर सकते?

आइए हम सब मिल कर एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में जुट जाएं।

davp 82/565

davp 82/565

रविवारको ध्यान और प्रार्थनाके लिए मिलते हैं। उन्होंने श्री-अरविंदाश्रमकी स्वीकृतिसे माताजीकी पुस्तक 'आदर्श बालक'का बंगला अनुवाद छापा है।

'मदुरै श्रीमां मेडिकल एंड सर्विस सेंटर' ने 'योगमें भौतिक शरीर-की भूमिका' नामक तमिल पुस्तक प्रकाशित की है। यह केन्द्र समीके शरीरके कोषाणुओंमें चेतनाके विकासकी दिशामें काम करना चाहता है। अधिक जानकारीके लिये डा. पी. कृष्ण मेनन, ७ गुड्स शेड स्ट्रीट, मदुरै से पत्रव्यवहार करें।

नवजातजीके निधनके बहुतसे सहानुभूतिके पत्र और श्रद्धांजलियां आयीं हैं। खेद है स्थानाभावके कारण उन्हें छापना संभव नहीं है।

घोषणाएं —— अध्यापन कार्यमें रुचि रखनेवालोंके लिए २६ मईसे ६ जूनतक पांडिचेरीमें शिक्षा शिविर होगा। विशेष जानकारीके लिए श्री महादेविया, श्रीअरविंद सोसायटी पांडिचेरी ६०५००२ को लिखें।

अध्यापक प्रशिक्षण कोर्स —— जो लोग माताजीकी परिकल्पनाके अनुसार 'स्वतंत्र पद्धति' (फ्री प्रोग्रेस सिस्टम) का प्रशिक्षण लेना चाहते हैं उनके लिए श्रीअरविंद आश्रमकी दिल्ली शाखाने व्यवस्था की है। दस महीनेका यह कोर्स पहली जुलाई १९८३ से शुरू होगा अधिक जानकारीके लिए इस पतेपर पत्रव्यवहार करें —— व्यवस्थापक; सर्वांगीण अध्यापक प्रशिक्षण कोर्स, श्रीअरविंद आश्रम, शाखा दिल्ली, श्रीअरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-११००१६। आवेदन पत्रकी अन्तिम तिथि ५ मई १९८३ है।

ग्यारहवां अन्तर्राष्ट्रीय युवा शिविर (१८ से ३५ वर्ष) नैनी-तालमें १ से १३ जून १९८३ तक होगा। इसमें पर्वतारोहणके सात दिनके कोर्सके साथ-साथ विशेष दर्शनीय स्थलोंपर भी ले जाया जायेगा। विस्तृत जानकारीके लिए ऊपर हीके पतेपर पत्र-व्य-वहार करें।

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

'योग एण्ड लाइफ्स जर्नी' ६४ पृष्ठोंकी पुस्तक निकली है। लेखक हैं श्री एन. एन. कौल। पुस्तकके लिए इस पतेपर पत्रव्यवहार कर सकते हैं—श्री एन. एन. कौल, एफ ५९ ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली ११००१६।

नये प्रकाशन

सरलसंस्कृतसरणि: — लेखक श्रीअरविंदान्ताराष्ट्रिय शिक्षाकेन्द्रके संस्कृत अध्यापक श्री जगन्नाथ वेदालंकार; पृष्ठ २१६; मूल्य १५.००।

यह पुस्तक अपने विशेष गुणोंके कारण संस्कृत अध्यापकों और विद्यार्थियों दोनोंके लिए समान रूपसे उपयोगी सिद्ध होगी। विभिन्न अभ्यासों, कहानियों, संस्कृतके प्रचलित सरल शब्दोंके शब्दार्थ इत्यादि से पुस्तक उपयोगी बन गयी है।

यहां यह कहना अनुचित न होगा कि माताजी चाहती थीं कि संस्कृत भारतकी राष्ट्रभाषा बने।

श्रीअरविंद गाथा; — लेखक नीरद वरण; अनु० हृदय नारायण; श्रीअरविंद पाठ मंदिर, कलकता १२; मू. ५.५०।

सहज सरल भाषामें लिखा गया श्रीअरविंद यह छोटा-सा परिचय विद्यार्थियोंके लिये बहुत उपयोगी होगा। अनुवादमें बंगलाका सोंधापन अच्छा लगता है।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

मई १९८३ वर्ष १३, अंक १०, पूर्णांक १५४

विषय-सूची

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

२१ फ़रवरी १९८३

I am the God of Wealth, the Strong and Splendid, I am the Master of the thousands and the Regent of the millions, I am the puissant creator, the fullhanded gatherer, the opulent disposer of treasures. All the riches of every kind that are in the earth and on the earth and below it and all the riches that are in the waters are mine by right; I have power over all their plenitudes. My power is for the Mother; I call all these riches for her, that I may dedicate them to her, that I may lay them at the feet of the Mother of Radiances.

ॐ तथास्तु

— Sri Aurobindo

मैं धन-संपदाका देव, शक्तिशाली और वैभवशाली हूं। मैं हजारोंका स्वामी और लाखोंका प्रतिशासक हूं। मैं समर्थ स्रष्टा, हाथ भर-भरकर बटोरनेवाला और कोषोंका समृद्ध वितरक हूं। सब तरहकी सभी समृद्धियां जो पृथ्वीके अंदर, ऊपर या उसके नीचे हैं, सभी समृद्धियां जो जलमें हैं, साधिकार मेरी हैं, मेरा उन सबकी विपुलतापर अधिकार है। मेरी शक्ति मांके लिए है, मैं उन्हींके लिये इन समृद्धियोंका आह्वान करता हूं ताकि मैं उन्हें उनके प्रति अर्पित कर सकूं। मैं उन्हें दीप्तियोंकी मांके चरणोंमें भेंट धर सकूं।

ॐ तथास्तु।

—श्रीअरविंद

*

शाखाओं और केंद्रोंसे

हमारे मित्र, भाई नवजातने जानेसे पहले हमें बहुत अच्छा उपहार दिया है, वह है सोसायटीकी कई शाखाओं और केंद्रोंकी स्थापना। हम इन केंद्रोंको सजग, सक्रिय बनाकर ही नवजातका सच्चा श्राद्ध, तर्पण कर सकते हैं। हम जानते हैं कि शरीर छोड़ देने भरसे मृत्यु नहीं हो जाती। वे इस समय जिस क्षेत्रमें होंगे वहांसे हमारे केंद्रोंकी सक्रियता देखकर बहुत प्रसन्न होंगे।

केंद्रोंमें ध्यान हो, माताजी श्रीअरविंदकी पुस्तकोंका पठन-पाठन हो तो यह है पहला कदम। उनके दर्शनके अनुसार हमें उनकी शिक्षाको जीवनमें उतारना है तभी हमें अपने-आपको उनके शिष्य कहनेका अधिकार होगा। केंद्र चलानेवालोंका उत्तरदायित्व इससे अधिक है क्योंकि उन्होंने स्वेच्छासे उनकी शिक्षाको जन-साधारण-तक पहुंचानेकी जिम्मेदारी ली है।

ऐसी स्थितिमें केंद्रोंका काम होगा समाजको दिशा देना। प्रश्न उठता है यह कैसे किया जाय? हर केंद्र अपना स्थान, अपनी क्षमता और अपने सदस्योंकी स्थिति देखकर ऐसा कोई कार्य शुरू कर सकता है जो उसके उपयुक्त हो।

कई केंद्रोंसे जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं उनके आधारपर हम अन्य केंद्रोंको भी इस तरहके कार्योंको आरंभ करनेका निमंत्रण देते हैं।

उदाहरणके लिये ये हैं कुछ ऐसे कार्य जिन्हें आप अपने केंद्रमें शुरू कर सकते हैं। अगर आपके पास पर्याप्त स्थान हो तो छोटे-बच्चोंको सप्ताहमें तीन-चार दिन किसी-न-किसी खेलमें व्यस्त रख सकते हैं। सदस्योंमेंसे दो व्यक्ति इस कामके लिए नियुक्त हो सकते

है। खेलके आरंभ और अंतमें माताजी या श्रीअरविंदकी छोटी-सी प्रार्थना पढ़ी जाय।

सदस्योंमें दो-तीन महिलाएं आर्थिक सहायता देनेके लिए गरीब स्त्रियोंको थोड़ा सीना-पिरोना, काटना सिखाकर उनके बने कपड़े केंद्रद्वारा ही बेच दें या फिर पापड़ अचार बनाना सिखाकर उन्हें भी बेच सकती हैं। आजकल साड़ियोंपर चित्रकारी करनेका फैशन है। आप सब मिलकर ऐसा कलात्मक काम कर सकती हैं।

अवकाशप्राप्त व्यक्तियोंकी सहायतासे पढ़ाईमें कमजोर बच्चोंकी मदद की जा सकती है।

नृत्य या संगीतकी निःशुल्क शिक्षा देनेकी व्यवस्था भी हो सकती है।

स्थान मिले तो किंडर गार्टन चला सकते हैं जैसा कि एक केंद्र कर रहा है।

क्रिया-कलाप अनेक प्रकारके हैं, प्रश्न है चुननेका और फिर लगनसे करनेका।

आप देखेंगे आप जितने अधिक सक्रिय होंगे, उतनी ही सहायता चारों ओरसे आती रहेगी। केंद्र जितने सक्रिय होंगे उतने अधिक सार्थक भी बन सकेंगे। श्रीमां और श्रीअरविंद आपके साथ रहेंगे और अपने जीवनमें आप एक नया प्रकाश पायेंगे।

जो लोग इस दिशामें प्रयास कर रहे हों, या नया प्रयास शुरू करें वे हमें सूचना देते रहें तो अच्छा होगा परंतु यह प्रकाशनार्थ या ढोल पीटनेके लिए न होगा। इसका उपयोग अन्य केंद्रोंके सामने उदाहरण रखनेमें होगा।

—अनुबेन

आओ वर्षा

जून काले बादलोंका, बिजली और मेघ गर्जना तथा मयूरके मत्त नर्तनका समय है किंतु आजकल मौसम भी रूठना सीख गया है। इस रूठनेके पीछे कई कारण हैं। एक बड़ा कारण माताजीने बरसों पहले बताया था। उन्होंने कहा था कि ऋतुओंकी प्यारी, प्यारी, छोटी सत्ताएं हैं। चूंकि मानवने साइंस द्वारा अणु वगैरह बना कर वातावरणको विक्षुब्ध कर दिया है, वे सत्ताएं चकरा-सी गयी हैं और वे अपना काम ढंगसे नहीं कर पातीं।

तो इसका उपाय क्या है? माताजीने एक बार अनावृष्टिके समय बच्चोंसे वर्षाके लिये प्रार्थना करवायी थी। हम भी अभीसे उस प्रार्थनाको दोहरायें तो जूनकी वर्षा अपने रिमझिम संगीतके साथ आकर प्यासी भूमिको तृप्त करेगी।

वर्षाके लिये प्रार्थना

वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा चाहते हैं।
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा मांगते हैं।
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हमें वर्षाकी जरूरत है।
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षाके लिये प्रार्थना करते हैं।

शायद, माताजीके अपने शब्दोंमें की गयी प्रार्थनामें अधिक मन्त्र-बल होगा। लीजिये उनके शब्द हैं।

Rain, Rain, Rain, we want the Rain.
Rain, Rain, Rain, we ask for Rain.
Rain, Rain, Rain, we need the Rain.
Rain, Rain, Rain, we pray for the Rain.

—अनुवेद

दैनन्दिनी

मई

१. प्रभु, मुझे सच्चा सुख दे, वह सुख जो केवल तेरे ऊपर निर्भर है।

२. प्रभु, हमें वह अदम्य साहस दे जो तेरे अंदर पूर्ण विश्वाससे आता है।

३. प्रभु, हमें बल दे कि हम पूर्ण रूपसे उस आदर्शको जी सकें जिसकी हम घोषणा करते हैं।

४. हमें यशस्वी भविष्यमें श्रद्धा और उसे चरितार्थ करनेकी क्षमता प्रदान कर।

५. प्रभु, वर दे कि हमारे अंदर चेतना और शांति बढ़े, ताकि हम एकमेव दिव्य विधानके अधिकाधिक निष्ठावान् माध्यम बन सकें।

६. प्रभु, हमारे अंदर कोई चीज तेरे काममें बाधा न दे पाये।

७. प्रभु, हमें मिथ्यात्वसे मुक्त कर, हम तेरे सत्यमें तेरी विजयके योग्य और शुद्ध होकर उभरें।

८. हे अद्भुत कृपा, वर दे कि हमारी अभीप्सा हमेशा अधिक तीव्र, हमारी श्रद्धा हमेशा अधिक जीवंत हो, हमारा विश्वास हमेशा अधिक निरपेक्ष हो।

तू सर्व-विजयी है।

९. मेरे प्रभु, मेरी मां,
तुम हमेशा अपने आशीर्वाद और अपनी कृपाके साथ मेरे संग रहते हो।
तुम्हारी उपस्थिति ही परम सुरक्षा है।

१०. "हे मां, तू मेरी बुद्धिका प्रकाश, मेरी अंतरात्माकी शुद्धि, मेरे प्राणका स्थिर शांत बल और मेरे शरीरकी सहनशक्ति है। मैं केवल तेरे ऊपर निर्भर हूं और पूरी तरह तेरा होना चाहता हूं। मार्गकी सभी कठिनाइयोंसे मुझे पार लगा।"

११. मेरी एक छोटी-सी मां है
जो मेरे हृदयमें आसीन है;
हम दोनों एक साथ इतने प्रसन्न हैं,
कि हम कभी जुदा न होंगे।

१२. अचल शांतिका रस लेनेका एकमात्र उपाय है सभी परिस्थितियोंमें सदा वही चाहना जो तू चाहता है।

१३. हे प्रभु, मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं, मेरे चरणोंको रास्ता दिखा, मेरे मनको प्रकाश दे, कि सभी चीजोंमें हर क्षण मैं वही करूं जो तू मुझसे करवाना चाहता है।

१४. प्रभु, मुझे पूर्ण सचाई प्रदान कर, वह सचाई जो मुझे सीधा तेरे पास ले जाय।

१५. प्रभु, मुझे अपना आशीर्वाद दे ताकि मैं अधिकाधिक सच्चा बन सकूं।

१६. मेरे प्रभु, तूने आज रातको मुझे यह परम ज्ञान दिया है। हम जिन्दा हैं क्योंकि यही तेरी इच्छा है। हम तभी मरेंगे जब यह तेरी इच्छा होगी।

१७. मैं तेरा हूं, मैं मुझे जानना चाहता हूं ताकि जो कुछ मैं करूं वह सब केवल वही हो जो तू मुझसे करवाना चाहता है।

१८. दयाके स्वामी, मुझे अपनी कृपाके योग्य बना।

सवेरे और शामकी प्रार्थना

१९. प्रभु, मैं तुम्हारा और तुम्हारे योग्य बनना चाहता हूं, अपना मुझे अपना आदर्श बालक बना।

२०. हे मेरे प्रभु, मेरी मधुर मां,
वर दो कि मैं तुम्हारा बनूं, पूरी तरह तुम्हारा, पूर्ण रूपसे तुम्हारा। तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा प्रकाश और तुम्हारा प्रेम समस्त अशुभसे मेरी रक्षा करेंगे।

२१. हे मेरे प्रभु, मधुर मां,
मैं तुम्हारा हूं और प्रार्थना करता हूं कि अधिकाधिक पूर्णता-के साथ तुम्हारा बनूं।

२२. हे मेरे प्रभु, मधुर मां,
तुम्हारी शक्ति मेरे साथ है, तुम्हारा प्रकाश और तुम्हारा प्रेम और स्वयं तुम सभी कठिनाइयोंसे मेरी रक्षा करोगे।

२३. मेरे मधुर प्रभु, मेरी छोटी-सी मां,
मुझे सच्चा प्रेम प्रदान करो, ऐसा प्रेम जो अपने-आपको भूल जाता है।

२४. कर्मका सच्चा मनोभाव तब आता है जब कर्म सर्वदा माताजीके विचारके साथ जुड़ा होता है, उनकी पूजाके रूपमें किया जाता है, इस प्रार्थनाके साथ किया जाता है कि वह तुम्हारे द्वारा किया जाय।

—श्रीअरविंद

२५. प्रभु, वर दे कि एक बार की गयी और पहचानी गयी मूर्खता फिर न होने पाये।

२६. मुझे निश्चल विश्वास, शांत बल, उद्दीप्त श्रद्धा और भक्ति प्रदान कर।

२७. प्रभु, मेरे ऊपर यह कृपा कर कि मैं तुझे कभी न भूल पाऊं।

२८. हे प्रभु, मुझे भय और चितासे मुक्त कर ताकि मैं अधिक-से अधिक योग्यताके साथ तेरी सेवा कर सकूं।

२९. मेरे प्रभु, मुझे पूरी तरह अपना बना ले।

३०. हे प्रभु, मुझे समस्त दर्पसे मुक्त कर; मुझे विनीत और सच्चा बना।

३१. हार न मानो, डटे रहो। जब सब कुछ डूबता हुआ लगता है तभी सब कुछ बचा लिया जाता है।

माता

माताकी चार शक्तियां उनके चार प्रमुख व्यक्तित्व हैं। वे उनकी दिव्यताके अंश और साकार रूप हैं जिनके द्वारा वे अपने जीवोंपर क्रिया करती हैं और लोक-लोकान्तरकी अपनी सृष्टियोंमें व्यवस्था और समस्वरता लाती हैं और अपनी हजारों शक्तियोंके कार्य-सूत्रका संचालन करती हैं। माता हैं तो एक ही, पर वे हमारे सामने भिन्न-भिन्न रूपोंमें आती हैं। उनकी अनेक शक्तियां और व्यक्तित्व हैं। उनसे निकले हुए बहुत-से रूप और विभूतियां हैं जो सृष्टिमें उनका काम करते हैं। जिस एककी हम माताके रूपमें पूजा करते हैं वे भागवत चित्-शक्ति हैं जो सारी सृष्टिपर छाई हुई हैं। एक होते हुए भी उनके इतने अधिक पहलू हैं कि तेज-से-तेज मन और अधिक-से-अधिक स्वतन्त्र और विशाल बुद्धिके लिये भी उनकी गतिका अनुसरण कर सकना असंभव है। माता परम-पुरुषकी चेतना और शक्ति हैं और वे अपनी सारी सृष्टियोंके बहुत ऊपर हैं। फिर भी उनकी गतिविधिकी कुछ चीजें उनके साकार रूपोंके द्वारा देखी और अनुभव की जा सकती हैं और ज्यादा आसानीसे पकड़में आ सकती हैं क्योंकि भगवती जिन दिव्य रूपोंमें अपने जीवोंके आगे प्रकट होना स्वीकार करती हैं उनके स्वभाव और कर्म ज्यादा निश्चित और सीमित होते हैं।

जब हम समस्त जीवोंको तथा विश्वको धारण करनेवाली सचेतन शक्तिके साथ एकताके संपर्कमें आते हैं तभी माताकी तीन प्रकारकी सत्तासे अवगत हो सकते हैं। वे परात्पर आद्या परम शक्तिके रूपमें सभी लोकोंके ऊपर खड़ी रहकर परमपुरुषके कभी व्यक्त न होनेवाले रहस्यके साथ सृष्टिका नाता जोड़ती हैं। वैश्व, सारे ब्रह्मांडमें बसी हुई, महाशक्तिके रूपमें वे इन सभी सत्ताओंको रचती हैं, इन सब अनगिनत प्रक्रियाओं और शक्तियोंको धारण करती हैं और उनमें समायी रहती हैं, वे ही उन्हें सहारा देती हैं और

उनका संचालन करती हैं। व्यक्तिगत रूपमें वे अपनी सत्ताके इन दोनों अधिक विशाल रूपोंकी शक्तिको मूर्तरूप देती हैं, उन्हें जीवन देती हैं, और हमारे नजदीक लाती हैं। वे मानव व्यक्तित्व और दिव्य प्रकृतिके बीचकी कड़ी बनती हैं।

आद्या परात्पर शक्तिके रूपमें माता सब लोकोंके ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतनामें परम-पुरुषको धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अंदर परम शक्ति और ऐसी उपस्थितिको लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्योंको धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत्में प्रकट होना है। वे उन सत्योंको, उस रहस्यमय स्थानसे, जहां वे छिपे हुए थे, उतारकर अपनी अनन्त चेतनाकी ज्योतिमें नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान सामर्थ्यके द्वारा शक्तिका रूप तथा असीम जीवन और विश्वमें शरीर प्रदान करती हैं। परम-पुरुष उस माताके अंदर सनातन कालके लिये अनन्त सच्चिदानन्दके रूपमें अभिव्यक्त हैं और उन्हींके द्वारा लोकोंमें वे ईश्वर-शक्तिके एक और द्विविध रूपमें तथा पुरुष-प्रकृतिके द्वैत तत्त्वमें अभिव्यक्त होते हैं। परम-पुरुष माताके द्वारा अनेक लोकों और चेतनाकी भूमिकाओंमें तथा देवता और उनकी शक्तियोंमें मूर्तिमान हुए हैं। उन्हींके कारण वे जाने और अजाने लोकोंमें जो कुछ है उन सब रूपोंमें साकार हुए हैं। सब कुछ परम-पुरुषके साथ माताकी लीला है। माताने ही इस सारे संसारमें सनातनके रहस्यों और अनन्तके चमत्कारोंको व्यक्त किया है। माता ही सब कुछ हैं क्योंकि सभी चीजें दिव्य चित्-शक्तिके अंश और भाग हैं। माता जिस बातका निश्चय करती हैं और जिसके लिये परम-पुरुष स्वीकृति देते हैं उसके सिवाय यहां या कहीं और कुछ भी नहीं हो सकता। परम-पुरुषकी प्रेरणासे माता अपने सर्जनशील आनन्दमें बीजके रूपमें डालकर जिन चीजोंको देखती और आकार देती हैं उनके सिवाय और कोई चीज रूप धारण नहीं कर सकती।

अपनी परात्पर चेतनामें महाशक्ति, विश्व-माता, परम-पुरुषसे जो कुछ प्राप्त करती हैं उसे मूर्त रूप देकर अपने बनाये हुए लोकोंमें स्वयं भी प्रवेश कर जाती हैं। माताकी उपस्थिति उन लोकोंको अपने दिव्य व्यक्तित्व, अपने धारण करनेवाले बल और आनन्दसे भर देती है और उन्हें सहारा देती है। इनके बिना उन लोकोंका अस्तित्व ही न हो पाता। हम जिसे प्रकृति कहते हैं वह माताका एकदम बाहरी और कार्य-निर्देशक रूप है। माता अपनी शक्तियों और प्रक्रियाओंकी समस्वरताकी व्यवस्था करती हैं, प्रकृतिके कार्योंको आगे बढ़ाती हैं, इन्द्रियों या अनुभवके द्वारा पकड़में आ सकनेवाली या जीवनकी गतिके लिये उपयोगी हर वस्तुको प्रकट या अप्रकट रूपसे संचालित करती हैं। लोकोंमेंसे प्रत्येक, अपने-अपने लोक-संस्थान या विश्व ब्रह्मांडकी महाशक्तिकी एक लीलाके सिवाय कुछ नहीं है। यह महाशक्ति परात्पर माताकी वैश्व आत्मा और वैश्व व्यक्तित्वके रूपमें उपस्थित हैं। प्रत्येक लोकका वही रूप होता है जो माताने अपनी दिव्य दृष्टिसे देखा, अपनी शक्ति और सौंदर्यसे संजोया और अपने आनन्दद्वारा पैदा किया है।

परंतु उनकी सृष्टिके अनेक स्तर हैं, भागवत शक्तिके अनेक सोपान हैं। हम जिस अभिव्यक्तिके भाग हैं उसकी चोटीपर अंनत सत्ता, चेतना, शक्ति और आनन्दके लोक हैं। उनके ऊपर माता बिना किसी आवरणके शाश्वत शक्तिके रूपमें रहती हैं। वहां सब सत्ताएं अवर्णनीय पूर्णता और अटल एकतामें निवास करती और विचरण करती हैं क्योंकि वहां माता उन्हें अपने बाहुओंमें हमेशा ही सुरक्षित रूपसे लिये रहती हैं। पूर्ण अतिमानस सृष्टिके लोक हमारे ज्यादा नजदीक हैं। माता वहां अतिमानसिक महाशक्ति हैं, भागवत सर्वज्ञ संकल्प और सर्वसमर्थ ज्ञानकी शक्ति हैं जो अपने अचूक कर्मोंमें हमेशा दिखायी देती हैं और उनके कर्मोंमें सहज रूपसे सब प्रकारकी पूर्णता होती है। वहां सब कर्म सत्यकी ओर बढ़ते हुए कदम हैं, सब सत्ताएं दिव्य ज्योतिकी आत्मा, बल और

शरीर हैं, वहांके सभी अनुभव प्रगाढ़ और परम आनन्दके सागर, बाढ़ और लहरें हैं। लेकिन यहां जहां हम निवास करते हैं, अज्ञानके लोक हैं, मन, प्राण और शरीरके लोक हैं जो अपनी मूल चेतनासे बिछुड़ गए हैं। यह पृथ्वी उनका एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है और इसका विकासक्रम एक सूक्ष्म और निश्चायक प्रक्रिया है। विश्व-माता इसे भी, इसके सारे अज्ञान, संघर्ष और अपूर्णताके बावजूद सहारा दिये हुए हैं। महाशक्ति इसे भी इसके गुप्त लक्ष्यकी-ओर आगे बढ़ाती और प्रेरित करती हैं।

अतिमानस ज्योति, सत्य-जीवन और सत्य-सृष्टिके लोकोंको ऊपरसे यहां नीचे लाना है। नीचे चेतनाके स्तरोंकी चढ़ती-उतरती दोहरी सीढ़ीके जैसी श्रेणियां हैं जिनमें चेतना पहले जड़तत्त्वकी निश्चेतनामें गिरती है और फिर प्राण, मन और अंतरात्माको जीवनमें खिलाती हुई आत्माकी अनन्ततामें ऊपर उठती है। माता इन दोनोंके बीचमें अज्ञानके त्रिविध जगत्की महाशक्तिके रूपमें निवास करती हैं। माता देवताओंके ऊपर रहकर जो कुछ देखती, अनुभव करती और अपने अंदरसे उत्पन्न करती हैं उसके द्वारा वे धरतीके विकासक्रमका निर्णय करती हैं और उस कामके लिये अपनी सभी शक्तियां और व्यक्तित्व अपने सामने रखती हैं। वे उनकी अंश-विभूतियोंको निचले लोकोंमें मध्यस्थता, शासन, युद्ध और विजय करनेके लिये उनके काल चक्रको बदलने और रास्ता दिखानेके लिये और उनकी शक्तियोंको व्यक्तिगत और समष्टिगत मार्ग दिखानेके लिये भेजती हैं। मनुष्योंने युग-युगान्तरोंसे दिव्य रूप और दिव्य व्यक्तित्वके रूपमें इन अंशविभूतियोंकी भिन्न-भिन्न नामोंसे माताकी पूजा की है। पर साथ ही माता जिस तरह ईश्वरकी विभूतियोंके मन और शरीर तैयार करके उन्हें रूप प्रदान करती हैं उसी तरह अपनी इन शक्तियों और अंशविभूतियोंद्वारा अपनी विभूतियोंके मन और शरीर भी तैयार करती हैं ताकि वे भौतिक जगत्में मानव चेतनाके भेसमें अपनी शक्ति, अपने गुण और अपनी उपस्थितिकी कुछ किरणोंको

अभिव्यक्त कर सकें। इस धरतीकी लीलाके सभी दृश्य नाटकके समान हैं और इनकी योजना और व्यवस्था माताने ही की है जिसमें वैश्व देव उनके सहायक हैं और वे स्वयं प्रच्छन्न अभिनेता हैं।

माता केवल ऊपर रहकर ही सबपर शासन नहीं करतीं, वे निचले त्रिविध लोकोंमें भी उतर आती हैं। निर्वैयक्तिक रूपसे सभी चीजें यहां तक कि अज्ञानकी गतियां भी — छिपी हुई शक्तिके रूपमें स्वयं वही हैं। वे उन्हींके घटे हुए तत्त्वमें उनकी प्राकृतिक शक्ति और प्राकृतिक शरीर हैं और इनका अस्तित्व इसलिये है कि अनन्त-की संभावनाओंमेंसे कुछको मूर्त रूप देनेके लिये परम-पुरुषका रहस्यमय आदेश हुआ था, उस आदेशको मानकर माताने महान् बलिदान देना स्वीकार किया और अंतरात्मा और अज्ञानके मुखौटों-को पहनना स्वीकारा। व्यक्तिगत रूपसे भी माताने इस जगत्के अंध-कारमें उतरना स्वीकार किया ताकि वे उसे ज्योतिकी ओर ले जा सकें; वे मिथ्यात्व और भ्रांतिमें उतरीं ताकि उन्हें सत्यमें बदला जा सके; इस मृत्युमें उतरीं ताकि उसे दिव्य जीवनमें बदल सकें; इस सांसारिक दुःखमें और उसके दुःसाध्य कष्ट और पीड़ामें उतरीं ताकि अपने परम आनन्दकी तीव्रतासे इनका रूपांतर करके इनका अन्त कर सकें। उन्होंने अपने बच्चोंके लिये गहरे और महान् प्रेमके कारण अज्ञानका लबादा पहनना स्वीकार किया, जन्मके प्रवेश द्वारमें घुसना स्वीकारा जो वास्तवमें मृत्यु ही है। अंधकार और मिथ्यात्व-की शक्तियोंके आक्रमणों और कष्ट देनेवाले प्रभावोंको सहनेकी, सृष्टिके दुःख-दर्द और यातनाओंको स्वीकारनेकी कृपा की क्योंकि उन्हें लगा कि केवल इसी उपायसे जगत्को ज्योति, आह्लाद, सत्य और अनन्त जीवनकी ओर उठाया जा सकता है। यही वह महान बलिदान है जिसे कभी-कभी पुरुषका बलिदान कहा जाता है पर अधिक गहरे अर्थोंमें यह प्रकृतिकी आत्माहुति है, भगवती मांका बलिदान है।

माताके चार महान् स्वरूप, माताकी जो प्रमुख शक्तियां और व्यक्तित्व-हैं उनमेंसे चार रूप, इस विश्वका मार्गदर्शन करने तथा भौतिक

लीलाके साथ व्यवहार करनेके लिये आगे रहते हैं। उनमेंसे एक स्थिर विशालता, व्यापक ज्ञान, प्रशांत अनुग्रह और अपार करुणा, सबसे बढ़े-चढ़े सर्वश्रेष्ठ वैभव और सबपर शासन करनेवाली महानताका व्यक्तित्व है। दूसरा रूप उनकी भव्य शक्तिके बलको, दुर्धर्ष आवेगको, उनके क्षात्र स्वभावको, दुर्दमनीय संकल्पको, प्रचण्डवेग और सारे संसारको हिला देनेवाली शक्तिको मूर्त रूप देता है। तीसरा रूप उनकी गम्भीर और रहस्यमयी सुन्दरता, समस्वरता और सामंजस्य, उनकी गूढ़ और सूक्ष्म समृद्धि और विवश करनेवाले आकर्षण और हृदयको जीत लेनेवाले लावण्यके कारण उज्ज्वल, मधुर और अद्भुत है। और चौथा स्वरूप उनके अन्तरंग ज्ञान, सचेत और दोष-रहित कर्म तथा हर चीजमें शांत और यथार्थ पूर्णताके गुप्त, गम्भीर सामर्थ्यसे युक्त होता है। इन स्वरूपोंके कुछ गुण हैं — बुद्धिमत्ता, शक्ति, सामंजस्य और पूर्णता, और वे अपने साथ धरतीपर इन गुणोंको लाते हैं और मनुष्यके रूपमें आनेवाली अपनी विभूतियोंमें प्रकट करते हैं : जो लोग अपनी भौतिक प्रकृतिको माताके सीधे और जीते-जागते प्रभावकी ओर खोल सकते हैं उनकी दिव्यताकी ओर चढ़नेके अनुपातमें ही उनमें इन गुणोंकी स्थापना होगी। इन चार स्वरूपोंके नाम है महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती।

अगर तुम यह रूपांतर चाहते हो तो अपने-आपको बिना मीन-मेख या प्रतिरोधके माता और उनकी शक्तियोंके हाथोंमें सौंप दो। तुम्हारे अंदर तीन चीजें होनी चाहियें — सचेतनता, नम्यता और बिना शर्त समर्पण। तुम्हें अपने मन, अंतरात्मा, हृदय, प्राण और शरीरके कोषाणुओंतकमें माताका, उनकी शक्तिका, उनकी क्रियाके बारेमें सचेतन ज्ञान होना चाहिये। यद्यपि वे तुम्हारी अज्ञानावस्थामें, अचेतन भागों और क्षणोंमें भी काम कर सकती और करती हैं लेकिन यह काम वैसा नहीं होता जैसा कि तब होता है जब तुम उनके साथ जीवित-जाग्रत् संपर्कमें होते हो। तुम्हारी पूरी प्रकृति

उनके स्पर्शके प्रति नमनीय होनी चाहिये, उसे अपने-आपसे संतुष्ट अज्ञानी मनकी तरह, जो बोध और परिवर्तनका शत्रु है, प्रश्न, तर्क-कुतर्क और शंकाएं नहीं करनी चाहियें। उसे हठीला बनकर हर भागवत प्रभावका अनन्य कामना और अशुभेच्छाके साथ विरोध करनेवाले मानव प्राणकी तरह अपनी गतिविधिके लिये दुराग्रह नहीं करना चाहिये। उसे मनुष्यकी उस भौतिक चेतनाकी तरह निर्बल, जड़ और तमोग्रस्त नहीं होना चाहिये जो अपनी क्षुद्रता और अंधकारसे मिलनेवाले सुखसे चिमटकर, अपनी निर्जीव दिनचर्या, शुष्क प्रमाद या जड़ तन्द्रामें विघ्न डालनेवाले हर स्पर्शके विरुद्ध चिल्ला पड़ती है। तुम्हारी अंदर और बाहरकी सत्ताका बिना शर्त समर्पण तुम्हारी प्रकृतिके सभी भागोंमें यह नमनीयता ले आयेगा। ऊपरसे नीचे प्रवाहित होते हुए प्रज्ञा और प्रकाश, शक्ति, सामंजस्य और सौंदर्य तथा पूर्णताके प्रति हमेशा खुले रहनेसे तुम्हारे अंदर हर जगह चेतना जाग उठेगी। यहांतक कि शरीर भी सचेतन हो जायगा और उसकी चेतना पहलेकी तरह अतिमानसिक, अतिचेतन शक्तिसे छिपी न रहकर उसके साथ एक हो जायगी, उसकी सारी शक्तियोंको ऊपर, नीचे और चारों ओर फैलती हुई अनुभव करेगी और वह परम प्रेम और आनन्दकी अनुभूतिसे पुलकित हो उठेगी।

लेकिन सावधान रहो, अपने छोटेसे पार्थिव मनसे माताको समझने और परखनेकी कोशिश मत करो क्योंकि यह मन अपने संकुचित तर्क, भूलभरी राय, अपने झगड़ालू, आक्रमणशील अगाध अज्ञान और तुच्छ आत्मविश्वासी ज्ञानके भरोसे अपनेसे परेकी चीजोंको मापनेमें मजा लेता है। अपने अर्धप्रकाशित अज्ञानकी कारामें बन्द मानव मन दिव्य शक्तिके चरणोंकी बहुमुखी स्वाधीनताका साथ नहीं दे सकता। उनकी दृष्टि और क्रियाकी द्रुत गति और जटिलता उसकी लड़खड़ाती समझको पीछे छोड़ जाती है। माताकी गतिकी लय उसकी लय नहीं है। उनके अनेक और भिन्न व्यक्तित्वोंके द्रुत परिवर्तनोंसे, उनके लयोंके निर्माण और छन्दोंके भंगसे, उनके

गतिको बढ़ाने और घटानेसे, एक या अन्य समस्यापर विचार करनेके उनके विभिन्न तरीकोंमें कभी एक और कभी दूसरी पद्धतिके ग्रहण करने और त्याग देने और फिर दोनोंको मिलानेवाले तरीकोंसे विमूढ़ बना मन अज्ञानके आवर्तमेंसे दिव्य प्रकाशकी ओर चक्राकार और वेगपूर्ण उड़ती हुई पराशक्तिकी पद्धतिको नहीं समझ सकेगा। ज्यादा अच्छा यह है कि तुम अपनी अंतरात्माको उनकी ओर खोलो और अपनी चैत्य दृष्टिके द्वारा अनुभव करके और चैत्य दृष्टिसे दर्शन करके तृप्ति लाभ करो क्योंकि केवल वही दिव्य सत्यको सीधा उत्तर दे सकती है। उसके बाद स्वयं माता मन, हृदय, प्राण और भौतिक चेतनामें उनके चैत्य तत्त्वोंके द्वारा अपनी कार्य-प्रणाली और अपनी प्रकृतिको प्रकट कर देंगी।

हमारा अज्ञान भरा मन सदा यह भूल भरी मांग करता है कि दिव्य शक्ति हमेशा हमारी सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्तासंबन्धी उथली और अधकचरी धारणाओंके अनुसार काम करे। इस भूल-भरी मांगसे बचते रहो। क्योंकि हमारा मन हर मोड़पर, अलौकिक शक्ति, सरल सफलता तथा चौंधियानेवाले तेजसे चकित होनेके लिये शोर मचाता रहता है। ऐसा न हो तो वह इस बातपर विश्वास नहीं कर सकता कि भगवान् यहां मौजूद हैं। माता अविद्याके क्षेत्रमें उतरकर अविद्याके साथ जूझ रही हैं, वे इस क्षेत्रमें नीचे उतर आयी हैं और पूरी तरह ऊर्ध्वलोकमें नहीं हैं। वे अपने ज्ञान और शक्तिको कुछ खोलती और कुछ छिपाती हैं। वे प्रायः उन्हें अपने यन्त्रों और व्यक्तित्वोंसे रोके रखती हैं और ऐसा रास्ता अपनाती हैं जिससे जिज्ञासु मनका, अभीप्सा करनेवाले चैत्यका, युद्ध-रत प्राणका, कारागारमें बन्द, कष्ट पाती हुई भौतिक प्रकृतिका उनके अपने-अपने ढंगसे रूपांतर कर सकें। कुछ ऐसी शर्तें हैं जिन्हें परमोच्च संकल्पने निर्धारित किया है, बहुत-सी उलझी हुई गांठें हैं जिन्हें सहसा काटकर अलग नहीं किया जा सकता, उन्हें धीरे-धीरे ढीला करना होगा। इस विकास करती हुई धरतीपर

असुर और राक्षस कब्जा किये हुए हैं। उनकी चिरकालसे जीती हुई जागीरमें, उनके प्रदेशमें उन्हींकी शर्तोंके अनुसार उनका सामना करना और उन्हें जीतना है। हमें अपने अंदर स्थित मानवको ठीक राह दिखाकर अपनी सीमाओंको लांघनेके लिये तैयार करना है। वह इतना कमजोर और अज्ञानसे भरा है कि उसे अचानक अपनेसे बहुत दूरके दिव्य स्वरूपमें नहीं उठाया जा सकता। भागवत चेतना और शक्ति यहां उपस्थित हैं और श्रमकी परिस्थितियोंमें हर क्षण जो आवश्यक है वह करती रहती हैं, अपूर्णताओंके बीच आनेवाली पूर्णताको आकार देनेके लिये भगवान्के बताए कदम उठाती रहती हैं। लेकिन तुम्हारे अंदर अतिमानसके उतरनेपर ही माता तुम्हारे साथ सीधी अतिमानस शक्तिके रूपमें अतिमानस प्रकृतिके अनुसार काम कर सकती हैं। अगर तुम मनके पीछे चलो तो माताके सामने प्रकट होनेपर भी तुम उन्हें न पहचान सकोगे। अपनी अंतरात्माका अनुसरण करो, मनका नहीं, अपनी उस अंतरात्माका जो सत्यको प्रत्युत्तर देती है, उस मनका नहीं जो बाहरी रूपोंपर कूदता है। दिव्य शक्तिपर विश्वास करो और वह तुम्हारे अंदरके भागवत तत्त्वोंको मुक्त कर देगी और उन सबको एक दिव्य प्रकृतिकी अभिव्यक्ति बना देगी।

धरतीकी चेतनाके विकास क्रममें अतिमानसिक परिवर्तन अवश्यम्भावी है क्योंकि अभीतक उसका ऊर्ध्वारोहण समाप्त नहीं हुआ है और मन उसकी आखिरी चोटी नहीं है। लेकिन उस परिवर्तनके आने, स्वरूप धारण करने, स्थिर होनेके लिये नीचेसे पुकारके साथ उसे पहचाननेका और उससे इन्कार न करनेका संकल्प होना चाहिये और साथ ही ऊपरसे परम पुरुषकी स्वीकृति भी होनी चाहिये। जो शक्ति पुकार और स्वीकृतिके बीच मध्यस्थता करती है वह है दिव्य माताकी उपस्थिति और शक्ति। मनुष्यका कोई भी प्रयास या तपस्या नहीं, केवल माताकी शक्ति ही ढक्कन फाड़कर, आवरणको छिन्न-भिन्न करके पात्रको ठीक रूप दे सकती है और अंधकार,

मिथ्यात्व और मृत्यु और दुःखसे भरे इस जगत्में सत्य और ज्योति और दिव्य जीवन और अमर आनंद ला सकती है।

*

भगवान् स्वयं मार्गपर चलकर मनुष्योंको राह दिखानेके लिये मनुष्यका रूप धारण करते हैं और बाहरी मानव-प्रकृतिको स्वीकार करते हैं। पर इससे उनका 'भगवान्' होना खतम नहीं हो जाता। यह एक अभिव्यक्ति होती है, बढ़ती हुई भागवत चेतना अपने-आपको प्रकट करती है। यह मनुष्यका भगवान्में बदला जाना नहीं है। श्रीमां अपने आन्तर स्वरूपमें बचपनमें भी मानवत्वसे ऊपर थीं। इसलिये बहुतसे 'लोगों' का जो उपर्युक्त मत है वह भ्रमात्मक है।

श्रीमां अतिमानसको नीचे लानेके लिये ही आती हैं और अतिमानसका अवतरण होनेपर ही उनका यहां पूर्ण रूपसे अभिव्यक्त होना संभव होता है।

*

भगवती माता भगवान्की चित्-शक्ति हैं — जो समस्त वस्तुओंकी जननी हैं।

*

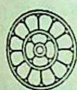
केवल एक ही दिव्य शक्ति है जो विश्वमें भी कार्य करती है और व्यक्तियोंमें भी और फिर जो व्यक्ति और विश्वके परे भी है। श्रीमां इन सबकी प्रतिनिधि हैं, पर वे यहां शरीरमें रहकर कुछ ऐसी चीज उतारनेके लिये कार्य कर रही हैं जो अभीतक इस स्थूल जगत्में इस तरह अभिव्यक्त नहीं हुई हैं कि यहांके जीवनको रूपांतरित कर सकें—अतः तुम्हें उनको इस उद्देश्यसे यहां कार्य करने-

वाली भागवती शक्ति समझना चाहिये। वे अपने शरीरमें वहीं हैं, पर अपनी संपूर्ण चेतनामें वे भगवान्के सभी स्वरूपोंके साथ अपना तादात्म्य बनाये हुई हैं।

*

विश्वको और विश्वके विधानको बनाये रखना विश्व-शक्तिका कार्य है। महत्तर रूपांतर आता है विश्वातीत परात्परसे और उसी परात्पर कृपाशक्तिको कार्य-रूपमें लानेके लिये यहां श्रीमांका मूर्त्त स्वरूप विद्यमान है।

माताजी अपने विषयमें



जब मैं बच्ची थी — लगभग तेरह वर्षकी — प्रतिदिन रात्रिको ज्यों ही मैं सोनेके लिये पलंगपर जाती मुझे ऐसा प्रतीत होता कि मैं अपने शरीरसे बाहर निकल आयी हूं और सीधे घरके ऊपर, फिर नगरके ऊपर बहुत ऊंचे उठ रही हूं — ऐसा लगभग एक वर्षतक चलता रहा — और तब मैं अपने-आपको एक बड़ा सुन्दर, स्वर्णिम चोगा पहने देखती जो मुझसे बहुत लंबा होता। ज्यों-ज्यों मैं ऊपर उठती वह चोगा लंबा होता जाता, मेरे चारों ओर घेरेके रूपमें इस प्रकार फैल जाता कि वह नगरके ऊपर एक बहुत बड़ी छतके समान प्रतीत होने लगता। और तब मैं सब ओरसे पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों, रोगियों और दुःखी मनुष्योंको निकलते देखती; वे सब इस विस्तृत चोगेके नीचे एकत्र हो जाते, इससे सहायताकी याचना करते, अपने दुःख-कष्ट, अपनी पीड़ाएं सुनाते। प्रत्युत्तर-

में वह नमनीय और सजीव चोगा उनमेंसे एक-एककी ओर बढ़ता और ज्यों ही वे उसे छू लेते, उन्हें सान्त्वना प्राप्त होती, वे रोग-मुक्त हो जाते, और वापस अपने शरीरमें लौट जाते, उस समय वे पहलेसे इतने अधिक प्रसन्न और सशक्त होते जितने कि उसमें-से निकलनेके पहले कभी नहीं थे। इससे अधिक सुन्दर कार्य मुझे और कोई नहीं प्रतीत होता था, इससे अधिक मुझे और कोई वस्तु आनन्दपूर्ण अनुभव नहीं होती थी। दिनके सब कर्म मुझे रात्रिके उस कर्मकी तुलनामें जो मेरे लिये एक यथार्थ जीवन था, नीरस, फीके और निर्जीव प्रतीत होते। उस समय जब मैं ऊपर उठती, मैं प्रायः ही अपनी बायीं ओर एक वृद्धको देखती, मौन और अचल; वह मेरी ओर कृपापूर्ण स्नेहकी दृष्टिसे देखते; उनकी उपस्थिति मुझे उत्साहित करती। वह वृद्ध, जो एक लम्बा, धुंधले बैंगनी रंगका चोगा पहने होते, उनके प्रतीक थे जो "दुःखोंके मानवीय विग्रह" कहलाते हैं, यह मैंने बहुत पीछे जाना।

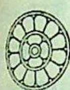
अब यह गम्भीर अनुभव, यह सत्य जो प्रायः अवर्णनीय है, मेरे मस्तिष्कमें कुछ अन्य विचारोंमें अनूदित होता है जिनकी व्याख्या मैं इस प्रकार कर सकती हूं।

दिनमें अनेक बार और रात्रिमें भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अर्थात् मेरी समस्त चेतना पूर्ण रूपसे मेरे हृदयमें केन्द्रित हो गयी है, जो न अब एक अंग है और न ही भावना, बल्कि जो दिव्य प्रेम है, निर्वैयक्तिक और सनातन; यह प्रेम बनकर, मैं समस्त भूतलपर सब वस्तुओंके केन्द्रमें निवास करती प्रतीत होती हूं और उसी समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अपनी विशाल और अनन्त बांहें फैला रही हूं और सब प्राणियोंको अपने हृदयके पास, जो विश्वसे भी बड़ा है, लाकर इकट्ठा करके, चिपटाकर एक असीम कोमलताके साथ उन्हें आवेष्टित कर रही हूं...शब्द बल-हीन और बेढंगे होते हैं, ओ दिव्य प्रभु, मानसिक उल्था सदा बालोचित होता है...किन्तु तेरी ओर मेरी अनवरत अभीप्सा रहती

है, सच पूछो तो प्रायः तू, केवल तू ही इस शरीरमें निवास करता है जो तेरी अभिव्यक्तिका एक अपूर्ण साधन है।

ऐसी कृपा कर कि सब प्राणी तेरी ज्योतिकी शान्तिमें प्रसन्नता प्राप्त करें!

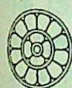
*



धरतीके आरम्भसे जब कभी, जहां कहीं चेतनाकी एक किरणको अभिव्यक्त करनेकी संभावना रही है, मैं वहां उपस्थित थी।

*

मैं तुम्हारे साथ हूं



मैं तुम्हारे साथ हूं क्योंकि मैं तुम हूं या तुम मैं हो। मैं तुम्हारे साथ हूं, इसके बहुत सारे अर्थ होते हैं, क्योंकि मैं सभी स्तरोंपर, सभी भूमिकाओंमें, परम चेतनासे लेकर अत्यन्त भौतिक चेतनातक तुम्हारे साथ हूं। यहां, पांडिचेरीमें, तुम मेरी चेतनाको अन्दर लिये बिना श्वास भी नहीं ले सकते। वह सूक्ष्म-भौतिकमें सारे वातावरणको लगभग भौतिक रूपमें भरे हुए है, और यहांसे दस किलोमीटर दूर झील तक ऐसा है। उसके आगे, मेरी चेतनाको भौतिक प्राणमें अनुभव किया जा सकता है, उसके बाद मानसिक स्तरपर तथा अन्य उच्चतर स्तरोंपर हर जगह। जब मैं यहा पहली बार आयी थी तो, मैंने भौतिक रूपसे दस किलो-मीटर नहीं, दस समुद्री मीलकी दूरीसे श्रीअरविंदके वातावरणका अनुभव किया था। वह एकदम अचानक, बहुत ठोस रूपमें, एक शुद्ध, प्रकाशमय, हल्का ऊपर उठानेवाला वातावरण था।

बहुत समय पहले, श्रीअरविंदने आश्रममें हर जगह यह अनुस्मारक

लगवा दिया था जिसे तुम सब जानते हो: "हमेशा ऐसे व्यवहार करो मानों माताजी तुम्हें देख रही है, क्योंकि, वास्तवमें, वे हमेशा उपस्थित हैं।"

यह केवल एक वचन नहीं है, कुछ शब्द नहीं हैं, यह एक तथ्य है। मैं तुम्हारे साथ बहुत ठोस रूपमें हूं और जिनमें सूक्ष्म दृष्टि है वे मुझे देख सकते हैं।

सामान्य रीतिसे मेरी 'शक्ति' हर जगह कार्यरत है, वह हमेशा तुम्हारी सत्ताके मनोवैज्ञानिक तत्त्वोंको इधर-उधर हटाती और नये रूपमें रखती तथा तुम्हारे सामने तुम्हारी चेतनाके नये-नये रूपोंको निरूपित करती रहती है ताकि तुम देख सको कि क्या-क्या बदलना, विकसित करना या त्यागना है।

उसके अलावा, मेरे और तुम्हारे बीच एक विशेष संबंध है, उन सबके साथ जो मेरी और श्रीअरविंदकी शिक्षाकी ओर मुड़े हैं — और, यह भली-भांति जानी हुई बात है कि इसमें दूरीका सवाल नहीं उठता, तुम फ्रांसमें हो सकते हो, दुनियाके दूसरे छोरपर हो सकते हो या पांडिचेरीमें हो सकते हो, यह संबंध हमेशा सच्चा और जीवित जाग्रत् होता है। और हर बार जब पुकार आती है, हर बार जब इसकी जरूरत हो कि मुझे पता लगे ताकि मैं एक शक्ति, कोई प्रेरणा या रक्षण या कोई और चीज भेजूं तो अचानक मेरे पास एक संदेश-सा आता है और मैं जो जरूरी होता है वह कर देती हूं। यह तो स्पष्ट है कि ये संदेश मेरे पास किसी भी समय पहुंचते रहते हैं, और तुमने कई बार मुझे अचानक किसी वाक्य या कामके बीच रुकते देखा होगा; यह इसलिये कि कोई चीज मेरे पास आती है, कोई संदेश आता है और मैं एकाग्र हो जाती हूं।

जिन लोगोंको मैंने शिष्य रूपमें स्वीकार लिया, जिन्हें "हां" कह दी है, उनके साथ संबंधसे बढ़कर कुछ और होता है। उनमें मेरा एक निर्गत अंश होता है। जब कभी जरूरत हो तो यह

निर्गत अंश मुझे चेतावनी देता है और मुझे बतलाता है कि क्या हो रहा है। वास्तवमें मुझे सारे समय सूचनाएं मिलती रहती हैं, परन्तु मेरी सक्रिय स्मृतिमें वे सब अंकित नहीं होतीं। तब तो मेरे अन्दर बाढ़ आ जायगी; भौतिक चेतना फिल्टर या छन्नेका काम करती है। चीजें एक सूक्ष्म स्तरपर अंकित होती हैं, वे वहां अप्रकट अवस्थामें रहती हैं, मानों कोई संगीत ध्वन्यांकित तो कर लिया गया हो पर बजाया न गया हो, और जब मुझे अपनी भौतिक चेतनामें कुछ जाननेकी जरूरत होती है, तो मैं इस सूक्ष्म भौतिक स्तरके साथ संपर्क जोड़ती हूं और रेकार्ड बजने लगता है। तब मैं देखती हूं कि चीजें कैसी हैं, उनका समयमें विकास और उनका वास्तविक परिणाम क्या है।

और अगर किसी कारणसे तुम मुझे चिट्ठी लिखो और मेरी सहायता मांगो, मैं उत्तर दूं मैं तुम्हारे साथ हूं, तो इसका मतलब यह है कि तुम्हारे साथकी संचार-व्यवस्था सक्रिय हो गयी है, तुम कुछ समयके लिये, जितने समयके लिये जरूरी हो, मेरी सक्रिय चेतनामें आ जाते हो।

और मेरे और तुम्हारे बीचका यह संबंध कभी नहीं टूटता। ऐसे लोग हैं जिन्होंने विद्रोहकी अवस्थामें बहुत पहले आश्रम छोड़ दिया था, और फिर भी मैं अपने-आपको उनके बारेमें अवगत रखती हूं, उनकी देखभाल करती हूं। तुम्हें कभी त्यागा नहीं जाता।

सच तो यह है कि मैं अपने-आपको हर एकके लिये जिम्मेदार मानती हूं, उनके लिये भी जिनसे मैं अपने जीवनमें बस निमिष मात्रके लिये मिली हूं।

यहां एक बात याद रखो। श्रीअरविंद और मैं एक ही हैं, एक ही चेतना हैं, एक और अभिन्न व्यक्ति हैं। हां, जब यह शक्ति या यह उपस्थिति, जो एक ही है, तुम्हारी वैयक्तिक चेतनामें-से गुजरती है, तो वह एक रूप, एक आभास धारण कर लेती है

जो तुम्हारे स्वभाव, तुम्हारी अभीप्सा, तुम्हारी आवश्यकता, तुम्हारी सत्ताके विशेष मोड़के अनुसार होता है। तुम्हारी वैयक्तिक चेतना, यह कहा जा सकता है, एक छन्ने या एक सूचककी तरह होती है जो अनन्त दिव्य संभावनाओंमेंसे एक संभावनाको चुनकर दृढ़ कर लेती है। वस्तुतः, भगवान् हर एक व्यक्तिको वही देते हैं जिसकी वह उनसे आशा करता है। अगर तुम यह मानते हो कि भगवान् बहुत दूर और क्रूर हैं, तो वे दूर और क्रूर होंगे, क्योंकि तुम्हारे परम कल्याणके लिये यह जरूरी होगा कि तुम भगवान्के कोपका अनुभव करो; कालीके पुजारियोंके लिये वे काली होंगे और भक्तोंके लिये 'परमानन्द'। और जिज्ञासुके लिये वे 'सर्वज्ञान' होंगे। मायावादियोंके लिये परात्पर 'निर्गुण ब्रह्म'; नास्तिकके साथ नास्तिक होंगे और प्रेमीके लिये प्रेम। जो उन्हें हर क्षण, हर गतिके आन्तरिक निदेशकके रूपमें अनुभव करते हैं उनके लिये वे बन्धु और सखा, हमेशा सहायता करनेके लिये तैयार, वफादार दोस्त रहेंगे। और अगर तुम यह मानो कि वे सब कुछ मिटा सकते हैं, तो वे तुम्हारे सभी दोषों, तुम्हारी सभी भ्रांतियोंको बिना थके, मिटा देंगे, और तुम हर क्षण उनकी अनन्त 'कृपा'का अनुभव कर सकोगे। वस्तुतः भगवान् वही हैं जिनकी तुम अपनी गहरी-से-गहरी अभीप्सामें आशा करते हो।

और जब तुम उस चेतनामें प्रवेश करते हो जहां तुम सभी चीजोंको एक ही दृष्टिमें देख सको, मनुष्य और भगवान्के बीच संबंधोंकी अनन्त बहुलताको देख सको, तो तुम देखते हो कि यह सब अपने ब्यौरोंमें कैसा अद्‌भुत है। अगर तुम मानवजातिके इतिहासको देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि मनुष्य जो समझे हैं, उन्होंने जिसकी इच्छा और आशा की है, जिसका स्वप्न लिया है, उसके अनुसार भगवान् कितने विकसित हुए हैं। वे किस तरह जड़वादीके साथ जड़वादी रहे हैं और हर रोज किस तरह बढ़ते जाते हैं और जैसे-जैसे मानव चेतना अपने-आपको विस्तृत करती है वे भी

दिन-प्रतिदिन निकटतर और अधिक प्रकाशमान होते जाते हैं। हर एक चुनाव करनेके लिये स्वतन्त्र है। सारे संसारके इतिहासमें मनुष्य और भगवान्के संबन्धकी इस अनन्त विविधताकी पूर्णता एक एक अकथनीय चमत्कार है। और यह सब मिलाकर भगवान्की समग्र अभिव्यक्तिके एक क्षणके समान है।

भगवान तुम्हारी अभीप्साके अनुसार तुम्हारे साथ हैं। स्वभावतः इसका यह अर्थ नहीं है कि वे तुम्हारी बाह्य प्रकृतिकी सनकोंके आगे झुकते हैं, —— यहां मैं तुम्हारी सत्ताके सत्यकी बात कह रही हूं। और फिर भी, कभी-कभी भगवान्, अपने-आपको तुम्हारी बाहरी अभीप्साके अनुसार गढ़ते हैं, और अगर तुम, भक्तोंकी तरह, बारी-बारीसे मिलन और विछोहमें, आनन्दकी पुलक और निराशामें रहते हो, तो भगवान् भी तुमसे, तुम्हारी मान्यताके अनुसार, बिछुड़ेंगे ओर मिलेंगे। इस भांति मनोवृत्ति, बाहरी मनोवृत्ति भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग यह नहीं जानते कि श्रद्धा कितनी महत्त्वपूर्ण है, श्रद्धा चमत्कार है, चमत्कारोंको जन्म देनवाली है। अगर तुम यह आशा करते हो कि हर क्षण तुम्हें ऊपर उठाया जाय और भगवान्की ओर खींचा जाय, तो वे तुम्हें उठाने आयेंगे और वे बहुत निकट, निकटतर, अधिकाधिक निकट होंगे।

*

"मेरे निकट होना"

वास्तवमें प्रभावशाली रूपसे सदा मेरे निकट रहनेके लिये तुम्हें अधिकाधिक सच्चा और निष्कपट, मेरे प्रति खुला और स्पष्टवादी होना चाहिये। समस्त कपटको उठा फेंको और यह निश्चय करो कि तुम ऐसा कुछ न करोगे जिसे तुम मुझे तुरन्त न बतला सको। केवल वही करो जो तुम मेरे आगे घबराये विना कर सकते हो,

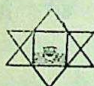
केवल वही बात कहो जिसे तुम मेरे आगे कठिनाईके बिना दोहरा सको।

बहुत सच्चे, निष्कपट और सीधे बनो, अपने अंदर किसी ऐसी बातको आसरा न दो जिसे तुम डरे बिना मुझे न दिखा सको, कोई ऐसा काम न करो जिसके लिये तुम्हें मेरे आगे लज्जित होना पड़े।

मेरे साथ संबंधमें बालककी तरह सीधे, सरल और सहज बननेकी कोशिश करो -- यह तुम्हें बहुत-सी मुश्किलोंसे बचायेगा।

सरल बनो,
खुश रहो,
शांत रहो,
अपना काम जितना अच्छा कर सको करो,
अपने-आपको हमेशा मेरी ओर खुला रखो —
तुमसे बस इसीकी मांग की जाती है।

श्रीअरविंद माताजीके विषयमें



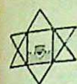
चैत्य सत्ताके माताजीके प्रति खुले रहनेसे कार्य या साधनाके लिये जो कुछ आवश्यक होता है वह सब धीरे-धीरे विकसित होता रहता है, यह एक रहस्य है, साधनाका केन्द्रीय रहस्य है।

*



वे ही माताजीके सबसे नजदीकी बच्चे हैं जो उनकी ओर खुले हुए हैं, उनकी आंतर सत्तामें उनके निकट हैं, उनकी इच्छाके साथ एक हो गये हैं — वे लोग नहीं जो शरीरसे उनके सबसे अधिक निकट हैं।

*



यदि किसीको निकट आंतरिक संबंध प्राप्त हो तो वह माताजीको सदैव अपने पास और अंदर तथा चारों ओर अनुभव करता है और उससे अधिक निकट भौतिक संबंधको उस संबंधकी खातिर ही प्राप्त करनेके लिये कतई आग्रह नहीं करता। जिन्हें यह प्राप्त नहीं उन्हें इसके लिये अभीप्सा करनी चाहिये और दूसरे प्रकारके संबंधके लिये लालायित नहीं होना चाहिये। यदि उन्हें बाह्य समीपता प्राप्त हो जाय तो उन्हें पता चलेगा कि आंतरिक एकता और समीपताके बिना उसका कुछ अर्थ नहीं। शरीरसे व्यक्ति माताजीके पास हो सकता है और फिर भी उनसे उतना दूर हो सकता है जितना सहराका मरुस्थल।

*



स्वभावतः ही, माताजी प्रत्येक साधकके अंदर साधना करती हैं — लेकिन यह साधकके उत्साह और ग्रहणशीलता-से सीमित होती है।

*



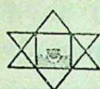
सब कुछ श्रीमांकी शक्तिकी क्रियाके द्वारा, जिसे तुम्हारी अभीप्सा, भक्ति और समर्पणकी सहायता प्राप्त हो, सिद्ध करना होगा।

*



सब कुछ अपने हृदयमें विराजमान श्रीमांके सामने रख दो जिसमें उनकी ज्योति अच्छे-से-अच्छे परिणाम लानेके लिये क्रिया कर सके।

*



नित्य स्मरणके द्वारा हमारी सत्ता पूर्ण उद्घाटनके लिये तैयार होती है। हृदयके खुल जानेपर श्रीमांकी उपस्थितिका अनुभव होना आरंभ हो जाता है और, ऊपरकी उनकी शक्तिकी ओर उद्घाटित हो जानेपर उच्चतर चेतनाकी शक्ति नीचे शरीरमें उतर आती है और वहां समूची प्रकृतिको बदल देनेके लिये कार्य करती है।

*



माताजीको स्मरण करो और यद्यपि शरीरसे तुम उनसे बहुत दूर हो, उनको अपने साथ अनुभव करनेका प्रयास करो और तुम्हारी आन्तर सत्ता जिस चीजको उनकी इच्छा बतलावे उसीके अनुसार कार्य करो। तब तुम अच्छी तरह उनकी और मेरी उपस्थितिका अनुभव कर सकोगे और एक संरक्षणके रूपमें अपने चारों ओर हमारे वातावरणको लिये रहोगे तथा स्थिरता और ज्योतिका एक राज्य सर्वत्र तुम्हारे साथ बना रहेगा।

*



माताजीकी शक्ति केवल ऊपर, सत्ताके शिखरपर ही नहीं है। वह तुम्हारे साथ और तुम्हारे पास भी है, जिस समय तुम्हारी प्रकृति उसे कार्य करने देगी उस समय कार्य करनेके लिये वह तैयार बैठी है। यहां प्रत्येक आदमीमें वह इसी प्रकार विद्यमान है।

*


हमेशा इस तरह रहो मानों तुम परात्पर प्रभु और भगवती माताकी आंखोंके एकदम नीचे हो। कोई ऐसा काम मत करो, कुछ भी ऐसा सोचने और अनुभव करनेकी चेष्टा मत करो जो भागवत उपस्थितिके लिये अनुपयुक्त हो।

*


माताजी दोनों तरीकोंसे देती हैं। आंखोंके द्वारा वे चैत्य पुरुषको देती हैं और हाथके द्वारा स्थूल सत्ताको।

*

प्रतिदिन प्रणामके समय माताजी जो हमें फूल देती हैं उसका क्या अर्थ है?


उसका अर्थ है उस चीजको उपलब्ध करनेमें सहायता देना जिसका सूचक वह फूल होता है।

*


दर्शन करनेका सबसे उत्तम तरीका है अपने-आपको खूब एकाग्र और अचंचल बनाये रखना तथा माताजी जो कुछ दें उसे ग्रहण करनेके लिये खुला रहना।

एक तरुण साधकका माताजी और श्रीअरविंदके साथ पत्र-व्यवहार

(कबूतरकी तस्वीरके बारेमें)

मैं तुम्हारे नामका पक्षी भेज रही हूं : शांति।

(१६ फरवरी, १९३३) —माताजी

बिल्लीका अर्थ है ग्रहणशीलता।

(२१ फरवरी, १९३३) —माताजी

जब हम किसीको स्वप्नमें देखते हैं, वह व्यक्ति स्वयं होता है या उसका प्राणमय आकार होता है?

मेरे ख्यालसे तुम्हारा मतलब है कि वह उसका सच्चा आकार होता है या प्राणिक स्तरपर कोई आकार होता है। सर्व-सामान्य बात कहना असंभव है। जितनी तरहके सपने होते हैं उतने ही अर्थ होते हैं।

(२२ फरवरी, १९३३) —माताजी

अगर आप स्वीकार करें तो मैं यह चाहूंगा कि आप एक पुर्जे पर अंग्रेजीमें यह लिख दें, "अनावश्यक बातें मत करो।" अगर कोई मेरे साथ अनावश्यक बातें करे तो मैं उसे वह दिखा दूंगा।

निरर्थक और व्यर्थकी बातोंमें रस न लो।

(२४ फरवरी, १९३३) —माताजी

लिफाफेके ऊपर जो पेलिकन जल-पक्षीका चित्र है वह निष्ठाका प्रतीक है।

(२५ फरवरी, १९३३) —माताजी

एक दिन प्राणने मुझसे एक प्रश्न पूछनेके लिये कहा : श्रीअरविंद-से पूछो कि माताजी कीमती और सुन्दर कपड़े क्यों पहनती हैं?

तो क्या तुम यह सोचते हो कि पृथ्वीपर भगवान् कुरूपता और दरिद्रताके प्रतिनिधित्वके रूपमें आयें?

मैंने उत्तर दिया कि इन कपड़ोंको बनाकर हम उनकी अच्छी-से-अच्छी सेवा कर सकते हैं। उत्तर स्पष्ट था, अतः प्राण कुछ कह नहीं पाया।

ऐसा लग सकता है कि मैंने प्रश्न पूछा और उसका उत्तर भी स्वयं मैंने ही दिया। लेकिन वह प्राण था जिसने प्रश्न किया और परम प्रभुने उसका उत्तर दिया।

प्राणने प्रश्न किया; लेकिन परम प्रभुने नहीं बल्कि, तुम्हारे अंदर-की संवेगात्मक सत्ताकी किसी चीजने उसका उत्तर दिया।

सौंदर्य परम प्रभुकी उतनी ही अभिव्यक्ति है जितना ज्ञान, शक्ति या आनन्द। कोई कभी यह पूछता है कि माताजी भागवत चेतना-को ज्ञान या शक्तिके द्वारा क्यों अभिव्यक्त करना चाहती हैं, अज्ञान और दौर्बल्यद्वारा क्यों नहीं? वह प्रश्न भी उसके जितना मूर्खता-पूर्ण और निरर्थक होगा जो प्राणने कलात्मक और सुन्दर कपड़ोंके पहननेके विरोधमें किया।

— श्रीअरविंद

(२७ फरवरी, १९३३)

यह भौतिक थकान है या फिर यह प्राणसे आ रही है?

संभवतः दोनोंका कुछ अंश है।

— माताजी

(१ मार्च, १९३३)

चूंकि आपने मुझसे कहा कि थकान प्राणसे भी आती है, अतः मेरे लिये बगीचेमें कार्य करना — चाहे मैं थक जाऊं : फिर भी — अधिक अच्छा नहीं है क्या ?

नहीं, तुम्हें बहुत थकना नहीं चाहिये। शायद अधिक अच्छा हो कि तुम एक ही बगीचेमें रहो।

मैं प्राणका विरोध करूंगा, मैं उसके साथ युद्ध करूंगा, मैं विजय प्राप्त करूंगा। एक दिन मैं सभी अंधकारमय शक्तियोंपर विजय पा लूंगा। भागवत कृपा मौजूद है। मैं भला क्यों डरूं ?

हां, तुम्हें डरना नहीं चाहिये, तुम्हें भागवत कृपापर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये। दूसरी चीज है पर्याप्त नींद — २४ घण्टोंमेंसे ७ घण्टे — और पर्याप्त भोजनके साथ अपने शरीरको पूरी तरहसे सन्तुलित रखना।

(२ मार्च, १९३३) —माताजी

एक प्रश्न मेरे अंदर उठा : माताजी उपस्थित हैं, अतः श्रीअरविंद जगत्में क्यों आये या वे पृथ्वीपर क्यों अभिव्यक्त हुए ?

कार्यके संपादनके लिये दोनोंको आना ही था — इससे भिन्न हो नहीं सकता था।

(३ मार्च, १९३३) —श्रीअरविंद

ऋषिवर बोले :

योग

आज कई बच्चे उत्तेजित दिखायी दे रहे थे। हर एक कुछ-न-कुछ कहनेके लिये आतुर था परंतु ऋषिवर अभीतक बाहर नहीं आये थे।

कुछ विद्यार्थी कलकत्तेसे लौटे थे और अपने अनुभव सुना रहे थे। एकने कहा, "ओह कलकत्ता क्या है गूलरका फल है। छोटा-सा फल हजारों बीज और सैंकड़ों भुनगे।"

मंजुला बोली, "अरे नहीं जी, मैंने एक बड़ी सुन्दर उपमा सुनी। किसीने कहा, तुम बसमें चढ़नेके लिये जाते हो उत्तम कुमार बनकर, बड़ी सजधज और ठाट-बाटके साथ। बसकी भीड़में घुसनेके लिये तुम्हें सबके आगे विनयके साथ हाथ जोड़ते हुए रामकृष्ण परमहंस बनना पड़ता है। एक बार अंदर घुस गये तो ऊर्ध्व बाहु चैतन्य महाप्रभुका भाव आ जाता है और नीचे उतरते-उतरते तुम दिगम्बर तैलंग स्वामी बन जाते हो।"

मंजुलाकी बात सुनकर सब ठहाके मारकर हंसने लगे। एक हूफ्रिश सबके चेहरे ताकती रही। यह लड़की अभी हालमें ईरानसे आयी है और यहांकी बहुतसी बातें नहीं समझती। पुनीतने सहानुभूति कुण्ड बनकर समझाया कि उत्तम कुमार बहुत बड़े अभिनेता हैं और बाकी तीन नामी योगी हैं।

हूफ्रिशने पूछा "योगी किसे कहते हैं?" कोई उत्तर दे उससे पहले पासके कमरेका दरवाजा खुला और ऋषिवर बाहर आये। यथा-योग्य अभिवादन आदिके बाद पुनीतने कहा "ऋषिवर, हूफ्रिश जानना चाहती है कि योगी किसे कहते हैं?"

"तो क्या कहा तुमने?" ऋषिवरने वात्सल्यपूर्ण प्रश्न किया।

पुनीत बोला, "मैं कहने ही वाला था कि योग करने वालेको योगी कहते हैं, फिर सोचा कि उसका अगला प्रश्न होगा और योग किसे कहते हैं इतनेमें आप आ गये, अब आप ही समझानेकी कृपा करें।"

ऋषिवरने कहा, "तुम लोग जिस वातावरणमें रहते हो वह योग-की लहरियोंसे भरा है इसलिये तुम्हारे आगे यह प्रश्न नहीं आता। लो मैं समझानेकी कोशिश करता हूं।"

मनुष्य और पशु, सभी खाते-पीते, सोते और मरते हैं। सुख मिले तो उन्हें अच्छा लगता है दुःख हो तो रोते कलपते हैं; कोई प्रकट रूपमें कोई अप्रकट रूपमें।

साधारण मनुष्यका जीवन अधकचरा, कुछ ठोस और कुछ अर्ध द्रव है। जिसमें बहुत ही असंयत विचार, दृष्टियां, संवेदन, भाव, काम-नाएं, रीति-रिवाजसे बंधे सुख-दुःख भरे रहते हैं। इन सबका केन्द्र होता है अहंकार।

नम्रताने यहीं टोक दिया। उसने कहा, "ऋषिवर हमने सुना है कि अहंकार तो हमारा दुश्मन है, उससे पिंड छुड़ाना हमारा परम धर्म है।"

ऋषिवर हंस पड़े, "भई चीजें इतनी आसान नहीं हैं। किसी भी बातका जंचा-तुला एक-सा उत्तर देना मुश्किल है। यह ठीक है कि हमें अहंकारसे पिंड छुड़ाना चाहिये लेकिन यह ऐसे ही है जैसे मकान बनानेसे पहले पाड़ या मंच बनाना पड़ता है, उसकी सहायतासे ही ऊपर चढ़ा जाता है और फिर मकान तैयार हो जाने-पर वह न केवल बेकार बल्कि अशोभन बन जाता है और काममें बाधा देता है। इसी तरह विकासकी एक अवस्थामें अहंकारके बिना काम ही नहीं चलता। मनुष्यके अंदर अच्छी-बुरी सभी चीजें अहंकारका सहारा लेकर ही खड़ी रहती हैं, उसीकी बैसाखीके सहारे चलती हैं। मनुष्यके सभी क्रिया-कलाप अहंकारके बलपर, उसीको केन्द्र बनाकर चलते हैं।

ये क्रिया-कलाप धीरे-धीरे इस जीवन और अगले जीवनमें प्रगति-का बीज बोते हैं, आदमीकी चेतनाको विकसित करते हैं, आदमी

इधर-उधर भटककर, यहां-वहां ठोकरें खाकर आखिर हारकर अपने सच्चे केन्द्रको, अपनी अन्तरात्माको पानेकी कोशिश करता है।

साधारण जीवन इसी ढर्रेपर चलता है। रोते-झींकते, हंसते-खेलते, मंथर गतिसे आदमीका आन्तरिक विकास होता जाता है, जैसा किसीने कहा है:

'कलसे बेहतर आज हो और आजसे बेहतर हो कल' लेकिन इसकी गति शायद कछुएसे भी धीमी होती है।

पुनीतमें धीमी गतिके लिये धीरज न था। वह बीचमें ही बोल पड़ा। "तो ऋषिवर इस गतिको तेज करनेका कोई उपाय नहीं है क्या?"

ऋषिवर उसकी उछल-कूद देखकर बड़े खुश होते हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "अरे यही तो मैं कहने वाला था, लेकिन जो धीरज धरे उसका नाम पुनीत नहीं। ले सुन, प्रकृति जिस कामको धीरे-धीरे करती है उसीको योग तेजीसे आगे बढ़ाता है।

स्वाभाविक विकास पर्देके पीछे, परिस्थितियोंकी चपेट खाकर, अंधेरेमें टटोलते हुए आगे बढ़ता है। योगमें यह केकड़ेकी-सी गति नहीं होती, चाल तेज हो जाती है, रास्ता साफ होता है और अन्तरात्माका प्रकाश हमें रास्ता दिखाता चलता है।

हमारा अन्तिम लक्ष्य तो कोई है ही नहीं, क्योंकि हम अनन्तमें यात्रा कर रहे हैं। देश और काल दोनोंमें ही उसका कहीं आदि और अन्त नहीं है लेकिन अपनी समझके अनुसार तुम अगले स्टेशनको या अगले जंकशनको अपना लक्ष्य मान सकते हो।

हमारा योग अभी यही चाहता है कि इस जीवनमें भगवान्के प्रकाशको हम ला सकें, मनुष्यका हर काम भगवान्के नेतृत्वमें हो, हम पूरी तरह भगवान्के हो जाएं और वे हमारे अंग प्रत्यंगमें बस जाएं, तब मानव जाति देव जाति बल्कि अतिमानव जाति बन जायगी, और आगेकी बात आगेवाले देखेंगे।

शायद आजके लिये इतना काफी है।

हमारा प्यारा नवजात

वह था प्रभुका पुत्र; उन्हींके
कार्य हेतु जगमें आया था
स्वर्णाभामय, सार्थक अतिशय
उसने धन्य जन्म पाया था।

रहा समर्पित उसका जीवन
उस महान् योगेश्वरके प्रति
जो था नव अवतार कृष्णका
जो था केशव-सखा, परम यति।

अपने पार्थिव सुखकी चिंता
उसके मनमें कभी न आई
रहा अहर्निश व्यस्त प्यार से
जब पुकार दी उसे सुनाई।
प्रभुवत् पुष्पित वह पुण्यात्मा
दिव्य-गंध-उच्छ्वसित प्राण-मन
जिया धरा पर प्रभु-कारज हित
कर्म और साहसका जीवन।

सदा शांतिसे दीप्त भाल था
मन सदैव शुभ-चिंतन तत्पर
वाणी मधुर हृदयहर सत्त्वर
प्रिय को सदा करे जो प्रियतर।
प्रभु निमित्त वह रहा कर्म-रत
कभी विराम न उसने चाहा

कभी न चिंता की विरोध की
कभी स्व-नाम न उसने चाहा।

सभी मित्र थे; शत्रु न कोई
वह था सबका संग-सहारा
प्रभु संकेतोंका संबल पा
उसने जीवन-सुकृत संवारा।

दूर काल-वश हम सबसे वह
फिर भी दीपित, अमर प्रभा-मय
सतत उषा-स्मिति सा वह प्रिय था
मांके दिव्य-दानका संचय।

—पूजालाल

अनु० प्रयाग नारायण त्रिपाठी

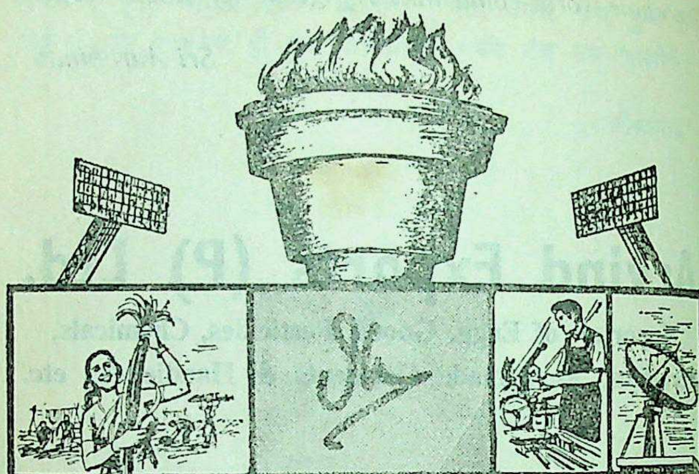
कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

— श्रीमाताजी



Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

Sri Aurobindo



सोसायटी समाचार

हमारी मद्रासकी शाखाने अपने सदस्योंके नाम एक विज्ञप्ति भेजी है जिसमें लिखा है 'जैसा कि सोसायटीके पिछले वार्षिक अधिवेशनमें निश्चय हुआ था, सभी सदस्योंके सम्मिलित ध्यानके लिये समय निश्चित किया जाना चाहिये। अभी यह ध्यान सवेरे और शाम पांच-पांच मिनटके लिये होगा। (६.३० से ६.३५ तक)। इस कार्यक्रमका आरंभ २९ मार्चसे हो गया है। पाठकोंको याद होगा कि यह माताजीके पहली बार भारत आनेका दिन है। हम आशा करते हैं कि इस समयके कार्यक्रम सम्मिलित रूपसे समन्वय और सामंजस्य लानेमें सहायक होंगे।

बेलोनामें सोसायटी केन्द्रने जो हस्पताल शुरू किया है उसमें डाक्टरोंने अपनी सेवाएं अर्पित की हैं।

लोनावडामें वहांके स्वाध्याय केन्द्रने सामान्य लोगोंको श्रीअरविंद और माताजीके आदर्शोंसे परिचित करानेके लिए कुछ आयोजन किये थे। सर्वश्री अम्बा प्रेमी और अश्विन कापड़ियाने भाषण दिये, आश्रमकी फिल्में दिखायी गयीं और, 'आदर्श बालक' नामक पुस्तक बांटी गयी।

लन्दनमें नवजातजीको श्रद्धांजलि अर्पित की गयी और डा० उपाध्यायने माताजी श्रीअरविंदकी शिक्षाओंके बारेमें भाषण दिया।

घोषणाएं

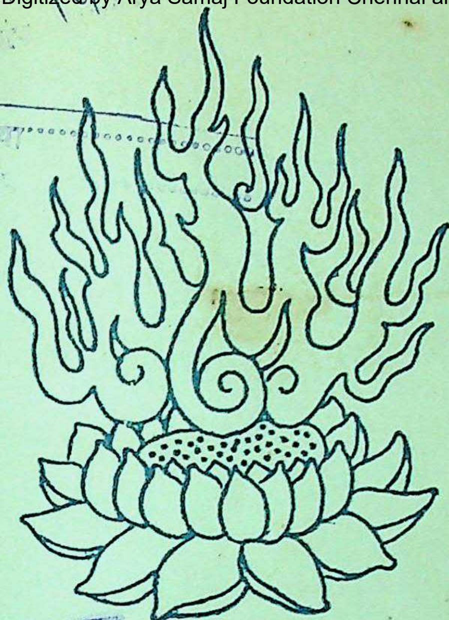
हमारी बड़ौदाकी शाखा नवम्बरमें 'सावित्री' नामक पुस्तकका प्रकाशन करना चाहती है। अधिकारी विद्वान् सावित्री विषयक लेख भेज सकते हैं।

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70

REGD. No. M. 8731

हम्पी (कर्णाटक) में हमारा केन्द्र आश्रम शिक्षा पद्धतिका अनुसरण करते हुए एक स्कूल चला रहा है। अभी वहां १२ बच्चे और पांच अध्यापक ह[illegible]न आश्रमके पढ़े हुए हैं। उन्हें कुछ और अध्यापकोंकी जरूरत है। जिन्हें रस हो वे श्रीअरविंद फाउंडेशन, द्वारा श्रीअविनाश ग्राम, आनेगुण्डी, जिला रायचूर ५२३२४६ को लिखें।

देश विदेशसे नवजातजीके भाषणके ध्वन्यांकित फीतोंकी मांग आ रही है। जिनके पास उनके भाषणोंके फीते हों वे उनकी एक प्रति करवा कर पांडिचेरीमें सोसायटीके मुख्यालयको भेज दें। नवजातजीके बारेमें बहुतोंके पास बड़े सुन्दर संस्मरण होंगे। अभी उनके प्रकाशनकी योजना तो नहीं है पर उन्हें सुरक्षित रखने पर जोर है। आपके पास ऐसी जो भी चीजें हों उन्हें सेक्रेटरी श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी ६०५००२ के नाम लिख भेजें।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

'गीता विशेषांक' (१)

जून १९८३ वर्ष १३, अंक ११, पूर्णांक १५५

विषय-सूची

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादकीय :

दूसरी गङ्गा

पतितपावनी गङ्गा जिस दिन स्वर्गसे विद्युत् गतिसे हजारों झंझाओं-के नाद करती हुई उतरी थी उस दिन धरित्री उस लोमहर्षक अनुभूतिसे कांप-कांप उठी होगी। हजारों अदृश्य कंठ भगीरथके साथ गङ्गाके स्तवनमें आन मिले होंगे। नक्षत्र और आकाश स्तब्ध हो-कर उस परम पुनीत दृश्यको एकटक निहार रहे होंगे। दिग्-दिगन्त शक्ति-पुञ्ज शिवके अट्टहास्यसे सिहर उठे होंगे।

वैसी एक गङ्गाका अवतरण तब हुआ जब पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके मुखसे आध्यात्मिक जगत्में गीताका दिव्य आगमन हुआ किंतु इस गङ्गाके आगमनको अर्जुनके सिवा कोई न देख या सुन सका। अदृश्य जगत्में उस समय भी उल्कापात हुआ था। देवकिन्नर शायद अदृश्य रूपसे खड़े सुन रहे थे पर भाग्यवान् मानव था केवल पार्थ।

श्रीअरविंद कहते हैं कि गीता एक ऐसा अथाह सागर है जिसमें से हमारी सन्ततियां युगोंतक अध्यात्म रत्न प्राप्त करती रहेंगी। उसकी ऐसी टीका पाना असंभव है जिसके बाद कहा जा सके — अब कहनेको नहीं कुछ बाकी।

किंतु 'गीताका धर्म' और 'गीता-प्रबन्ध' पढ़नेके बाद . . .

— अनुवेन

*

दैनन्दिनी

जून

१. जड़ बनकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना और कहना अगर मेरे अंदर श्रद्धा आनी होगी तो आ जायगी, भगवान् मुझे श्रद्धा दे देंगे — यह तो आलस्य है, निश्चेतना और बुरी भावना है।

२. तुम जिन भूलोंसे पिंड छुड़ाना चाहते हो उन भूलोंकी, जो चीजें आगे बढ़नेसे रोकती हैं उनकी और रास्तेको अंधेरा बनानेवाली जो चीजें हैं, उनकी आहुति देनी होगी।

३. तुम्हें अपनी श्रद्धापर उस तरह नजर रखनी चाहिए जैसे कोई बहुत ही ज्यादा कीमती चीजके पैदा होनेपर नजर रखता है, और जो भी चीज उसे नुकसान पहुंचा सके उससे बचाना होगा।

४. तुम्हारे अंदर चाहे जितनी श्रद्धा क्यों न हो, तुम्हें भगवान्की कृपापर चाहे जितना विश्वास क्यों न हो, सभी हालतोंमें जीवनके पग-पगपर उसे काम करते हुए देखनेकी तुम्हारी योग्यता चाहे जितनी क्यों न हो, तुम कभी उसके विशाल और आश्चर्यजनक कामको न समझ पाओगे। यह न समझ पाओगे कि वह काम कैसे ठीक-ठीक जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा ही होता है।

५. तुम कभी न समझ पाओगे कि भगवान्की कृपा सब कुछ करती है, वह हर चीजके पीछे है, हर चीजकी व्यवस्था करती है।

६. जैसे ही उसके साथ तुम्हारा नाता जुड़ता है तो कालमें एक सेकेंड भी ऐसा नहीं होता, स्थानमें सूईकी नोक बराबर जगह नहीं रहती, जो तुम्हें भगवान्की कृपाकी झलक न दिखाये, जो सारे समय कृपाकी सहायताकी झांकी न दिखाये।

७. तुम्हारे अंदर एक तरहकी नम्रता होनी चाहिए जो तुम्हें यह महसूस करवाये कि भगवान्की कृपाके बिना तुम असहाय हो, उसके बिना सचमुच तुम अधूरे और निर्बल हो।

८. अगर तुम यह जान जाओ कि खाली भागवत कृपा ही तुम्हें मुश्किलमेंसे खींच सकती है. उसमेंसे निकलनेका तरीका बता सकती है और उसके लिए बल दे सकती है तो अपने-आप ही तुम्हारे अंदर एक अभीप्सा जागेगी, तुम भगवान्की ओर खुल सकोगे।

९. लेकिन तकलीफसे छूट जाओ, कठिनाईमेंसे बाहर आ जाओ तो यह न भूलो कि तुम्हें भगवान्ने उसमेंसे निकाला है, यह न सोचो कि यह तुम्हारी अपनी करनी है। यह सचमुच जरूरी बात है।

१०. अगर तुम सच्ची दिव्य सत्ताओंको लो तो उनके लिए पूजाकी कोई कीमत नहीं होती, उन्हें वह पसंद नहीं आती। नहीं, इससे उन्हें कोई खास खुशी नहीं होती। उदाहरणके लिए, अगर वे एक अच्छा इरादा देखें या अच्छी भावना या निःस्वार्थ गति, उत्साह, आनंद, आध्यात्मिक आनंद देखें तो उनके लिए इन चीजोंकी कीमत बहुत ज्यादा होती है, प्रार्थना पूजा आदिसे ज्यादा।

११. केवल भगवान्में हम वह सब पायेंगे जिसकी हमें जरूरत है।

१२. केवल भगवान् ही पूर्ण सुरक्षा दे सकते हैं।

१३. जो भी करो, भगवान्को सदा याद रखो।

१४. प्रत्येक हृदयमें 'भगवान्की उपस्थिति' भविष्यकी ओर संभव पूर्णताओंकी प्रतिज्ञा है।

१५. हम केवल भगवान्में ही संपूर्ण शांति ओर पूर्ण संतोष पा सकते हैं।

१६. चीजोंकी सतहके पीछे पूर्ण चेतनाका सागर है जिसमें हम हमेशा डुबकी लगा सकते हैं।

१७. सत्यको पानेके लिए धरतीको छोड़नेकी जरूरत नहीं, अपनी अंतरात्माको पानेके लिए जीवनका त्याग आवश्यक नहीं।

१८. भगवान्के साथ संबंध जोड़नेके लिए संसारका त्याग या सीमित मत रखना जरूरी नहीं है।

१९. भगवान् सब जगह हैं, हर वस्तुमें हैं और यदि वे छिपे हुए हैं तो इसलिए कि हम उन्हें ढूंढ़नेका कष्ट नहीं उठाते।

२०. मात्र सच्ची अभीप्साद्वारा हम अपने अंदरका मुहरबंद द्वार खोल सकते हैं और पा सकते हैं . . . वह कोई चीज जो जीवनकी सारी सार्थकताको बदल देगी, हमारे सारे प्रश्नोंका उत्तर दे देगी, सारी समस्याओंको हल कर देगी।

२१. अभीप्सा हमें उस पूर्णता और सद्वस्तुतक ले जायेगी जिसके लिए हम अनजाने अभीप्सा करते हैं।

२२. मनुष्यकी चेतना ऐसा अज्ञान है जो ज्ञानकी ओर बढ़नेके लिए संघर्ष कर रहा है, वह एक दुर्बलता है जो स्वयंको शक्तिके लिए प्रशिक्षित कर रही है, वह हर्ष और दुःख-दर्दकी वस्तु है जो सत्ताके सच्चे आनंदकी ओर हाथ बढ़ा रही है।

२३. हम इस भौतिक जगत्में, अपने अंदर और चारों तरफ जो कुछ देखते हैं वह शाश्वत और अनंतकी गुह्य लीला है।

२४. हृदयकी नीरवतामें अभीप्साकी निष्कंप ज्वाला जलती है।

२५. अग्निको अनवरत जलने दो और शांतिसे निश्चित परिणामकी प्रतीक्षा करो।

२६. अभीप्साकी ज्वाला ऐसी ज्वाला है जो प्रकाश देती है पर कभी जलाती नहीं।

२७. पूर्ण और ऐकांतिक अभीप्सा निश्चय ही भगवान्का उत्तर लायेगी।

२८. अपने अंदर शक्तिकी खोज करो, उसे सामने ले आओ। तब तुम देखोगे कि तुम जो कुछ भी करते हो वह तुम नहीं कर रहे हो, वही शक्ति कर रही है।

२९. प्रभु ही हर चीजको सत्ताकी गहराइयोंमें गति देते हैं, उनकी इच्छा निर्देशन करती है, उनकी शक्ति कार्य करती है।

३०. प्रत्येक और हर कार्य अपने अंदर अपना फल और परिणाम लिए रहता है।

(श्रीमातृवाणीसे)

गीताका धर्म

जिन लोगोंने मन लगाकर गीता पढ़ी है उनके मनमें यह प्रश्न उठा होगा कि भगवान् श्रीकृष्णने जिस योग शब्दका उपयोग किया है और जिस युक्तावस्थाका वर्णन किया है वह उस चीजसे मेल नहीं खाता जिसे जनसाधारण योग कहते हैं, श्रीकृष्णने जगह-जगह संन्यासकी प्रशंसा की है और अनिर्देश्य परब्रह्मकी उपासनाकी ओर निर्देश किया है परंतु उनकी बात बहुत संक्षेपमें कह कर, गीताका अधिकतर भाग त्यागके महत्त्व और वासुदेवके प्रति श्रद्धा रखने और उनके प्रति आत्मसमर्पणकी परम अवस्थाके विविध उपाय अर्जुनको समझानेमें लगाया है। छठे अध्यायमें राजयोगका कुछ वर्णन है किंतु गीताको राजयोगका ग्रंथ नहीं कहा जा सकता। समता, अनासक्ति, कर्मफलत्याग, श्रीकृष्णके प्रति संपूर्ण आत्म-समर्पण, निष्काम कर्म, गुणोंके परे जाना और स्वधर्म सेवा, यही गीताके मूल तत्त्व हैं। भगवान्ने इसी शिक्षाको परम ज्ञान और गूढ़तम रहस्य कहा है। हमें विश्वास है कि गीता ही जगत्के भावी धर्मका ऐसा ग्रंथ है जिस-पर सब लोग सहमत हों। परंतु सब लोग गीताका स्वाभाविक अर्थ नहीं समझ पाते। बड़े-बड़े पंडित और श्रेष्ठ मेधावी, तीक्ष्ण बुद्धि-वाले लेखक भी इसका गूढ़ अर्थ समझनेकी क्षमता नहीं रखते। एक ओर मोक्ष चाहने वाले भाष्यकार गीतामें अद्वैतवाद और संन्यास धर्मकी श्रेष्ठता पाते हैं। और दूसरी ओर अंग्रेज दर्शनमें पगे हुए वंकिम चन्द्र गीतामें केवल वीर भावसे कर्तव्य पालनका उपदेश पाते हैं और उन्होंने यही अर्थ तरुणोंके हृदयमें घुसानेका प्रयास किया है। इसमें संदेह नहीं कि संन्यास धर्म श्रेष्ठ धर्म है लेकिन इस धर्मका पालन अधिक लोग नहीं कर पाते। सार्वजनिक धर्म, जो सबको मान्य हो उसका आदर्श और उसकी तत्त्व शिक्षाके लिए यह आवश्यक है कि जनसाधारण उसे अपने निजी जीवन और अपने कर्मक्षेत्रमें सिद्ध कर

सके और साथ ही पूरी तरह उस आदर्शको आचरणमें लानेपर लोग परम गतिको पा सकें, जो कुछ ही लोग पा सकते हैं। वीर भावसे कर्तव्य पालन करना उत्कृष्ट धर्म तो है परंतु कर्तव्य क्या है इसी जटिल प्रश्नको लेकर धर्म और नीतिमें बड़ी धांधली मची है। भगवान्ने कहा है **गहना कर्मणो गतिः** — क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य, क्या कर्म है, क्या अकर्म और क्या विकर्म, इसका निर्णय करनेमें तो ज्ञानी लोग भी चकरा जाते हैं। लेकिन मैं तुम्हें ऐसा ज्ञान दूंगा जिससे तुम्हें अपने लक्ष्यका निर्णय करनेमें कोई कठिनाई न होगी, कर्म जीवनका लक्ष्य है और जिस नियमका हमेशा पालन करना है वह एक ही बातमें स्पष्ट हो जायगा। यह ज्ञान क्या है? यह लाख बातोंकी एक बात क्या है और कहां मिलेगी? हमें विश्वास है कि गीताके अंतिम अध्यायमें जहां भगवान्ने अपना गुह्यतम परम कर्तव्य बतलानेका वचन दिया है वही खोजनेसे यह दुर्लभ अमूल्य वस्तु मिल सकेगी। वह परम गुह्य वस्तु क्या है?

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

इन दो श्लोकोंका अर्थ एक ही शब्दमें किया जा सकता है और वह है 'आत्म-समर्पण'। जो भगवान् कृष्णके प्रति जितना आत्म-समर्पण कर पाते हैं उनके शरीरमें उसी अनुपातमें भागवत शक्ति आकर उन्हें परम मंगलमय प्रसादसे पापमुक्त करके देवभाव प्रदान करती है। श्लोकके पहले भागमें उसी आत्म-समर्पणका वर्णन किया गया है। तन्मना, तद्भक्त और तद्याजी होना होगा। तन्मनाका मतलब है सभी जड़ चेतनमें उनके दर्शन करना, सदा उन्हींका स्मरण करना, सभी कार्यों और घटनाओंमें उनकी शक्ति, उनके ज्ञान और प्रेमकी लीलाको देखते हुए परम आनंदमें रहना। तद्भक्तका

अर्थ हुआ उनपर पूरी श्रद्धा और प्रीति रखते हुए उनके साथ एक होकर रहना। तद्याजीका मतलब हुआ, अपने छोटे-बड़े सभी कर्मोंकी श्रीकृष्णके प्रति यज्ञके रूपमें अर्पित करना और स्वार्थ तथा कर्मफलकी आसक्ति छोड़कर उन्हींके लिए कर्तव्य कर्ममें लगे रहना। मनुष्यके लिए पूरा-पूरा आत्म-समर्पण करना कठिन है, लेकिन थोड़ा-सा भी प्रयास किया जायं तो भगवान् अभय दान देकर गुरु, रक्षक और सुहृद्के रूपमें योगमार्गपर आगे बढ़ाते हैं। **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।** उन्होंने कहा है कि इस धर्मका पालन करना सहज और सुखद है। वास्तवमें ऐसा ही है। अगर पूरी तरहसे आचरण किया जाय तो उसका फल होता है अनिर्वचनीय आनंद, शुद्धि और शक्तिकी प्राप्ति। मामेवैष्यसिका मतलब है मुझे प्राप्त करोगे, मेरे साथ निवास करोगे, मेरी प्रकृतिको प्राप्त करोगे। उनकी इस बातमें सादृश्य, सालोक्य और सायुज्य फलकी बात आ गयी। जो गुणातीत है वही भगवान्का सादृश्य पाते हैं। उनमें कोई आसक्ति नहीं रहती फिर भी वे कर्म करते हैं, पापमुक्त होकर महाशक्तिके आधार बन जाते और इस शक्तिके सभी कार्योंमें आनंद लेते हैं। सालोक्य भी केवल शरीर छोड़नेके बादकी गति नहीं है, इस शरीरमें भी सालोक्य गति प्राप्त हो सकती है। शरीरमें रहता हुआ जीव जब अपने अंतरमें परमेश्वरके साथ खेल करता है, मन उनके दिये ज्ञानसे पुलकित होता है, हृदय जब उनके प्रेमके स्पर्शसे आनंद-विभोर होता है, बुद्धि जब बार-बार उनकी वाणी सुनती है और प्रत्येक विचारमें उन्हींकी प्रेरणाका अनुभव करती है तभी मानव शरीरमें रहते हुए भगवान्के साथ सालोक्य प्राप्त होता है। सायुज्य भी इसी शरीरमें होता है। गीतामें भगवान्के अंदर निवास करनेकी बात कही गयी है। जब यह उपलब्धि स्थायी हो जाय कि 'सब जीवोंमें वही है' तब इन्द्रियां उन्हींका दर्शन, श्रवण करती हैं। उन्हींको सूंघती, चखती और छूती हैं, जीव हमेशा उन्हींके एक अंशरूपमें जीनेका अभ्यस्त हो जाता है। तब इसी शरीरमें सायुज्य-

प्राप्ति होती है। यह परम गति, परम चिन्तन, मननका फल है। लेकिन इस धर्मपर थोड़ा सा भी आचरण किया जाय तो महान् शक्ति, निर्मल आनंद, पूर्ण सुख और शुद्धिकी प्राप्ति होती है। यह धर्म विशेष गुणवाले लोगोंके लिए नहीं है। भगवान्ने कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष यहां तक कि पापयोनिमें पड़े सभी जीवतक इस धर्मद्वारा उन्हें पा सकते हैं। थोड़े ही समयमें पापी भी उनकी शरणमें आकर शुद्ध हो जाते हैं। इस धर्मपर सब चल सकते हैं। जगन्नाथके मंदिरमें जात-पांतका विचार नहीं होता। फिर भी इसकी परमगति किसी भी धर्मद्वारा प्राप्त परम अवस्थासे कम नहीं होती।

संन्यास और त्याग

पिछले लेखमें हम कह आये हैं कि श्रीकृष्णके धर्मपर सभी लोग चल सकते हैं, गीतामें बतलाये गये योगपर सभीका अधिकार है और उस धर्मकी परम अवस्था अन्य किसी भी धर्मकी परम अवस्थासे कम नहीं है। गीताका धर्म निष्काम कर्म करनेवालेका धर्म है। हमारे देशमें आर्यधर्मके पुनरुत्थानके साथ-ही-साथ एक संन्यासमुखी स्रोत चारों ओर फैल रहा है। राजयोगके साधकका मन सहज रूपमें घरके कामकाज या गृहस्थ बनकर रहनेसे संतुष्ट नहीं रहना चाहता। उसके अभ्यासके लिए बड़े परिश्रमके साथ ध्यान, धारणा आदिकी जरूरत है। मनमें जरा भी विक्षोभ या बाहरी स्पर्श हो तो ध्यान धारणाकी स्थिरता विचलित हो जाती है या उसका एकदम विनाश हो जाता है। घरमें इस तरहकी बहुत बाधाएं होती हैं। अतः जो लोग अपने पिछले जन्मसे ही योगके लिए इच्छा लेकर जन्मे हैं उनके लिए यह स्वाभाविक है कि वे तरुण अवस्थामें ही संन्यासकी ओर आकर्षित हों। इस भांति जब देशमें इस तरह

जन्मसे ही योगकी इच्छा लेकर पैदा होनेवालोंकी संख्या बढ़ जाय तब वह शक्ति देशभरमें फैल जाती है और देशके युवा वर्गमें संन्यासी होनेकी प्रवृत्ति प्रबल रूपसे दिखायी देती है, देशके कल्याण मार्गका रास्ता भी खुल जाता है और उसके साथ ही विपक्षकी आशंका भी बढ़ जाती है। कहा गया है कि संन्यास धर्म उत्कृष्ट धर्म है लेकिन इस धर्मके अधिकारी कम ही होते हैं। जो लोग अधिकारके बिना ही इस पथपर चल पड़ते हैं वे कुछ दूर आगे बढ़कर आधे रास्तेमें ही तामसिक निष्क्रियताके आनंदके अधीन होकर निवृत्त हो जाते हैं। इस अवस्थामें यह जीवन तो सुखसे कट जाता है लेकिन इससे जगत्का कोई हित नहीं होता और योगके सबसे ऊंचे सोपान-तक चढ़ना बहुत मुश्किल हो उठता है। हम लोग जिस काल और अवस्थामें हैं उसमें रज और सत्वको जगाना अर्थात् क्रिया-शीलता और ज्ञानको जगाना और तमका निषेध करते हुए देशसेवा और जगत्सेवामें जातिकी आध्यात्मिक शक्ति और उसके नैतिक बलको नया जन्म देना ही हमारा प्रधान कर्तव्य है। इस जीर्ण, शीर्ण, तमःपीड़ित, स्वार्थकी सीमामें बंधी आर्यजातिके गर्भमेंसे ज्ञानी, शक्ति-मान, उदार आर्यजातिको फिरसे जन्म लेना होगा। इसी उद्देश्यको पूरा करनेके लिए भारतवर्ष[1]में इतने विशिष्ट शक्तिवाले, योगबलसे संपन्न जीवोंका जन्म हो रहा है। अगर ये लोग संन्यासकी मोहिनी शक्तिसे आकर्षित होकर स्वधर्म त्याग कर, ईश्वरके द्वारा सौंपे हुए कर्मको त्याग दें तो धर्मनाश और जातिका विध्वंस हो जायगा।

---

[1] यहांपर मूल बंगलामें 'बंग देश' कहा गया है। परंतु प्रथम हिंदी अनुवाद करते समय श्री मदन गोपाल गाड़ोदियाके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीअरविंदने कहा था कि जब मैंने यह लिखा था तब मेरा कार्यक्षेत्र बंगालमें ही था इसलिए मैंने बंगाल कहा है। इस और इस जैसे अन्य स्थलोंपर अनुवाद करते समय बंगालकी जगह भारत कर दिया जाय। —अनु०

तरुणोंको याद रखना चाहिए कि ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा और चरित्र गठनके लिए निर्धारित है। इस आश्रमके बाद गृहस्थाश्रमका विधान है। जब हम कुल रक्षा और भावी आर्य जातिका गठन करके पुराणोंके ऋणसे उऋण हो जायेंगे, जब सत्कर्म और धन संचय करके समाजका ऋण, ज्ञान, दया तथा प्रेम और शक्ति बांटकर जगत्का ऋण चुका देंगे, जब भारत जननीके हितके लिए उदार और महान् कर्म करके जगत् माताको संतुष्ट कर लेंगे तब वानप्रस्थ और संन्यास ग्रहण करना दोषपूर्ण न माना जायगा। ऐसा न किया जाय तो धर्मसंकर और अधर्मकी वृद्धि होगी। हम उन बाल संन्यासियोंकी बात नहीं कर रहे जो पूर्वजन्ममें ही ऋण-मुक्त हो चुके परंतु अधिकारके बिना संन्यास लेना निन्दायोग्य है। अनुचित वैराग्यकी अधिकता और क्षत्रियोंकी अपनी धर्मको त्यागनेकी वृत्तिके कारण महान् और उदार बौद्धधर्मने जहां देशका बहुत कुछ भला किया वहां अनिष्ट भी किया और अंतमें भारतसे निकाल बाहर कर दिया गया। नवयुगके नवीन धर्ममें ऐसा दोष न घुसने पाये।

गीतामें श्रीकृष्णने अर्जुनको बार-बार संन्यासका आचरण करनेसे क्यों मना किया है? उन्होंने संन्यास धर्मके गुण स्वीकार किये हैं किंतु वैराग्य और करुणाके वश पार्थके बार-बार मांग करनेपर भी अपने कर्म मार्गके आदेशको वापिस नहीं लिया। अर्जुनने पूछा, यदि कर्मकी अपेक्षा कामनारहित, योगयुक्त बुद्धि ज्यादा अच्छी है तो आप मुझे गुरुजनोंकी हत्या जैसे अति भीषण कार्य करनेका आदेश क्यों दे रहे हैं? बहुत लोगोंने अर्जुनके इस प्रश्नको बार-बार उठाया है। यहां तक कि कुछ लोग तो श्रीकृष्णको निकृष्ट धर्मोपदेशक और कुपथ दिखानेवाला कहनेसे भी बाज नहीं आय। अर्जुनके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णने समझाया कि संन्याससे त्याग ज्यादा अच्छा है। मनमाना आचरण करनेसे भगवान्को याद करते हुए निष्काम भावसे स्वधर्मका पालन करना श्रेष्ठ है। त्यागका अर्थ

है कामनाका त्याग, स्वार्थका त्याग। उस त्यागकी शिक्षाके लिये पर्वत या निर्जन स्थानोंकी शरण लेनेकी जरूरत नहीं। वह शिक्षा कर्मद्वारा कर्मक्षेत्रमें ही मिलती है। कर्म ही योग-मार्गपर चलनेका साधन है। यह विचित्र लीलामय जगत् जीवके आनंद-के लिए बना है। भगवान्का यह उद्देश्य नहीं है कि यह आनंदमय खेल समाप्त हो जाय। वे जीवको अपना सखा और खेलका साथी बनाकर जगतमें आनंदका स्रोत बहाना चाहते है। खेलकी सुविधाके लिए वे हमसे दूर चले गये हैं और इसी कारण जगत् अंधकारसे घिरा रहता है। उनके बतलाये हुए ऐसे अनेक उपाय हैं जिनका सहारा लेकर अंधकारसे छुटकारा मिल सकता है और भगवान्के निकट आया जा सकता है। जो लोग उनकी लीलासे विरक्त होते या विश्राम चाहते हैं वे उनकी अभिलाषा पूरी कर देते हैं। उन्हें भगवान् इहलोक और परलोकमें अपने खेलका साथी बनाते हैं। अर्जुन श्रीकृष्णके प्रियतम सखा और खेलके साथी थे इसीलिये उन्हें गीताकी गूढ़तम शिक्षा समझानेका इससे पहले भी प्रयास किया है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि कर्मसंन्यास जगत्के लिए हानिकर है और त्यागहीन संन्यास केवल छलना। संन्याससे जो फल मिलता है त्यागसे भी वही फल प्राप्त होता है अर्थात् अज्ञानसे मुक्ति, समता, शक्तिलाभ, आनंद और श्रीकृष्णकी प्राप्ति। सर्वमान्य लोग जो कुछ करते हैं, सामान्य लोग उसीको आदर्श मानकर उसीके अनुसार चलते हैं अतः अगर तुम कर्मसे संन्यास ले लोगे तो सभी उसी पथके पथिक होकर धर्मकी संकरता और अधर्मकी प्रधानता पैदा करेंगे। तुम कर्मफलकी इच्छा छोड़कर मनुष्यके साधारण धर्मका आचरण करो। आदर्शस्वरूप होकर सभीको अपने-अपने कर्मपथपर आगे बढ़नेकी प्रेरणा दो, ऐसा करनेसे तुम मेरे साधर्म्यको प्राप्त करोगे और मेरे प्रियतम सुहृद् बनोगे। इसके बाद उन्होंने बतलाया कि इस कर्मद्वारा श्रेयमार्ग-पर चलते हुए उस मार्गकी चरम अवस्था शम या सर्वारंभ

परित्याग (अपनी ओर से आरंभ न करके भगवान्‌पर ही छोड़ना) की बात कही गयी है। यह भी कर्मसंन्यास नहीं बल्कि अहंकारका त्याग है। यह बहुत प्रयासके साथ किये गये राजसिक कर्मका त्याग और भगवान्‌के साथ एक होकर गुणोंके परे जाना और भगवान्‌की शक्तिसे चलनेवाले उनके यंत्रकी तरह बन काम करना है। उस अवस्थामें जीवको यह स्थायी ज्ञान प्राप्त रहता है कि मैं कर्ता नहीं हूं, मैं द्रष्टा हूं, भगवान्‌का एक अंश हूं। मेरे स्वभावसे बने इस शरीर-रूपकर्मके आधारमें भगवान्‌की शक्ति ही लीलाका काम कर रही है। जीव केवल साक्षी और भोक्ता है, प्रकृति कर्ता है और भगवान् है स्वीकृति देनेवाले। ऐसे ज्ञानी पुरुष शक्तिके किसी भी कार्यके आरंभमें कामनाद्वारा सहायता या बाधा देना पसंद नहीं करते। शक्तिके अधीन होकर उसके देह, मन और बुद्धि ईश्वरके आदेशके अनुसार ही कर्ममें लगते हैं। यदि कुरुक्षेत्रके भीषण हत्याकांडके लिए भगवान्‌की अनुमति हो और वही स्वधर्ममें आये तो निर्लिप्त बुद्धिसे कामनारहित होकर ज्ञानी पुरुषको उसमें भी पाप नहीं छू जाता। लेकिन इस ज्ञान और आदर्शको बहुत कम लोग ही पा सकते हैं। यह जनसाधारणका धर्म नहीं बन सकता। तब फिर इस मार्गके साधारण पथिकका कर्तव्यकर्म क्या है? साधारण मनष्य भी एक परिमाणमें यह ज्ञान पा सकता है कि भगवान् यंत्रचालक हैं और मैं यंत्र। साधारण आदमीके लिए यही आदेश है कि वह इस ज्ञानके बलपर भगवान्‌को याद करते हुए स्वधर्मका पालन करे।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥

स्वभावके अनुसार नियत कर्म ही स्वधर्म है। कालगतिमें ही स्वभावकी अभिव्यक्ति और परिणति होती है। कालगतिमें मनुष्यका जो साधारण स्वभाव बनता है वह स्वभावद्वारा नियत कर्म युगधर्म है। जातिकी कर्म-गतिसे जो स्वभाव बनता है वह स्वभावसे नियत

कर्म जातिका धर्म है। साधारण धार्मिकोंके लिये यही धर्म स्वधर्म है। ब्रह्मचर्यावस्थामें इसी धर्मका पालन करनेके लिए शक्ति-संचय किया जाता है, गृहस्थाश्रममें इस धर्मका पूरा अनुष्ठान होता है और धर्मका पूरा अनुष्ठान होनेपर वानप्रस्थ या संन्यासपर अधिकार प्राप्त होता है। यही है धर्मकी सनातन गति।

विश्वरूप दर्शन

गीताका विश्वरूप

हमारे श्रद्धेय बन्धु विपिन चन्द्रपाल अपने लेख 'वन्दे मातरम्' में प्रसंग-वश कहते हैं कि गीताके ग्यारहवें अध्यायमें विश्व-रूप दर्शनके बारेमें जो कुछ लिखा है वह पूरी तरह असत्य और कविकी कल्पना मात्र है। हम इस बातका विरोध करनेके लिए बाधित हैं। विश्वरूप दर्शन गीताका अत्यन्त उपयोगी भाग है। अर्जुनके मनमें जिस दुविधा और संदेहने जन्म लिया था उसका श्रीकृष्णने ज्ञानगर्भित बातें कहकर निराकरण तो कर दिया परंतु तर्क और उपदेशद्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है वह दृढ़ नींववाला नहीं होता। दृढ़ज्ञान वही होता है जो उपलब्ध हुआ हो। इसीलिए अर्जुनने अंतर्यामीकी गुप्त प्रेरणासे विश्व-रूपका दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की। विश्वरूपके दर्शनसे अर्जुनका संदेह हमेशाके लिए गायब हो गया, बुद्धि शुद्ध होकर गीताके परम रहस्यको ग्रहण करने योग्य हो गयी। गीतामें विश्व रूप दर्शनसे पहले जो ज्ञान दिया गया था वह साधकोंके लिए उप-योगी ज्ञानका बाहरी रूप था। विश्वरूप दर्शनके बाद जो ज्ञान दिया गया वही ज्ञान गूढ़ सत्य, परम रहस्य और सनातन शिक्षा है। अगर हम इस विश्वरूप दर्शनको कविकी उपमा कह दें तो गीताकी गंभीरता, सचाई और गहराई नष्ट हो जायगी और योगसे प्राप्त

गंभीरतम शिक्षा कुछ दार्शनिक मतों या कवियोंकी कल्पनामें बदल जायगी। विश्वरूप दर्शन कविकी कल्पना नहीं है, उपमा नहीं है, ठोस सत्य है, अति-प्राकृत सत्य नहीं क्योंकि विश्व प्रकृतिके अंतर्गत है इसलिए विश्वरूप अतिप्राकृतिक नहीं हो सकता। विश्व-रूप कारण जगत्का सत्य है। कारण जगत्का रूप दिव्य चक्षुसे ही दिखायी देता है इसलिए दिव्य चक्षु प्राप्त अर्जुनने विश्वरूपके दर्शन किये।

साकार और निराकार

जो निर्गुण निराकार ब्रह्मके उपासक हैं वे गुण और आकारकी बातको उपमा कहकर उड़ा देते हैं और जो सगुण निराकार ब्रह्मकी उपासना करते हैं वे शास्त्रोंकी और ही तरहसे व्याख्या करके निर्गुण-त्वको अस्वीकार करते हैं और आकारको रूपक और उपमा कहकर उड़ा देते हैं। सगुण साकार ब्रह्मके उपासक इन दोनोंपर ही तलवार खींचे रहते हैं। हम इन तीनों मतोंको संकीर्ण और अपूर्ण मानते हैं क्योंकि जिन्होंने साकार और निराकार द्विविध ब्रह्मको पाया है वे भला एकको सत्य और दूसरेको असत्य कल्पना कहकर ज्ञानके अंतिम प्रमाणको नष्ट कर सकते हैं, असीम ब्रह्मको सीमाके अधीन ला सकते हैं? अगर हम ब्रह्मके निर्गुणत्व, निराकारत्वको अस्वीकार करें तो हम भगवान्का मजाक करते हैं, यह सच है। लेकिन अगर हम ब्रह्मके सगुणत्व और साकारत्वको अस्वीकार कर दें तो भी हम भगवान्का मजाक उड़ाते हैं —, यह बात भी उतनी ही सत्य है। भगवान् रूपोंके कर्ता, स्रष्टा और अधीश्वर हैं, वे किसी रूपसे बंधे नहीं हैं लेकिन जिस तरह वे आकारसे बंधे नहीं हैं उसी तरह निराकारत्वसे भी बंधे हुए नहीं हैं। भगवान् सर्व-शक्तिमान हैं, अगर हम उन्हें स्थूल प्रकृतिके नियम अथवा देशकालके

नियमरूपी जालमें फंसानेका स्वांग रचकर यह कहें कि अगर तुम अनंत हो तो हम तुम्हें सांत न होने देंगे, कोशिश करके देख लो, तुम सांत न हो पाओगे। तुम हमारी अकाटच तर्क-युक्तियोंसे बंधे हो, उसी तरह जैसे फर्डिनेन्ड प्रस्पेरोके इन्द्रजालमें फंसा था। क्या ही हास्यास्पद बात है। कैसा घोर अहंकार और अज्ञान है। भगवान् बंधनरहित हैं, निराकार और साकार दोनों हैं। साकार होकर साधकको दर्शन देते हैं, उस आकारमें भी पूर्ण भगवान् रहते हैं, सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त रहते हैं। भगवान् देशकालसे परे हैं, तर्ककी उनतक पहुंच नहीं है। देश और काल उनके खेलकी सामग्री हैं, वे देश और कालके जाल फेंककर सभी प्राणियोंको पकड़कर उनके साथ खेलते हैं लेकिन हम उन्हें उस जालमें नहीं पकड़ सकते। हम जब-जब तर्क और दार्शनिक युक्तिका प्रयोग करके असंभवको संभव करने चलते हैं तब-तब वे रंगमय उस जालको हटाकर हमारे सामने, पीछे, इधर-उधर, दूर, चारों ओर फैले हुए विश्वरूप और विश्वातीत रूपको फैलाकर बुद्धिको हरा देते हैं। जो कहता है कि मैंने उन्हें जान लिया है वह कुछ नहीं जानता, जो कहता है कि मैं मानता हूं कि मैं कुछ नहीं जानता वही सच्चा ज्ञानी है।

विश्वरूप

जो शक्तिके उपासक हैं, कर्मयोगी हैं, यंत्रचालकका यंत्र बनकर भगवान्के दिये हुए काम करनेका आदेश पा चुके हैं उनकी दृष्टिमें विश्वरूपका दर्शन पाना अत्यन्त आवश्यक है। विश्वरूपका दर्शन पानेसे पहले भी उन्हें आदेश मिल सकता है लेकिन जबतक दर्शन लाभ न हो जाय तबतक आदेश ठीक तरह स्वीकृत नहीं होता, सामने आ तो जाता है पर ठीक तरह स्वीकृत नहीं होता। तब-

तक उनकी कर्म-शिक्षा और तैयारीका समय होता है। विश्वरूपका दर्शन हो जानेपर ही कर्मका आरंभ होता है। विश्वरूप दर्शन कई प्रकारका हो सकता है, यह साधना और साधकके स्वभावपर निर्भर है। कालीका विश्वरूप दर्शन होनेपर साधक सारे संसारमें अत्यन्त सुंदर नारी रूप देखते हैं, देखते तो हैं एक ही को फिर भी उसके अनगिनत रूप होते हैं। सब जगह आकाशमें घनी काली केशराशि छायी हुई है। सब जगह उसी रक्तरंजित खड्गका प्रकाश आंखोंको चुंधियाता हुआ नाच रहा है। जगद्व्यापी भीषण अट्टहासका वह स्रोत विश्व ब्रह्माण्डको चूर-चूर कर रहा है। ये बातें कवियोंकी कल्पना नहीं हैं, प्रकृतिसे परेकी उपलब्धिको, अपूर्ण मानव भाषामें प्रकट करनेका असफल प्रयास नहीं हैं। यह कालीका, हमारी मांका वास्तविक रूप —— जो कुछ दिव्य चक्षुसे दिखायी देता है उसीका, अतिशयोक्तिके बिना सरल, सच्चा वर्णन है। अर्जुनने कालीका विश्वरूप नहीं देखा। उन्होंने श्रीकृष्णका कालरूप संहारका विश्वरूप देखा। बात एक ही है। उन्होंने बाहरी ज्ञानसे अलग-थलग जाकर समाधिमें नहीं देखा, अर्जुनने जो कुछ देखा, व्यासदेवने उसीका ज्योंका त्यों वर्णन कर दिया। यह स्वप्न नहीं, कल्पना नहीं, सत्य और जाग्रत् सत्य है।

कारण जगत्का रूप

शास्त्रोंमें कहा गया है कि भगवान्में स्थित तीन अवस्थाएं हैं — प्राज्ञ अधिष्ठित सुषुप्ति, तेज या हिरण्यगर्भ अधिष्ठित स्वप्न और विराट् अधिष्ठित जाग्रत्। प्रत्येक अवस्थामें एक-एक जगत् है। सुषुप्तिमें कारणजगत् है, स्वप्नमें सूक्ष्मजगत् और जाग्रत्में स्थूलजगत्। कारणजगत्में जो कुछ निर्णय होता है वह हमारे देशकालसे अतीत सूक्ष्मजगत्में छाया रूपमें दिखलायी देता है और स्थूलमें आंशिक

रूपमें हमारे स्थूल जगत्के नियमोंके अनुसार संपन्न होता है, श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको पहले ही मार चुका हूं फिर भी स्थूलजगत्में धृतराष्ट्रके वे बेटे कुरुक्षेत्रके मैदानमें अर्जुनके सामने जीते-जागते युद्धके लिए तैयार खड़े थे। भगवान्की वह बात न तो झूठी है और न कोई अलंकार है। कारणजगत्में उन्होंने इनको मार दिया था अन्यथा उन्हें यहांपर मारना संभव न होता। हमारा सच्चा जीवन कारणजगत्में होता है, स्थूलमें तो बस उसकी छाया ही पड़ती है। लेकिन कारणजगत्के नियम, देश, काल, रूप और नाम यहांसे भिन्न होते हैं। विश्वरूप कारणजगत्का रूप है जो स्थूलमें केवल दिव्य चक्षुके सामने प्रकट होता है।

दिव्य चक्षु

दिव्य चक्षु क्या है ? यह कल्पनाकी आंख नहीं है। योगसे प्राप्त दृष्टि तीन तरहकी होती है -- सूक्ष्म दृष्टि, विज्ञान चक्षु और दिव्य चक्षु। सूक्ष्म दृष्टिसे हम स्वप्नमें या जागते हुए मानसिक मूर्तियोंको देखते हैं। विज्ञान चक्षुसे हम समाधि लगाकर सूक्ष्म जगत् और कारण जगत्के अंदर नाम रूपोंकी प्रतिमूर्तियों या छवियोंको और सांकेतिक रूपोंको चित्ताकाशमें देखते हैं और दिव्य चक्षुसे कारणजगत्के नामरूपोंको प्राप्त करते हैं, इसे समाधिमें या जाग्रत् अवस्थामें भी देख सकते हैं। जो हमारी स्थूल इन्द्रियोंके लिए अगोचर है वह यदि गोचर हो जाय तो इसे दिव्य चक्षुका प्रभाव मानना चाहिए। अर्जुन दिव्य चक्षुके प्रभावसे जाग्रत् अवस्थामें भगवान्के कारण-जगत्के विश्वरूपको देखकर सब संदेहोंसे मुक्त हुए थे। वह विश्व-रूप दर्शन भले स्थूल जगत्का गोचर सत्य न हो पर स्थूल सत्यसे कहीं अधिक सत्य है, यह कल्पना, असत्य या उपमा नहीं है।

गीताकी भूमिका :

प्रस्तावना

गीता जगत्की श्रेष्ठ धर्म पुस्तक है। गीतामें जिस ज्ञानकी व्याख्या संक्षेपमें की गयी है, वह चरम और गुह्यतम ज्ञान है। गीतामें जिस धर्मनीतिकी बात कही गयी है, सभी धर्मनीतियां उसके अंदर आ जाती हैं और वही उनकी नींव है। गीतामें जो कर्ममार्ग दिखलाया गया है वही कर्ममार्ग उन्नतिशील जगत्का सनातन मार्ग है।

गीता अनगिनत रत्नोंको उत्पन्न करनेवाला अथाह सागर है। जीवन भर इस सागरकी थाह लेते रहनेपर भी इसकी गहराईका अनुमान नहीं लगाया जा सकता, उसकी थाह नहीं ली जा सकती। हजारों वर्ष खोजते रहनेपर भी इस अनंत रत्नभंडारके हजारवें हिस्सेको पाना भी कठिन है। लेकिन इसके दो-एक रत्न पाकर भी दरिद्र धनी बन जाते हैं, गंभीर विचारक ज्ञानी और भगवान्से विद्वेष करनेवाले उनके प्रेमी, बड़े पराक्रमी, शक्तिशाली, कर्मवीर अपने जीवनके उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये पूरी तरह सज्जित और तैयार होकर कर्मक्षेत्रमें लौट आते हैं।

गीता मणियोंकी अक्षय खान है। यदि हम युग-युगान्तर तक इस खानसे मणियां निकालते रहें तब भी भविष्यकी संततियां इसमेंसे सदा नये-नये अमूल्य मणिमाणिक्य पा-पाकर प्रसन्न और विस्मित होती रहेंगी।

पुस्तक इतनी गंभीर और गुप्त ज्ञानपूर्ण है, फिर भी उसकी भाषा बहुत ही स्पष्ट, उसकी रचना सरल और बाहरी अर्थ आसानीसे समझमें आनेवाला है। गीता-सागरकी छोटी लहरियोंके ऊपर-ही-ऊपर सैर करते रहनेपर भी, डुबकी लगाये बिना भी शक्ति और

आनंदमें थोड़ी बहुत वृद्धि होती है। गीतारूपी खानकी रत्नोंसे जगमगाती गहरी गुफामें प्रवेश किये बिना, बाहर-ही-बाहर घूमते रहनेपर भी, घास-पातपर पड़ी हुई उज्जवल मणियां मिल जाती हैं और उनसे ही हम जीवन भरके लिये धनी बन जाते हैं।

गीताकी हजारों टीकाएं हो चुकी हैं, फिर भी ऐसा समय कभी न आयेगा जब किसी नयी टीकाकी आवश्यकता न रहे। कोई जगत्-श्रेष्ठ महापंडित या गभीर ज्ञानी गीताकी ऐसी व्याख्या नहीं कर सकता जिसके हृदयमें पैठ जानेपर हम अलमिति कह सकें और कह सकें कि इसके बाद गीताकी कोई और व्याख्या करना बेकार है, इतनेमें ही सारा अर्थ समा गया। अपनी सारी बुद्धि लगाकर हम इस ज्ञानकी शिक्षाओंकी थोड़ी-सी मात्राको ही समझ या समझा सकेंगे। बहुत दिनोंतक योगमग्न या निष्काम कर्मके मार्गपर ऊंचे-से-ऊंचे स्थानपर जाकर भी हम बस इतना ही कह सकेंगे कि हमने गीताके कुछ एक गंभीर सत्योंको ही पाया है या गीताकी दो-एक शिक्षाओंको ही जीवनमें उतार पाये हैं। लेखकने जितना प्राप्त किया है, कर्ममयपर जितने अंशका अभ्यास किया है उसके अनुसार चिंतन मननद्वारा जो अर्थ किया है उसीका औरोंकी सहायताके लिए विवरण देना इन लेखोंका उद्देश्य है।

वक्ता

गीताके उद्देश्य और अर्थको समझनेके लिए पहले उसके वक्ता, पात्र और उस समयकी अवस्थाके बारेमें विचार करना जरूरी है। वक्ता हैं भगवान् श्रीकृष्ण, पात्र हैं उनके सखा वीरश्रेष्ठ अर्जुन और अवस्था है कुरुक्षेत्रके भीषण हत्याकांडका आरंभ।

बहुत-से लोग कहते हैं कि महाभारत केवल एक रूपक है, श्रीकृष्ण भगवान् हैं, अर्जुन जीव, धृतराष्ट्रके बेटे सकल शत्रु और

पांडव सेना मुक्तिकी अनुकूल वृत्ति है। इससे जहां महाभारतको काव्य जगत्में हीन स्थान दिया जाता है वहीं, गीताकी गभीरता, कर्म करनेवालेके जीवनमें उसकी उपयोगिता और उच्च मानव जातिकी उन्नति करनेवाली शिक्षा भी तुच्छ होकर नष्ट हो जाती है। कुरुक्षेत्रका रण गीताके चित्रका फ्रेम भर नहीं है। वह गीताकी शिक्षाका मूल कारण और धर्म संपादित करनेका श्रेष्ठ क्षेत्र है। यदि यह मान लिया जाय कि कुरुक्षेत्रका महायुद्ध काल्पनिक था, गीताका धर्म वीरोंका धर्म था तो वह संसारमें आचरण करने लायक धर्म न रह कर, संसारके लिये अनुपयोगी, शांत, संन्यास धर्म बन जायगा।

श्रीकृष्ण वक्ता हैं। शास्त्र कहते हैं श्रीकृष्ण हैं भगवान् स्वयं। गीतामें श्रीकृष्णने अपने भगवान् होनेकी घोषणा की है। चौथे अध्यायके अवतारवाद और दसवें अध्यायके विभूतिवादमें यह बतलाया गया है कि भगवान् सभी प्राणियोंके शरीरमें गुप्त रूपसे उपस्थित हैं, वे कुछ विशेष भूतोंमें उनकी शक्तिके विकासके अनुसार कुछ परिमाणमें व्यक्त हैं और श्रीकृष्णके शरीरमें पूर्ण रूपसे अवतीर्ण हैं। बहुतोंका कहना है कि श्रीकृष्ण, अर्जुन और कुरुक्षेत्र केवल रूपक हैं। इस रूपकको छोड़कर ही गीताकी असली शिक्षाका उद्धार करना होगा। लेकिन उस शिक्षाके इस अंशको नहीं छोड़ा जा सकता। यदि हम अवतारवादको मानते हैं तो श्रीकृष्णको क्यों छोड़ दें। श्रीकृष्ण ही तो हैं इस ज्ञान और शिक्षाके प्रचारक।

श्रीकृष्ण अवतार हैं। वे मानव शरीरमें मनुष्यके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक धर्मको ग्रहण करके उसके अनुसार लीला कर गये हैं। अगर हम उस लीलाकी प्रकट और गूढ़ शिक्षाको पा सकें तो इस सारे जगत्में फैली हुई लीलाके अर्थ, उद्देश्य और प्रणालीको भी समझ पायेंगे। उस महान् लीलाका मुख्य अंग है पूर्ण ज्ञानसे प्रेरित कर्म, उस कर्ममें तथा उस लीलाके मूलमें जो ज्ञान छिपा है वही गीतामें प्रकट हुआ है।

महाभारतमें श्रीकृष्ण कर्मवीर, महायोगी, महासंसारी, साम्राज्यकी स्थापना करनेवाले, राजनीतिज्ञ और योद्धा, क्षत्रिय शरीरमें ब्रह्मज्ञानी हैं। हम उनके जीवनमें महाशक्तिका अतुलनीय विकास और उसकी रहस्यमय क्रीड़ा देखते हैं। गीता उसी रहस्यकी व्याख्या है।

श्रीकृष्ण सारे जगत्के प्रभु, सारे विश्वमें व्यापक वासुदेव हैं फिर भी उन्होंने अपनी महिमाको छिपा कर मनुष्योंके साथ पिता, पुत्र, भ्राता, पति, सखा, मित्र, शत्रु आदिके नाते जोड़कर लीला की है। उनके जीवनमें आर्यज्ञानका उत्तम रहस्य और भक्तिमार्गकी उत्तम शिक्षा छिपी है। गीताकी शिक्षामें इन दोनों का तत्त्व भी मौजूद है।

श्रीकृष्णका अवतार द्वापर और कलिके संधिकालमें हुआ था। हर कल्पमें भगवान् उसी संधिकालमें पूर्णरूपसे अवतीर्ण होते हैं। कलियुग चारों युगोंमें जितना निकृष्ट है उतना ही श्रेष्ठ भी है। यह युग मानव जातिकी उन्नतिके शत्रु पापप्रवर्तक कलिका राज्यकाल है। कलिकालमें मनुष्य अत्यंत अवनति और अधोगतिको प्राप्त होता है। बाधाओंके साथ युद्ध करते-करते शक्ति बढ़ती है, प्राचीनका नाश होनेसे नवीनकी सृष्टि होती है। कलियुगमें यही नियम दिखलायी देता है। जगत्के क्रमविकासके कारण अशुभका जो अंश विनाशकी ओर आगे बढ़ता है, कलियुगमें वह अतिविकासके द्वारा नष्ट हो जाता है और दूसरी ओर नवसृष्टिका बीज बोया जाता है और उसमें अंकुर फूटते हैं, वही बीज सत्ययुगमें वृक्षका रूप ले लेता है। इसके सिवा, जैसे ज्योतिषविद्यामें एक ग्रहकी दशामें सभी ग्रहोंको अंतर्दशाका भोग होता है उसी तरह कलिकी दशामें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि भी अपनी-अपनी अंतर्दशाका बार-बार भोग करते रहते हैं। इस तरहकी कालचक्रकी गतिके कारण कलियुगमें घोर अवनति, फिर उन्नति, फिर घोरतर अवनति, फिर उन्नति होती है, और इस तरह भगवान्का उद्देश्य पूरा होता है। द्वापर और कलियुगके

संधिकालमें भगवान् अवतार लेकर अशुभके अतिविकास, अशुभके नाश, शुभके बीज रोपने और उनमें अंकुर आनेके लिए अनुकूल अवस्था उत्पन्न कर जाते हैं। उसके बाद होता है कलियुगका आरंभ। श्रीकृष्ण इस गीतामें सत्ययुगके आने योग्य गुह्य ज्ञान और कर्मप्रणाली छोड़ गये हैं। कलिकी वास्तविक अंतर्दशा शुरू होनेके समय सारी दुनियामें गीताका प्रचार होना जरूरी है। अब वह समय आ गया है और इसलिए गीताका प्रचार कुछ ज्ञानी और पंडित लोगोंतक सीमित न रहकर सर्वसाधारण लोगोंमें और म्लेच्छ देशोंतकमें हो रहा है।

अतः वक्ता श्रीकृष्णसे उनकी वाणी––गीता–को अलग नही किया जा सकता। श्रीकृष्ण गीतामें गुप्तरूपसे उपस्थित रहते हैं। गीता श्रीकृष्णकी वाङ्मयी, वाणीसे बनी मूर्ति है।

पात्र

गीताके ज्ञानके पात्र हैं पांडव-श्रेष्ठ महावीर इन्द्रतनय अर्जुन। जैसे वक्ताको छोड़ दिया जाय तो गीताका उद्देश्य और गूढ़ अर्थ समझना कठिन है उसी तरह पात्रको छोड़ देनेसे भी उस अर्थकी हानि होती है।

अर्जुन श्रीकृष्णके सखा थे। श्रीकृष्णके समकालीन लोग जो, एक ही क्षेत्रमें काम करनेके लिए यहां उतरे थे, उन्होंने मानव देहधारी पुरुषोत्तमके साथ अपने-अपने अधिकार और पूर्वजन्मके विविध कर्मोंके अनुसार नाना प्रकारके संबंध स्थापित किये थे। उद्धव श्रीकृष्णके भक्त, सात्यकि उनके अनुयायी, सहचर और सेवक, राजा युधिष्ठिर उनकी सलाहके अनुसार चलनेवाले आत्मीय और बंधु थे, पर अर्जुनकी तरह कोई और उनके साथ इतनी घनिष्ठता न साध सका। एक ही उम्रके पुरुषोंमें आपसमें जितने मधुर और घनिष्ठ

संबंध हो सकते हैं, श्रीकृष्ण और अर्जुनके बीच वे सभी संबंध थे। अर्जुन श्रीकृष्णके भाई, उनके प्रियतम सखा, उनकी प्राणप्यारी बहन सुभद्राके पति थे। चौथे अध्यायमें भगवान्ने कहा है कि उन्होंने इस घनिष्ठताके कारण ही अर्जुनको गीताका परम रहस्य सुननेके लिए पात्र रूपमें चुना है।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

"इस पुरातन लुप्त योगको मैं तेरे सामने तुझे अपना भक्त और सखा मानकर प्रकट कर रहा हूं, क्योंकि यह योग जगत्का श्रेष्ठ और परम रहस्य है।" अठारहवें अध्यायमें भी गीताके केंद्रस्वरूप कर्मयोगका मूल मंत्र बतलाते हुए इसी बातको दोहराया गया है।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

"अब मेरी परम और गुह्यतम बातको सुन। तू मुझे अत्यन्त प्रिय है इसीलिए मैं तेरे आगे इस श्रेष्ठ मार्गकी बात करूंगा।" इन दोनों श्लोकोंकी बात श्रुति अनुकूल है। जैसा कि कठोपनिषद्में कहा है —

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

"यह परमात्मा न तो दार्शनिकोंके प्रवचनोंसे प्राप्त होता है न मेधाकी शक्तिसे और न ही विस्तृत शास्त्र-ज्ञानद्वारा प्राप्त हो सकता है। परमात्मा उन्हींको प्राप्त हैं जिन्हें भगवान्ने चुन लिया है और उन्हींके सामने यह अपने शरीरको प्रकट करता है। अतः जो भगवान्के साथ सखा इत्यादिके मधुर संबंध जोड़नेमें समर्थ हैं वही गीताके ज्ञानके पात्र हैं।

इसीमें एक और बड़ी आवश्यक बात छिपी है। भगवान्ने अर्जुनको एक ही शरीरमें भक्त और सखाके रूपमें चुना। भक्त नाना प्रकारके होते हैं, साधारणतः जब किसीको भक्त कहा जाता है तो हमें गुरु शिष्य संबंधका ख्याल आता है। उस भक्तिके मूलमें भी प्रेम तो है ही पर साधारणतः उसका मुख्य लक्षण होता है बाध्यता, सम्मान और अंधभक्ति। लेकिन सखा-सखाका सम्मान नहीं करता, उसके साथ खेल-कूद, आमोद और प्रेम-भरी बातें करता है। खेल-कूदमें उसका मजाक भी करता है और तिरस्कार भी, उसे गाली भी देता है और शरारत भी करता है। वह उसकी आज्ञासे बंधा नहीं रहता, वह उसकी ज्ञान, गरिमा और निष्कपट हितकामनासे मुग्ध होकर उसके उपदेशके अनुसार चलता है लेकिन अंधा होकर नहीं, वह उसके साथ तर्क करता है, अपने सारे संदेह उसके आगे रखता है, बीच-बीचमें उसके मतका खंडन भी करता है। मैत्रीके संबंधकी पहली शिक्षा है अभय भाव, दूसरी शिक्षा है सम्मानके बाहरी आडंबरका त्याग। प्रेम ही उसकी पहली और अंतिम बात है। जो इस जगत्को, संसारको मधुरतापूर्ण, रहस्यमय, प्रेममय, आनंदमय लीला मानकर भगवान्को अपने खेलके साथीके रूपमें चुनते हैं, उन्हें सखाके संबंधमें बांध सकते हैं, वे ही गीतामें कहे गये ज्ञानके पात्र हैं। जो भगवान्की महिमा, प्रभुता, ज्ञान, गरिमा और भीषणताको भी अपनाकर उससे अभिभूत नहीं होते और उनके साथ निर्भय होकर हंसी-खुशी खेलते रहते हैं वे ही गीतामें कहे गये ज्ञानके पात्र हैं।

सखा-भावमें क्रीड़ाके बहाने सभी संबंध आ जाते हैं। गुरु-शिष्य-संबंध सखा-भावमें प्रतिष्ठित होकर बहुत ही मधुर हो उठता है। गीताके शुरूमें ही अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ ऐसा ही नाता जोड़ा था। "तुम मेरे परम हितैषी बंधु हो, तुम्हें छोड़ किसकी शरणमें जाऊं? मैं हतबुद्धि हो रहा हूं, कर्तव्यके भारसे दबा जा रहा हूं, कर्तव्यके बारेमें मेरे अंदर संदेह उठ रहे हैं और मैं तीव्र शोकसे आतुर हो उठा

हूं। तुम मेरी रक्षा करो, मुझे उपदेश दो, मैं अपने इहलोक और परलोक दोनोंके हितका पूरा भार तुम्हें सौंपता हूं।" इस भावके साथ अर्जुन मानवजातिके सखा-सहायकके पास ज्ञान पानेके लिये आया था। इसके अतिरिक्त मातृसंबंध और वात्सल्य भाव भी सखा-भावमें छिपा है। बड़ी उम्रवाले और ज्ञानश्रेष्ठ अपनेसे छोटे और कम जाननेवाले सखाके साथ मांकी तरह स्नेह करते, उसकी रक्षा करते, देखभाल करते और उसे अपनी गोदमें रखकर अशुभसे बचाये रखते हैं। जो श्रीकृष्णके साथ सखा-भाव स्थापित करते हैं उनके सम्मुख श्रीकृष्ण अपना मातृरूप भी प्रकट करते हैं। सखा-भावमें जैसे मांके प्यारकी गभीरता आ सकती है उसी तरह दंपतिके प्रेमकी तीव्रता और उसका उत्कट आनंद भी आ सकता है। सखा हमेशा सखाके साथ रहनेके लिये प्रार्थना करता है, उसके विरहमें कातर हो उठता है, उसके शरीरको छूनेसे पुलकित होता है और उसके लिये प्राण त्यागतक करनेमें आनंदका अनुभव करता है। दास्य संबंधमें भी सख्यकी क्रीड़ाका समावेश होनेपर वह अत्यंत मधुर हो जाता है। हम कह आये कि पुरुषोत्तमके साथ जो जितना अधिक मधुर संबंध स्थापित कर पाये उसका सखा-भाव उतना ही अधिक खिल उठता है और वह गीतामें कहे गये ज्ञानकी उतनी ही अधिक पात्रता पाता है।

कृष्ण-सखा अर्जुन महाभारतके मुख्य कार्यकर्ता हैं और गीताकी कर्मयोग शिक्षा ही उसकी मुख्य शिक्षा है। ज्ञान, भक्ति, और कर्म, ये तीन मार्ग आपसमें एक दूसरेके विरोधी नहीं हैं। गीताकी शिक्षा है कर्म मार्गमें ज्ञानप्रेरित कर्ममें भक्तिसे प्राप्त शक्तिका प्रयोग करके भागवत उद्देश्यमें उनके साथ एक होकर उन्हींके आदेशानुसार कर्म करना। जो संसारके दुःखसे डरते हैं, वैराग्यसे पीड़ित हैं, जो भगवान्की लीलाको छोड़कर अनंतकी गोदमें छिप जाना चाहते हैं, उनका रास्ता इससे भिन्न है। वीरश्रेष्ठ महाधनुर्धर अर्जुनका ऐसा कोई विचार या भाव नहीं है। श्रीकृष्णने इस उत्तम रहस्यको किसी शांत संन्यासी या दार्शनिक, ज्ञानीके आगे प्रकट नहीं किया है। किसी

अहिंसा-परायण ब्राह्मणको इस शिक्षाके पात्रके रूपमें नहीं चुना, बल्कि एक महापराक्रमी, तेजस्वी, क्षत्रिय योद्धाको इस अतुलनीय ज्ञानके लिये उपयोगी आधार माना। जो संसार समरमें जय या पराजयसे विचलित नहीं होते वे ही इस शिक्षाके गूढ़तम रहस्यमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। **नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।** यह आत्मा बलहीनोंको प्राप्त नहीं होती। जो मोक्ष पानेकी अपेक्षा भगवान्को पानेकी इच्छा रखते हैं, वे ही भगवान्की निकटता पाकर अपने-आपको नित्यमुक्त जानते और मोक्षकी इच्छाको अज्ञानका अंतिम सहारा मानकर उसे त्यागनेमें समर्थ होते हैं। जो तामसिक और राजसिक अहंकारको छोड़कर सात्विक अहंकारमें बंधे नहीं रहना चाहते वे ही गुणातीत होनेमें सक्षम हैं। अर्जुनने क्षत्रिय धर्मका पालन करके राजसिक वृत्तिको चरितार्थ किया था, फिर सात्विक आदर्श ग्रहण करके रजःशक्तिको सत्वमुखी बनाया था। ऐसा पात्र ही गीतामें कही गयी शिक्षाका उत्तम आधार है।

अर्जुन अपने समयके महापुरुषोंमें सबसे अच्छे न थे। आध्यात्मिक ज्ञानमें सर्वश्रेष्ठ थे व्यास देव, उस समयके सब भांतिके सांसारिक ज्ञानमें सबसे बढ़-चढ़कर थे भीष्म पितामह, ज्ञानतृष्णामें धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भक्तिमें उद्धव और अक्रूर, स्वाभाविक शौर्य और पराक्रममें बड़े भाई महारथी कर्ण। फिर भी जगत्प्रभुने अर्जुनको ही चुना। उन्हींके हाथोंसे अचला जयश्री और गांडीव आदि अस्त्रोंको देकर, उनके द्वारा भारतके हजारों जगद्विख्यात योद्धाओंका संहारकर अर्जुनके पराक्रमसे प्राप्त दानके रूपमें युधिष्ठिरका शत्रुहीन साम्राज्य स्थापित किया। इसके अतिरिक्त अर्जुनको ही गीताके परम ज्ञानका एकमात्र उपयुक्त पात्र निर्धारित किया। अर्जुन ही थे महाभारतके मुख्य नायक और प्रधान कार्य-कर्ता। इस वाक्यकी एक-एक पंक्ति उन्हींकी यशकीर्तिकी घोषणा कर रही है। यह पुरुषोत्तम या महाभारतकार व्यासदेवका अन्याय या पक्षपात नहीं है। यह उत्कर्ष पूर्ण श्रद्धा और आत्मसमर्पणका फल है। जो पुरुषोत्तमपर पूर्ण श्रद्धा

रखते हुए उन्हींपर निर्भर रहते हुए, कोई मांग नहीं करते, अपने शुभ और अशुभ, मंगल और अमंगल, पाप और पुण्यका सारा-सारा भार उन्हें अर्पण करते हैं, जो अपने प्रिय कर्ममें आसक्त न होकर उन्हींके आदेशानुसार कर्म करनेकी इच्छा रखते हैं, अपनी प्रिय वृत्तिको चरितार्थ न करके प्रियद्वारा प्रेरित वृत्तिको ही अपनाते हैं, जो अपने प्रशंसित गुणसे ही आग्रहपूर्वक नहीं लिपटे रहते बल्कि उनके दिये हुए गुणको, उन्हींके दिये हुए गुण और प्रेरणाको, उन्हींके काममें लगाते हैं वे श्रद्धावान्, अहंकाररहित कर्मयोगी ही पुरुषोत्तमके प्रियतम सखा और शक्तिके उत्तम आधार होते हैं। जगत्‌के विराट कार्य उन्हींके द्वारा निर्दोष रूपसे संपन्न होते हैं। इस्लाम धर्मके प्रणेता हजरत मुहम्मद इसी प्रकारके श्रेष्ठ योगी थे। उसी तरह अर्जुन हमेशा आत्मसमर्पण करनेके लिये प्रयत्नशील रहते थे। वही प्रयत्न श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और उनके प्रेमका कारण थी। जो संपूर्ण आत्मसमर्पणके लिये लगकर प्रयत्न करते हैं वही गीतामें दी गयी शिक्षाके उत्तम अधिकारी होते हैं। श्रीकृष्ण उनके गुरु और सखा होकर उनके इहलोक और परलोकका पूरा भार अपने ऊपर ले लेते हैं।

अवस्था

मनुष्यके हर काम और उसकी हर बातका उद्देश्य और कारण पूरी तरह जाननेके लिये यह जानना जरूरी है कि वह कार्य किस अवस्थामें किया गया था या वह बात किस अवस्थामें कही गयी थी। भगवान्‌ने गीता — **प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते** — कुरुक्षेत्रके महायुद्धके मैदानमें शस्त्रोंका प्रयोग आरंभ होते समय कही थी, यह सुनकर बहुतसे लोग आश्चर्य या क्रोध करते हैं और कहते हैं कि निश्चय ही यह कविकी असावधानी या उसका बुद्धिदोष है। लेकिन वास्तवमें उसी समय, उसी स्थानपर, उसी प्रकारके भाववाले पात्रको देश, काल और पात्रको समझकर श्रीकृष्णने गीताका ज्ञान प्रकट किया था।

समय था युद्धका प्रारंभ काल। जिन लोगोंने प्रबल कर्म-स्रोतमें अपनी वीरता और शक्तिका विकास नहीं किया, उनकी परख नहीं की, वे कभी गीताके ज्ञानके अधिकारी नहीं हो सकते, लेकिन जो कठिन महाव्रत आरंभ करते हैं, ऐसा महाव्रत जिसमें नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएं आती हैं, शत्रु बहुत बढ़ जाते हैं, स्वभावतः बहुत बार पराजयकी शंका होती है, उस महाव्रतका पालन करनेसे जब दिव्य शक्ति उत्पन्न होती है, तब उस व्रतके अंतिम उद्यापनके लिए, भगवान्‌के कामको सिद्ध करनेके लिए यह ज्ञान प्रकाशित होता है। गीता कहती है कि कर्मयोगद्वारा भगवान्‌की प्राप्ति होती है, श्रद्धा और भक्तिपूर्ण कर्मसे ज्ञान पैदा होता है अतः गीताके मार्गका यात्री अपना रास्ता छोड़कर किसी सुदूर शांतिमय आश्रममें, पर्वत या निर्जन स्थानमें भगवान्‌का साक्षात्कार नहीं पाता बल्कि बीच रास्तेमें ही, कर्मके कोलाहलमें हठात् वह स्वर्गिक दीप्ति उसके सामने जगत्‌को आलोकित कर देती है। वह मधुर तेजभरी वाणी उसके कर्ण-कुहरमें प्रवेश करती है।

स्थान है युद्धक्षेत्र, जहां दो सेनाओंके बीच शस्त्र चल रहे हैं। जो इस राहपर चलते हैं, ऐसे कामोंमें आगे होते हैं वे प्रायः किसी बड़े परिणामके समय, उस समय जब कर्मीके कर्मोंके अनुसार भाग्यकी गति इस ओर या उस ओर मोड़ लेनेवाली होती है, अचानक योग सिद्धि या परम ज्ञान पा लेते हैं। उनका ज्ञान कर्मको रोकता नहीं, उसके साथ घुलमिल जाता है। यह भी सच है कि ध्यानसे निर्जन स्थानमें स्वस्थ आत्माके अंदर ज्ञानका उदय होता है और इसी कारण मनीषी निर्जन स्थानमें रहना पसंद करते हैं। लेकिन गीतामें बतलाये गये मार्गके यात्री मन, प्राण और देहरूपी आधारको इस तरह बांट सकते हैं कि वे जनताके अंदर रहते हुए निर्जनता, कोलाहलके बीच शांति, घोर कर्म प्रवृत्तिमें परम निवृत्तिका अनुभव कर सकते हैं। वे अंतरका नियंत्रण बाह्यके द्वारा नहीं करते बल्कि अंतरद्वारा बाह्यका नियंत्रण करते हैं। साधारण योगी संसारसे डरते हैं और संसारसे

भागकर योगाश्रमकी शरण लेते और वहां योग-साधना करते हैं। परंतु कर्मयोगीका योगाश्रम संसार है। साधारण योगी बाहरी शांति और नीरवताकी इच्छा रखते हैं। शांति भंग होनेसे उनका तपोभंग होता है। कर्मयोगी अंतरकी विशाल शांति और नीरवतामें लीन रहते हैं। बाहरी कोलाहलमें उनकी यह अवस्था और भी गहरी हो जाती है। बाहरी तपोभंग होनेसे उनका यह स्थिर आंतरिक लय भग्न नहीं होता, अविचल रहता है। लोग कहते हैं युद्धके लिए तैयार दो सेनाओंके बीच भला श्रीकृष्ण और अर्जुनका यह संवाद कैसे संभव हो सकता है। उत्तर है योग प्रभावसे संभव होता है। उस योगबलद्वारा युद्धके कोलाहलमें एक जगह श्रीकृष्ण और अर्जुनके अंदर और बाहर शांति विराजमान थी। युद्धका कोलाहल उन दोनोंको छू तक नहीं गया था। इस बातमें कर्मके लिए उपयोगी एक और आध्यात्मिक शिक्षा छिपी है जो गीतामें कहे गये योगका अध्ययन करते हैं वे श्रेष्ठ कर्मी कर्मसे अनासक्त हैं। वे कर्मके अंदर ही आत्माके आंतरिक आवाहनको सुनकर कर्मसे विरक्त होकर योगमग्न और तपस्यामें रत हो सकते हैं। वे जानते हैं कि कर्म भगवान्‌का है, फल भगवान्‌का है हम केवल यंत्र हैं इसलिए वे कर्मफलके लिए आतुर नहीं होते। वे यह भी जानते हैं कि यह आवाहन कर्मयोगकी सुविधाके लिए, कर्मकी उन्नतिके लिए ज्ञान और शक्ति बढ़ानेके लिए होता है। इसलिए उन्हें कर्मसे विरक्त होनेका डर नहीं लगता। वे जानते हैं कि जो समय तपस्यामें लगता है वह कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।

पात्रका भाव कर्मयोगीके अंतिम संदेहका आरंभ है। विश्वकी समस्या, सुख-दुखकी समस्या, पापपुण्यकी समस्यासे घबराकर बहुतसे लोग पलायनको ही अधिक अच्छा मानकर निवृत्ति, वैराग्य और कर्मत्यागकी प्रशंसाका डंका बजाते हैं। बुद्धदेवने जगत्‌को अनित्य और दुखमय बताकर निर्वाणका मार्ग दिखलाया था। ईसा-मसीह टाल्सटाय आदि मानवजातिके लिए संतान पैदा करनेवाली

विवाहपद्धति और जगत्के पुरातन नियम-युद्धके घोर विरोधी हैं। संन्यासी कहते हैं कर्म अज्ञानसे पैदा होता है। अज्ञान त्यागो, कर्म त्यागो, शांत और निष्क्रिय बन जाओ। अद्वैतवादी कहते हैं, जगत् मिथ्या है, जगत् मिथ्या है, ब्रह्ममें विलीन होओ। तो फिर यह जगत् क्यों हैं? यह संसार क्यों हैं? यदि भगवान् है तो उन्होंने एक नादान बच्चेकी तरह यह व्यर्थ पशु-श्रम, यह नीरस उपहास क्यों शुरू किया? यदि केवल आत्मा ही सत्य है और जगत् मिथ्या है तो फिर आत्माने इस अधम स्वप्नको अपने शुद्ध अस्तित्व-पर क्यों थोपा? नास्तिक कहते हैं न भगवान् हैं न आत्मा है, है केवल एक अंधशक्तिकी अंध क्रिया। यह भला कैसी बात है? शक्ति किसकी? कहांसे पैदा हुई? वह अंध और उन्मत्त क्यों हुई? इन सब प्रश्नोंकी सन्तोषजनक मीमांसा कोई भी न कर सका, न ईसाई, न बौद्ध, न अद्वैतवादिन, न नास्तिक, न वैज्ञानिक। सभी इस विषयमें निरुत्तर हैं और समस्याकी उपेक्षा करके उसे टालनेमें लगे हैं। केवल उपनिषद् और उसका अनुसरण करनेवाली गीता इस तरह टालमटोल नहीं करते इसीलिए कुरुक्षेत्रके युद्धमें गीता गायी है। घोर सांसारिक कर्म, गुरुहत्या, भ्रातृहत्या, आत्मीय हत्या इस युद्धका उद्देश्य है। अनगिनत लोगोंकी हत्या करनेवाले इस युद्धके शुरू होनेपर अर्जुन गाण्डीव धनुष हाथसे छोड़ देते हैं और कातर होकर कहते हैं —

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥

"हे केशव! मुझे इस घोर कर्ममें क्यों लगा रहे हो?" उत्तरमें उस युद्धके कोलाहलके बीच भगवान्के मुंहसे वज्रसे गंभीर स्वरमें यह महागीत निकला :

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।

योगस्थ कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।

*

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

*

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।

*

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

*

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥

*

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

*

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति॥

*

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्टा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।

*

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते॥

"इसलिए तुम कर्म करते चलो, पहले तुम्हारे पुरखे जो कर्म करते आये हैं; वही तुम्हें भी करना चाहिए। ...योगमें स्थित होकर, आसक्ति छोड़कर, कर्म करो। जिनकी बुद्धि योगमें स्थित होती है वे इसी कर्मक्षेत्रमें पाप-पुण्यको पार कर लेते हैं, अतः योग साधना करो, योग ही कर्मका श्रेष्ठ साधन है। आदमी अगर अनासक्त होकर कर्म करें तो निश्चय ही वे परम भगवान्को पा लेंगे।...ज्ञानपूर्ण हृदयसे अपने सभी कर्म मुझे सौंप दो, कामना त्यागकर अहंकार त्यागकर, दुखरहित होकर युद्ध करो। ...जो मुक्त हैं, आसक्ति रहित हैं, जिनका चित्त हमेशा ज्ञानमें निवास करता है, जो यथार्थ कर्म करते हैं उनके कर्म बंधनका कारण न बन कर उसी क्षण पूरी तरह मेरे अंदर विलीन हो जाते हैं।...सभी प्राणियोंके अंदरका ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ है इसीलिए वे सुख-दुःख, पाप-पुण्य, आदि द्वन्द्वोंकी सृष्टि करके मोहमें जा गिरते हैं। ...मुझे सर्वलोकमाहेश्वर, यज्ञ, तपस्या आदि सब तरहके कर्मोंका भोक्ता तथा प्राणिमात्रका सखा और बन्धु माननेसे परम शांति मिलती है। ... मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार चुका हूं, तुम बस यंत्र बनकर उनका संहारं करो, दुखी मत होओ, युद्धमें लग जाओ, तुम विपक्षियोंको रणमें जीत लोगे... जिनका अंतःकरण अहंकारसे शून्य है, जिनकी बुद्धि निर्लिप्त है, वे सारे जगत्का भी संहार कर दें तो भी हत्या नहीं करते, उन्हें किसी तरहका पाप नहीं बांधता।"

यहां प्रश्न टालने या प्रश्नसे मुंह मोड़नेका कोई लक्षण नहीं है। प्रश्नको स्पष्ट रूपसे सामने रखा गया है। जगत् क्या है, संसार क्या है, धर्म पथ क्या है? गीतामें इन सभी प्रश्नोंका उत्तर संक्षेपमें दे दिया गया है फिर भी गीताका उद्देश्य संन्यासकी नहीं, कर्मकी शिक्षा है। इसीमें गीताकी सबके लिए उपयोगिता है।

प्रथम अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

धृतराष्ट्रने कहा —

हे संजय, धर्मके क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें युद्धके लिये इकट्ठे होकर मेरे पक्ष और पांडव पक्षने क्या किया?

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

संजयने कहा —

उस समय राजा दुर्योधन व्यूहमें बंधी पांडव सेनाको देख आचार्य (द्रोणाचार्य)के समीप जाकर यह बोले।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

देखिये आचार्य! अपने मेधावी शिष्य द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा व्यूहमें बंधी इस विराट् पांडवसेनाको देखिये।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः कौशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुंगवः ॥५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

इस विराट् सेनामें भीम और अर्जुनके समान महाधनुर्धर वीर पुरुष हैं -- युयुधान, विराट् और महारथी द्रुपद,

धृष्टकेतु, चेकितान और महाप्रतापी काशिराज, पुरुजित्, कुंतिभोज और नरपुंगव शैव्य,

विक्रमशाली युधामन्यु और प्रतापवान् उत्तमौजा, सुभद्राके पुत्र अभिमन्यु और दौपदीके पुत्रगण, सभी महायोद्धा हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

हममें जो असाधारण शक्तिवाले हैं, जो मेरी सेनाके नायक हैं, उनके नाम आपको याद दिलाये देता हूं, ध्यान दीजिये।

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥८॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

आप, भीष्म, कर्ण और युद्धमें जीतने वाला कृप, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवा और जयद्रथ,

और भी कई वीर पुरुषोंने मेरे लिए प्राणकी ममता छोड़ दी है। ये सभी युद्धविशारद और नाना तरहके अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

हमारा यह सैन्यबल एक तो अपरिमित है, और फिर भीष्म हैं हमारे रक्षक; उनके दलका सैन्यबल परिमित है, भीम ही उनकी रक्षाके आशास्थल हैं।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

इसलिये आप सभी युद्धमें प्रवेश करनेके जितने स्थल हैं वहां-वहां अपनी निर्दिष्ट सेनाकी टुकड़ीमें रहकर भीष्मकी ही रक्षा कीजिये।

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

दुर्योधनके प्राणोंमें हर्षकी अधिकता बढ़ाकर कुरुवृद्ध महाप्रतापी पितामह भीष्मने उच्च सिंहनादसे रणस्थलको गुंजरित कर, महाप्रतापी शंखनिनाद किया।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

तब शंख, भेरी पणव, आनक और गोमुख आदि युद्धके बाजे अकस्मात् बजने लगे, तुमुल शब्दसे रणक्षेत्र गूंज उठा।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

उसके बाद श्वेत अश्वोंसे युक्त विशाल रथमें खड़े माधव और पांडुपुत्र अर्जुनने अपना-अपना दिव्य शंख बजाया।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

हृषीकेशने पांचजन्य, धनंजयने देवदत्त, भीमकर्मा वृकोदरने पौंड्र नामक महाशंख बजाया।

अनंतविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

कुंतीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनंतविजय शंख तथा नकुल और सहदेवने सुघोष और मणि पुष्पक शंख बजाये।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

उसके बाद धनुर्धर काशीराज, महारथी शिखंडी, धृष्टद्युम्न, अपराजित योद्धा सात्यकि,

द्रुपद, द्रौपदीके पुत्रगण, महाबाहु सुभद्राके पुत्र, सबने चारों ओरसे अपना-अपना शंख बजाया।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथ्वीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

उस महाशब्दने आकाश और पृथ्वीको तुमुल ध्वनिसे प्रतिध्वनित कर धृतराष्ट्रके पुत्रोंके हृदयको बींध दिया।

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥
हृषीकेषं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।

तब शस्त्रोंके चलनेके बाद पांडुपुत्र अर्जुनने धनुष उठाकर हृषीकेशसे यह कहा।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥
यावदेतन्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥२२॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

(शेष अगले अंकमें)

सोसायटी समाचार

वार्षिक अधिवेशन १९८३

श्रीअरविंद सोसायटीका आगामी वार्षिक अधिवेशन अगस्त दर्शनसे एक दिन पहले पाण्डिचेरीमें होगा, साथ ही कार्यकर्ता शिविर भी होगा। इसमें भाग लेनेके लिए सभी सदस्य आमन्त्रित हैं। विस्तृत जानकारी अगले अंकमें आयेगी।

इसके लिये द्वितीय श्रेणीका रेलवे कंसेशन मिल सकता है। यह कंसेशन केवल उन्हींको दिया जायेगा जिनका सोसायटीके रजिस्टर-में नाम दर्ज है। प्रत्येक सदस्यके लिए केवल एक कंसेशन फार्म दिया जायेगा। कंसेशन फार्मके लिए कृपया हमारे सदस्यता विभाग-को संलग्न फार्ममें अपनी सदस्यता संख्या और मान्यता तिथि इत्यादि सभी आवश्यक बातें लिखकर भेजिए।

हम पहलेसे ही सूचित कर दें कि आश्रमकी अतिथिशालाओंकी संख्या अधिक नहीं है इसलिये अधिकतर लोगोंको बाहरके होटलोंमें ठहराया जायेगा जहां संभवतः पर्याप्त सुविधाएं न मिल सकें। अतः सदस्योंसे आशा की जाती है कि वे हमें सहयोग देंगे। पाण्डिचेरी-से बाहरके चेक नहीं स्वीकारे जायेंगे। धनादेश, ड्राफ्ट, चेक इत्यादि 'व्यवस्था विभाग, श्रीअरविंद सोसायटी' के नाम हों।

पदाधिकारियोंके लिए रहनेकी व्यवस्था

श्रीअरविंद सोसायटीके केन्द्रों और शाखाओंके अधिकारी और सक्रिय सदस्य और जो अगस्त अधिवेशनमें भाग लेना चाहते हैं, कृपया संलग्न फार्म भरकर भेज दें। साथ ही अग्रिम धन भी भेज दें। इसके लिए अन्तिम तिथि ३०.६.८३ है। यद्यपि हम सोसायटी के अधिकारियों और कार्यकर्ताओंको प्राथमिकता देनेके इच्छुक हैं लेकिन अगर फार्म समयपर नहीं पहुंचा तो खेद है कि हम उनकी आवश्यकताओंको पूरा न कर सकेंगे।

Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

Sri Aurobindo

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है। तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये भी बहुमूल्य हो जायगा।

—श्रीमां



ठहरनेके लिये आवेदन-पत्र

आवास विभाग
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी–६०५००२

कृपया मेरे/हमारे लिए ठहरनेके लिए स्थान आरक्षित कर दें।

नाम पुरुष / स्त्री उम्र

(बच्चे और बड़े सभीके नाम और उम्र लिखिये)

अवधि

..............तारीखसे ....तक।

हम पाण्डिचेरी.......समय.......को पहुंचेंगे।

ठहरनेके लिए जरूरत है

एक कमरेकी अग्रिम धन
दो के लिए कमरोंकी राशि

धनादेश, ड्राफ्ट, चैक
संख्या —
तारीख :

अगर आश्रमकी किसी अतिथिशालामें स्थान न मिले तो मैं बाहरके होटलमें ठहरनेको तैयार हूं।

अगर मेरे कार्यक्रममें कोई हेर-फेर हुआ तो मैं सूचना दे दूंगा ताकि आरक्षणके कम-से-कम सात दिन पहले आपको सूचना मिल जाय। ऐसा न कर सकनेपर मैं अपने अग्रिम धनकी वापसीकी मांग न करूंगा। निर्धारित समयके २४ घण्टे तक अगर मैं आरक्षित स्थानपर न पहुंचूं तो आरक्षण खत्म हो जायेगा और मैं अग्रिम धनकी मांग नहीं करूंगा।

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

मैं.............शाखा/केन्द्रका सदस्य/कार्यकर्ता/पदाधिकारी हूं। मेरी सदस्यता संख्या... ......है।

नाम :
पता :

हस्ताक्षर

वार्षिक सम्मेलन
अगस्त १९८३

सदस्यता संख्या —

सदस्यका पूरा नाम —

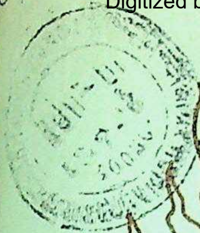
पूरा पता —

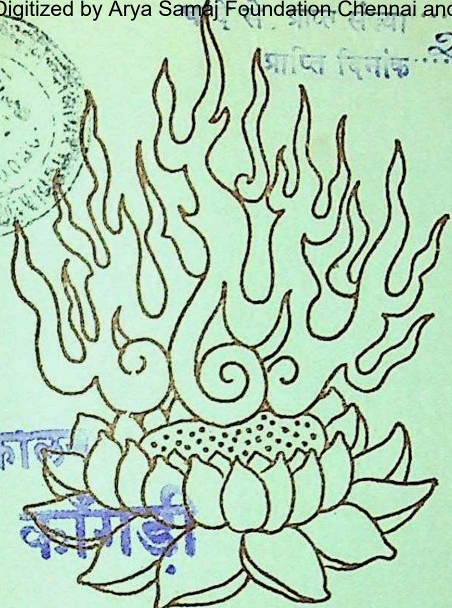
मैं श्रीअरविंद सोसायटी पाण्डिचेरीमें अगस्त १९८३ में होनेवाले अधिवेशनमें भाग लेना चाहूंगा। मेरा निवेदन है कि आप मुझे एक रेलवे कंसेशन फार्म भेज दें।

मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि मेरी मासिक आय १,८०० से अधिक नहीं है। अप्रयुक्त फार्मको १६ अगस्त १९८३ से पहले आपके पास वापस भेज दूंगा।

तारीख —

सदस्यके हस्ताक्षर





उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

'गीता विशेषांक' (२)

जुलाई १९८३ वर्ष १३, अंक १२, पूर्णांक १५६

विषय-सूची

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :
संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

दैनन्दिनी

जुलाई

१. भय हमेशा ही बहुत बुरा सलाहकार होता है।

२. यह न्यूनाधिक सचेतन भय ही है जो सारी शरारत कर रहा है। बिना भयके कुछ नहीं हो सकता।

३. डरो मत, अपनी आस्था बनाये रखो, यह सारी तकलीफें तुम्हें छोड़ जायेंगी।

४. डरना छोड़ दो और चिंताएं भी बंद हो जायेंगी। मेरे बालक-को डर नहीं लग सकता।

५. मेरी सुरक्षा तुम्हारे साथ है और कोई अनिष्ट नहीं घट सकता। लेकिन तुम्हें डरको झाड़कर दूर फेंक देनेका निश्चय करना होगा और तब मेरी शक्ति पूरी तरहसे काम कर सकेगी।

६. अपने-आपको संतप्त मत करो, चिंता मत करो, सबसे बढ़कर समस्त भयको निकाल बाहर करनेका प्रयास करो; भय एक खतरनाक चीज है जो किसी ऐसी चीजको महत्त्व दे सकती है जिसका कोई महत्त्व न हो।

७. कभी किसी कठिनाईके बारेमें मत सोचो — तुम उसे शक्ति देते हो।

८. किसी बाधापर एकाग्रचित न हो; वह उसमें अधिक बल भर देती है।

९. अगर तुम तकलीफके बारेमें सोचते ही रहोगे तो वह बढ़ती चली जायगी। अगर तुम उसपर एकाग्रचित हुए तो वह फूल उठेगी, उसे लगेगा कि उसका स्वागत किया जा रहा है।

लेकिन अगर तुम उसपर कोई ध्यान न दो तो उसे तुम्हारे अंदर कोई रस न रह जायगा और दूर चली जायगी।

१०. सबसे अच्छा उपचार यह है कि अपने बारेमें, अपने विकारों और अपनी कठिनाइयोंके बारेमें सोचना बंद कर दो।

११. आओ, हम **केवल** उस महान् कार्यके बारेमें सोचें, उस आदर्शके बारेमें जिसे श्रीअरविंदने हमें चरितार्थ करनेके लिये दिया है। **उस** कामके बारेमें, **हम** उसे किस तरह करते हैं उसके बारेमें 'नहीं'।
मैं सहायता करूंगी।

१२. अपनी कठिनाइयोंको भूल जाओ। केवल भागवत कार्य करनेके लिये उनके अधिकाधिक पूर्ण यंत्र बननेके बारेमें सोचो और भगवान् तुम्हारी सारी कठिनाइयोंको जीतकर तुम्हें रूपांतरित कर देंगे।

१३. अपनी कठिनाइयोंको भूल जाओ।
अपने-आपको भूल जाओ...
और भगवान् तुम्हारी प्रगतिकी जिम्मेदारी ले लेंगे।

१४. अगर तुम अपनी श्रद्धाको अटल और अपने हृदयको हमेशा मेरे प्रति खुला रखो, तो चाहे जितनी बड़ी कठिनाइयां क्यों न आयें वे तुम्हारी सत्ताको अधिक पूर्ण बनानेमें योगदान देंगी।

१५. अपनी बाहरी परिस्थितियोंसे पीछे हटनेकी कोशिश करो, केवल वही ऐसी चीजोंसे क्षुब्ध हो सकती हैं, और अपने अंदरकी उस शांतिको ढूंढ़ो जो हमेशा इनसे अछूती रहती है।

१६. हमेशा, जब कभी तुम कठिनाइयोंका सामना करते हो और उनपर विजय पा लेते हो तो एक नये आध्यात्मिक उद्घाटन और विजयका आरंभ होता है।

१७. जब तुम कोई प्रगति करना चाहते हो, तो जिस कठिनाइको तुम जीतना चाहते हो वह तुम्हारी चेतनामें महत्त्व और तीव्रतामें दसगुनी बढ़ जाती है। तुम्हें केवल डटे रहना है। बस इतना ही; और वह चली जायगी।

१८. साधना हमेशा कठिन होती है और हर एककी प्रकृतिमें विरोधी तत्त्व होते हैं और प्राणको उसकी गहरी धंसी हुई आदतोंसे छुड़ाना कठिन होता है।

१९. लेकिन यह उसके बारेमें विचलित हो जानेका कोई कारण नहीं है। बस एकदम ठंडे रहकर मानव प्रकृतिकी लगायी हुई सीमाओंके भीतर अपना अच्छे-से-अच्छा करो।
आखिर **पूरी-की-पूरी** जिम्मेदारी 'प्रभु'की है और किसीकी नहीं। इसलिये चिंताकी कोई बात नहीं है।

२०. अपनी भूलोंको पहचानना अच्छा है लेकिन तुम्हें संताप न करना चाहिये। तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिये बल्कि अपने-आपको ठीक करना चाहिये।

२१. तुम्हें इन छोटे-छोटे अनिष्टोंके लिये अपने-आपको संताप न पहुंचाना चाहिये। बहुत शांत बने रहो और ये दुर्घटनाएं आगेसे न होंगी।

२२. तुम और लोगोंके साथ अपने संबंधके ब्यौरोंपर ध्यान देनेकी जगह अपने-आपको भगवान्‌के प्रति समर्पणके लिए ज्यादा मजबूत बनानेमें लगाओ।

२३. बाहरी प्रकृति हमेशा अपूर्णतासे भरी रहती है जबतक कि भागवत उपस्थिति उसका रूपांतर न कर दे। लेकिन इन बातोंसे उदास होना गलत है।

२४. कुछ लोग अपने साथ निराशा और अवसादके विचार लिये फिरते हैं और उनसे परेशान रहते हैं। ये विचार बीमारीकी

तरह छुतहा होते हैं और तुम उन्हें उसी तरह पकड़ लेते हो जैसे किसी और बीमारीको पकड़ते हो।

२५. एक सामान्य नियमके तौरपर जबतक कोई तुमसे मांगने न आये, सलाह न देना ज्यादा अच्छा है लेकिन अगर तुम्हें किसीसे कोई सलाह मिले तो तुम्हें उसपर सावधानीसे विचार करना और उससे लाभ उठानेकी कोशिश करनी चाहिए।

२६. यह सच है कि विवेक अभ्यास और संयमद्वारा बढ़ता है।

२७. तुम्हारे अंदर धीरज और अध्यवसाय होना चाहिए।

२८. औरोंके बारेमें बोलना न केवल उपयोगी नहीं होता, बल्कि हानिकर होता है।

२९. तुम्हें इन छोटी-मोटी चीजोंको बहुत अधिक महत्त्व न देना चाहिए। महत्त्वपूर्ण बात है उस आदर्शको कभी अपनी आंखोंसे ओझल न होने दो जो तुम सिद्ध करना चाहते हो और उसे सिद्ध करनेके लिए अपने अच्छे-से-अच्छे प्रयास करो।

३०. यह कहीं अधिक उपयुक्त होगा कि तुम अपनी वाणीका संयम करो और दूषित और खतरनाक विषयोंपर बोलनेसे इन्कार करो।

३१. बाहरी प्रकृति अज्ञानी, अंधकारपूर्ण और मूर्ख है और निश्चय ही उसकी सत्ताके तरीके और उसके कार्य भी अज्ञानभरे, अंधेरे और मूर्खतापूर्ण हैं।

('श्रीमातृवाणी'से)

पहला अध्याय

(गतांकसे आगे)

अर्जुनने कहा —

हे निष्पाप! दोनों सेनाओंके बीच मेरा रथ खड़ा करो। तब तक मैं युद्धकी इच्छा रखनेवाले अपने विपक्षियोंको देख लूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि मुझे इस रणोत्सवमें किनके साथ लड़ना होगा?

देखूं, युद्धकी इच्छा रखनेवाले ये कौन हैं जो धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधनके प्रिय काम करनेकी इच्छासे युद्धभूमिमें उतर आये हैं।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥२५॥

संजयने कहा —

गुडाकेशकी यह बात सुनकर हृषीकेशने दोनों सेनाओंके बीच उस उत्तम रथको खड़ा करके,

भीष्म, द्रोण और सभी राजाओंके सामने उपस्थित होकर कहा, हे पार्थ! युद्धमें इकट्ठे हुए कौरवोंको देखो।

तत्रापश्यत् स्थितान्पार्थ पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥२६॥

उस युद्ध भूमिमें पार्थने देखा कि पिता, पितामह, आचार्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, सखा, श्वसुर, सुहृद् जितने भी आत्मीय और स्वजन हैं, वे सब दोनों परस्परविरोधी सेनाओंमें खड़े हैं।

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बंधूनवस्थितान्।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥२७॥

उन सब बंधु-बांधवोंको इस प्रकार खड़ा देख कुन्तीके पुत्र गहरी करुणासे भरकर विषाद भरे हृदयसे यह बोले --

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमान् स्वजनान् कृष्ण युयुत्सून् समवस्थितान्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥२८॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक् चैव परिदह्यते ॥२९॥

अर्जुनने कहा —

हे कृष्ण! इन सब अपने लोगोंको युद्धके लिये खड़ा देखकर मेरे शरीरके सभी अंग अवसादमें डूबे जा रहे हैं, मुंह सूखा जा रहा है।

सारे शरीरमें कंपन और रोमांच हो रहा है, गांडीव अवश हाथसे गिरा जा रहा है, त्वचा मानों आगमें जली जा रही है।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥३०॥

मेरे अंदर खड़े रहनेकी शक्ति भी नहीं है, मन मानों चक्कर खा रहा है; हे केशव! मैं सभी अशुभ लक्षण देख रहा हूं।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाधवे।
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥३१॥

युद्धमें अपने लोगोंको मारनेमें कोई श्रेय नहीं देखता; हे कृष्ण! मैं विजय नहीं चाहता, राज्य भी नहीं चाहता, सुख भी नहीं चाहता।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥३२॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥३३॥

बोलो गोविन्द, राज्यसे हमें क्या लाभ होगा ? भोगसे क्या लाभ होगा ? जीवनका आखिर क्या प्रयोजन है ? जिनके लिए राज्य, भोग और जीवनकी इच्छा रखता हूं,

वे ही जीवन और धनको त्यागकर इस युद्धभूमिमें उतर आये हैं— आचार्य, पिता, पुत्र, पितामह,

मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥३४॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ।
निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥३५॥

मामा, ससुर, पोते, साले तथा और भी संबंधी। हे मधुसूदन ! ये यदि मेरा वध भी करें, फिर भी मैं इन्हें मारना नहीं चाहता; त्रिलोकके राज्यके लोभसे भी नहीं, पृथ्वीका आधिपत्य तो दूर-की बात है। हे जनार्दन, धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमारे मनको भला क्या सुख मिल सकता है ?

पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३६॥

ये आततायी हैं, फिर भी इनका वध करनेसे हमारे मनमें पाप ही पनपेगा। धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे अपने लोग हैं, इसलिये हमें इनके मारनेका अधिकार नहीं है। हे माधव ! अपने लोगोंको मारनेसे हम कैसे सुखी होंगे ?

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३७॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३८॥

हो सकता है कि लोभके कारण इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी हो और ये अपने कुलके नाशके दोषको और अपने मित्रका अनिष्ट करनेके महापापको समझ नहीं पा रहे हों,

लेकिन, फिर भी हे जनार्दन! हम कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको समझते हैं, हमें इसका ज्ञान क्यों न हो? हम इस पापसे पीछे क्यों न हटें?

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥३९॥

कुलका नाश होनेसे सारे सनातन कुल-धर्मका विनाश होता है, और धर्मके नाशसे अधर्म सारे कुलपर छा जाता है।

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥४०॥

हे कृष्ण! अधर्म छा जानेपर कुलकी स्त्रियां दुश्चरित्र हो जाती हैं, कुलकी स्त्रियोंके दुश्चरित्र होनेसे वर्णसंकर होता है।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥४१॥

वर्णसंकर कुलको और कुलका नाश करनेवाले लोगोंको नरकमें ले जानेका कारण बनता है, क्योंकि उनके पितर पिंड और जल न मिलनेसे पितृलोकसे नीचे गिर जाते हैं।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४२।

कुलनाशकोंके वर्णसंकरसे उत्पन्न दोषोंके कारण सनातन जातिका धर्म और कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४३॥

मैं प्राचीन समयसे यही सुनता आ रहा हूं कि जिनका कुलधर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्योंको नरकमें जाना निश्चित है।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४४॥

अहो! हमने बहुत बड़े पापका निश्चय किया था कि राज्यके सुखके लोभसे अपनोंको मारनेके लिये तैयार थे।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४५॥

अगर निशस्त्र और प्रतिकार न करनेवाले मुझको, धृतराष्ट्रके पुत्र युद्धमें मार डालें तो इसकी अपेक्षा मेरा अधिक कल्याण होगा।

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४६॥

संजयने कहा —
ऐसा कहकर शोकके आवेगसे व्याकुल होकर अर्जुन युद्धके समय चढ़े हुए धनुष-बाणको छोड़कर रथमें बैठ गये।

संजयको दिव्य चक्षुकी प्राप्ति

गीता महाभारतके महायुद्धके शुरूमें कही गयी थी। अतः इसके पहले श्लोकमें ही राजा धृतराष्ट्र दिव्य दृष्टि-प्राप्त संजयसे युद्धके समाचार पूछते हैं। युद्ध क्षेत्रमें दोनों सेनाएं उपस्थित हैं, वृद्ध राजा यह जाननेके लिए उत्सुक हैं कि उन्होंने सबसे पहले क्या किया। आज अंग्रेजी पढ़े भारतवासियोंकी दृष्टिसे संजयकी दिव्य दृष्टि कविकी कल्पनाके सिवा कुछ और नहीं है। अगर हम कहते

कि अमुक व्यक्तिने दूरदृष्टि (क्लेअरवायांस) और दूरश्रवण (क्ले-अरआडियेंस) प्राप्त कर ली और उसकी सहायतासे कहीं दूर होनेवाले युद्धके रोंगटे खड़े करनेवाले दृश्य और महारथियोंके सिंहनाद सुन पाता था तो बात शायद इतनी अविश्वसनीय न भी होती। जब हम कहते हैं कि व्यास देवने यह शक्ति संजयको प्रदान की थी तो इसे कपोल कल्पना कहकर उड़ा देनेकी प्रवृत्ति होती है। अगर हम कहते कि किसी प्रसिद्ध यूरोपीय वैज्ञानिकने अमुक व्यक्तिको सम्मोहित करके उसके मुंहसे उस दूरकी घटनाके कई वर्णन सुने तो जिन लोगोंने पाश्चात्य सम्मोहन-विद्याका ध्यानसे अध्ययन किया है वे लोग विश्वास कर भी लेते। लेकिन सम्मोहन (हिप्नाटिज्म) योग शक्तिका एक निकृष्ट और वर्जित अंग ही है। मनुष्यके अंदर ऐसी बहुत-सी शक्तियां छिपी हैं जिन्हें प्राचीन सभ्य जातियां जानती और विकसित करती थीं परंतु कलिकालमें पैदा हुए अज्ञान-स्रोतमें वे सब विद्याएं बह गयीं। उनके कुछ अंश थोड़े-से लोगोंमें गुप्त और गोपनीय ज्ञानके रूपमें बचे हुए हैं। स्थूल इन्द्रियोंके परे सूक्ष्म दृष्टि नामक एक सूक्ष्म इन्द्रिय है जिसके द्वारा हम स्थूल इन्द्रियोंके परेकी चीजोंको और उनके ज्ञानको पा सकते हैं। सूक्ष्म वस्तुका दर्शन, सूक्ष्म शब्दका श्रवण, सूक्ष्म गंधका आघ्राण, सूक्ष्म पदार्थ-का स्पर्श और सूक्ष्म आहारका आस्वादन भी कर सकते हैं। सूक्ष्म दृष्टिके चरम परिणामको ही दिव्य चक्षु कहते हैं। उसके प्रभावसे दूरकी, गुप्त या अन्य लोकोंकी सब बातें मालूम हो सकती हैं। परम योग शक्तिके आधार महामुनि व्यास यह दिव्य चक्षु संजयको देनेमें समर्थ थे — इस बातपर अविश्वास करनेका हमारे पास कोई कारण नहीं है। जब हमें पश्चिमके सम्मोहनकारीकी अद्भुत शक्तिपर अविश्वास नहीं होता तो भला व्यासदेवकी इस अनुपम शक्तिपर ही अविश्वास क्यों हो। शक्तिमान्‌की शक्तिका संचार दूसरोंके शरीरमें भी हो सकता है, इतिहासके पन्ने-पन्नेपर, मनुष्य जीवनके प्रत्येक कर्ममें इसके अनगिनत प्रमाण मिल सकते हैं। नेपोलियन, इतो आदि कर्मवीरोंने

उपर्युक्त शक्ति-संचार करके अपने कार्यके लिये सहकारी तैयार किये थे। अतिसामान्य योगी भी कोई सिद्धि प्राप्त करके, कुछ क्षणके लिये या किसी कार्य-विशेषके लिये अपनी सिद्धि औरोंको दे सकते हैं, व्यासदेव तो जगत्‌के श्रेष्ठ मनीषी और असामान्य योगसिद्ध पुरुष थे। वास्तवमें दिव्य चक्षुका अस्तित्व कोई कपोल-कल्पना न होकर वैज्ञानिक सत्य है। हम जानते हैं — आंख नहीं देखती, कान नहीं सुनते, नाक नहीं सूंघती, त्वचा स्पर्श नहीं करती और जीभ स्वाद नहीं लेती। मन ही देखता है, मन ही सुनता है, मन ही सूंघता है, मन ही स्पर्श पाता है और मन ही स्वाद लेता है। दर्शन शास्त्र और मानस शास्त्रमें यह सत्य चिरकालसे स्वीकृत है। सम्मोहनमें वैज्ञानिक परीक्षणद्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि आंखें बंद रहते हुए देखनेका काम जिस किसी नाड़ीद्वारा किया जा सकता है। इससे यही सिद्ध होता है कि आंखें आदि स्थूल इन्द्रियां ज्ञान-प्राप्तिके सुविधाजनक साधन मात्र हैं। स्थूल शरीरके परंपरागत अभ्यासके कारण हम उनके दास बन गये हैं। परंतु वास्तवमें यह ज्ञान शरीर-की किसी भी प्रणालीद्वारा मस्तकतक पहुंचाया जा सकता है — जैसे अंधा आदमी छूकर चीजोंकी आकृति और उनके स्वभावकी मूलरहित धारणा करता है। लेकिन अंधे और सोये हुए आदमीकी दृष्टिमें यह फर्क होता है कि सोया हुआ आदमी मनके अंदर पदार्थोंकी प्रतिमूर्त्ति देखता है। इसे कहते हैं — दर्शन। वास्तवमें हम अपने सामने रखी पुस्तक नहीं देखते, हमारी आंखोंमें पुस्तककी जो प्रतिमूर्त्ति दिखायी देती है उसीको देखकर हमारा मन कहता है कि मैंने पुस्तक देखी है। लेकिन जब सोया हुआ आदमी दूरकी किसी वस्तु या घटनाको देखता या सुनता है तो इससे यह सिद्ध होता है कि किसी वस्तुके बारेमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिये किसी शारीरिक प्रणालीकी आवश्यकता नहीं है — सूक्ष्मदृष्टिके द्वारा भी देखा जा सकता है। लंदनके किसी कमरेमें बैठकर उस समय एडिनबरामें जो घटना चल रही है, मनके अंदर उसे देख लिया — इस तरहके

देखनेवालोंकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। इसीको सूक्ष्मदृष्टि कहते हैं। सूक्ष्मदृष्टि और दिव्यदृष्टिमें यही भेद है कि सूक्ष्मद्रष्टा मनके अंदर अदृष्ट वस्तुकी प्रतिमूर्त्तिको देखता है, जब कि दिव्यचक्षु द्वारा हम उसी दृश्यको मनके अंदर न देखकर शारीरिक चक्षुके सामने देखते हैं, चिंतनके मूलमें वह शब्द न सुनकर शारीरिक कानसे उसे सुनते हैं। इसका एक सामान्य दृष्टान्त है स्फटिक (क्रिस्टल) या स्याहीके अंदर समसामयिक घटना देखना। लेकिन दिव्य चक्षु प्राप्त योगीके लिये इस तरहके साधनोंकी कोई आवश्यकता नहीं होती। वह इस शक्तिके विकासके लिये, बिना किसी साधनके, देशकालके बंधनको खोलकर दूसरे देश या दूसरे कालकी घटनाको जान सकता है। देशके बंधनको तोड़नेके हमने बहुतसे प्रमाण देखे हैं लेकिन कालके बंधनको भी तोड़ा जा सकता है, मनुष्य तीनों कालोंको देख सकता है, इसके अधिक संख्यामें और संतोषजनक प्रमाण अबतक जगत्‌के सामने नहीं आये हैं। लेकिन अगर देशके बंधनोंको तोड़ना संभव है तो हम यह नहीं कह सकते कि कालके बंधनको तोड़ना असंभव बात है। जो हो, व्यासदेव-द्वारा दिये गये दिव्यचक्षुसे संजयने हस्तिनापुरमें बैठे-बैठे ही मानों कुरुक्षेत्रमें खड़े होकर, धार्तराष्ट्र और पांडव समूहको आंखोंसे देखा, दुर्योधनकी उक्तिको, भीष्म पितामहके महान् सिंहनादको, पांचजन्यके कुरुध्वंसघोषक महाशब्द और गीताके अर्थके द्योतक श्रीकृष्ण और अर्जुन संवादको अपने कानोंसे सुना।

हमारे मतके अनुसार महाभारत भी रूपक नहीं है, कृष्ण और अर्जुन भी कविकी कल्पना नहीं हैं और न गीता ही आधुनिक तार्किक या दार्शनिकका सिद्धांत ही है। इसलिये गीताकी कोई भी बात असंभव या युक्तिके विरुद्ध नहीं है — इसे सिद्ध करना होगा इसीलिये दिव्यचक्षुको पानेकी बातकी इतने विस्तारसे व्याख्या की है।

दुर्योधनका वाक्चातुर्य

संजय युद्धकी पहली अवस्थाका वर्णन शुरू कर रहे हैं। दुर्योधन पांडवसेनाद्वारा बनाये व्यूहको देखकर द्रोणाचार्यके निकट आया। वह क्यों द्रोणाचार्यके निकट गया इसकी व्याख्या करना जरूरी है। भीष्म सेनापति थे, उनसे युद्धकी बात करना उचित था, लेकिन कूटबुद्धि दुर्योधनके मनमें भीष्म पितामहपर विश्वास न था। भीष्म पांडवोंसे प्रेम करते थे। हस्तिनापुरके शांति दलके नेता थे, अगर पांडवोंका धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ युद्ध होता तो भीष्म कभी अस्त्र न उठाते। लेकिन कुरुवंशके पुराने और समान वीरतावाले शत्रु यानी पांचालजातिको, जिन्हें साम्राज्यका लोभ था — देखकर कुरुवंशके प्रधान पुरुष, योद्धा और राजनीतिक भीष्मने सेनापतिका पद लिया और अपने बाहुबलसे अपनी जातिके चिररक्षित गौरव और प्रधानताकी अंततक रक्षा करनेका बीड़ा उठाया। दुर्योधन, अपने-आपमें असुर स्वभावका था। ईर्ष्या-द्वेष ही उसके हर कामका हेतु और कारण था, इसलिये वह कर्तव्यपरायण महापुरुषके मनका विचार जाननेमें असमर्थ था, उसे इस बातपर कतई विश्वास न था कि कर्तव्य-बुद्धिद्वारा अपने प्राणोंसे भी प्रिय पांडवोंको युद्धभूमिमें मारनेका संकल्प कठोर तपस्वीके अंदर है। परामर्शके समय अपने देशका हित करनेवाले अपना मत प्रकट करके अपनी जातिको अन्याय और अहितसे दूर करनेकी जी जानसे कोशिश करते हैं और अगर उस अन्याय और अहितको एक बार लोगोंने स्वीकार कर लिया तो अपने मतकी उपेक्षा करके, अधर्मयुद्धमें भी अपनी जातिकी रक्षा और शत्रुका नाश करते हैं। भीष्मने भी यही पक्ष अपनाया। यह बात भी दुर्योधनकी समझके परे थी। इसलिये वह भीष्मके पास न जाकर द्रोणके पास गया। द्रोण व्यक्तिगत रूपसे पांचाल राजाके घोर शत्रु थे, पांचाल देशके राजकुमार धृष्टद्युम्नने गुरु द्रोणका वध करनेका निश्चय किया था इसलिये दुर्योधनने सोचा

कि इस व्यक्तिगत वैरकी याद दिलाकर द्रोणचार्य शांतिके पक्षपातका एकदमसे त्याग कर पूरे उत्साहके साथ युद्ध करेंगे। दुर्योधनने स्पष्ट रूपसे यह बात नहीं कही। केवल धृष्टद्युम्नके नामका उल्लेख भर किया, उसके बाद भीष्मको भी संतुष्ट करनेके लिये उन्हें कुरु राज्यका रक्षक और विजयकी आशाका स्वरूप कहा। पहले उसने विपक्षके मुख्य योद्धाओंके नामका उल्लेख किया, फिर अपनी सेनाके कुछ नेताओंके नाम गिनाये, सबके नहीं, द्रोण और भीष्मका नाम लेना ही उसकी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये काफी था, लेकिन उसी उद्देश्यको छिपानेके लिये उसने और चार-पांच नाम गिना दिये। उसके बाद कहा, "हमारी सेना बहुत बड़ी है, भीष्म हैं हमारे सेनापति। पांडवोंकी सेना हमारी सेनाकी अपेक्षा कम है। उनकी आशा है भीमका बाहुबल, इसलिये हमारी विजय भला क्यों न होगी? जब भीष्म हमारा मुख्य भरोसा हैं सबको, शत्रुके आक्रमणसे उनकी रक्षा करनी होगी, उनके रहते हमारी विजय निश्चित है।" कई लोग 'अपर्याप्त' शब्दका उल्टा अर्थ करते हैं, यह तर्कसंगत नहीं है, दुर्योधनकी सेना पांडवोंकी अपेक्षा बड़ी थी, लेकिन उस सेनाके नेता भी वीरतामें किसीसे कम न थे। तब अपनी प्रशंसा करनेवाले दुर्योधन, अपने बलकी निन्दा कर भला निराशा क्यों पैदा करेंगे? भीष्म दुर्योधनके मनका विचार और उसकी बातके पीछे छिपे अर्थको समझ गये, इसीलिये उसकी शंकाको मिटानेके लिये उन्होंने सिंहनाद और शंखनाद किया। इससे दुर्योधनके हृदयमें हर्षकी लहर दौड़ गयी। उसने सोचा, चलो, मेरा उद्देश्य सफल हुआ, अब द्रोण और भीष्म दुविधा दूर करके युद्ध करेंगे।

पूर्व सूचना

जैसे ही भीष्मके गगनभेदी शंखनादने युद्धभूमिको हिला दिया उसी समय उस विशाल कौरव सेनामें चारों तरफसे युद्धके बाजे बजने लगे और युद्धके उल्लाससे रथके लोग झूमने लगे। दूसरी तरफ पांडवोंके श्रेष्ठ वीर, और उनके सारथी श्रीकृष्णने युद्धकी घोषणाके उत्तरमें शंखनाद बजाया और युधिष्ठिरसे लेकर पांडवोंके सभी वीरोंने अपने-अपने शंख बजाकर सेनाके हृदयमें रणचण्डीको जगाया। उस महान् शब्दने पृथ्वी और आकाशको गुंजाकर मानों धृतराष्ट्रके पुत्रोंके हृदयको बेध दिया। इसका यह मतलब नहीं कि भीष्म इत्यादि इस शब्दसे डर गये, वे वीरपुरुष, रणचण्डीके आह्वानसे भला डरने क्यों लगे? इस कथनसे कविने पहले, शब्दके अति-भीषण शारीरिक वेगवान् संचारका वर्णन किया, जिस तरह कई बार वज्रनादके सुननेवालोंको ऐसा लगता है मानों उनके सिरके दो टुकड़े हो गये, उसी तरह सारी युद्धभूमिमें फैलनेवाले महाशब्दका संचार हुआ। और यह शब्द मानों धृतराष्ट्रके पुत्रों आदिके निधनकी भावी घोषणा थी, जिन हृदयोंको पांडव अपने शास्त्रोंसे बेध देंगे, पहलेसे ही उनके शंखनादने उनको बेध दिया। युद्ध शुरू हुआ। दोनों तरफसे शस्त्र चलने लगे, ऐसे समय अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, "आप मेरा रथ दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा कीजिये, मेरे अंदर यह देखनेकी इच्छा जाग रही है कि कौन-कौन हमारे विपक्षमें हैं, कौन-कौन दुर्बुद्धि दुर्योधनके प्रिय कार्य करनेके लिये इकट्ठे हुए हैं, मुझे किसके साथ युद्ध करना होगा?" अर्जुनके मनमें यह विचार था कि मैं ही पांडवोंका आशास्थल हूं, मेरे द्वारा ही विपक्षके मुख्य-मुख्य योद्धा जायेंगे, इसलिये देखूं वे कौन हैं। यहांतक अर्जुनके अंदर पूरा-पूरा क्षात्रिय भाव था, उसके अंदर करुणा या दुर्बलताका कोई चिह्न तक नहीं था। भारतके कई श्रेष्ठ वीर विरोधी सेनामें मौजूद थे,

सभीको मारकर अर्जुन अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको एकछत्र राज्य देना चाहते थे। लेकिन श्रीकृष्ण जानते थे कि अर्जुनके मनमें दुर्बलता है, अगर अभी उसके चित्तको शुद्ध नहीं किया, तो किसी भी समय वह अचानक चित्तसे निकलकर बुद्धिपर अधिकार जमा सकती है और तब पांडवोंका विशेष अनिष्ट हो सकता है। शायद सर्व-नाश ही हो जाये। इसी कारण श्रीकृष्णने ऐसी जगह लाकर रथको खड़ा किया जहांसे अर्जुन अपने प्रियजन भीष्म, द्रोण इत्यादि और सभी कौरव राजाओंको देख पाये, फिर वे उससे बोले, "देखो, इकट्ठी कौरवजातिको देखो।" यह याद रखना चाहिये कि अर्जुन स्वयं कुरु जातिके थे, कुरुवंशके गौरव थे वे, उनके सभी आत्मीय, प्रिय, बचपनके सभी सहचर उसी कुरु जातिके थे — इससे श्रीकृष्ण द्वारा कहे तीन सामान्य शब्दोंके अर्थ और भावको हृदयंगम किया जा सकता है। तब अर्जुनने देखा कि जिनको मारकर युधिष्ठिरका एकछत्र राज्य स्थापित होगा वह और कोई नहीं अपने ही प्रिय आत्मीय गुरु, बंधु, भक्ति और प्रेमके पात्र हैं। और उन्होंने देखा सारे भारतका क्षत्रिय वंश आपसमें प्रिय संबंधसे बंधा हुआ है, फिर भी एक दूसरेको मारनेके लिये इस भीषण युद्धक्षेत्रमें उतर आया है।

विषादका मूल कारण

अर्जुनके खेदका मूल कारण क्या था ? कई लोग उसके इस विषादकी प्रशंसा करते हैं और श्रीकृष्णको कुमार्गका प्रदर्शक और अधर्मको माननेवाला कहकर उनकी निन्दा करते हैं। ऐसे लोगोंकी धारणा होती है कि ईसाई धर्मका शांतिभाव, बौद्ध धर्मका अहिंसाभाव और वैष्णवधर्मका प्रेमभाव ऊंचा और श्रेष्ठ धर्म है, युद्ध और मनुष्योंकी हत्या पाप है, भाई और गुरुकी हत्या करना महापाप है — इसी धारणाके कारण वे ऐसी असंगत बातें करते हैं। लेकिन यह सारी

आधुनिक धारणा द्वापर युगके महावीर पांडवके मनमें नहीं उठी, अहिंसा-भाव श्रेष्ठ है या युद्ध, नरहत्या, भ्रातृहत्या या गुरुहत्या महापाप है इसलिये युद्धसे पीछे हटना चाहिये, इन सब बातोंका कोई चिह्न भी अर्जुनकी बातमें नहीं दिखायी देता। हां, उन्होंने इतना जरूर कहा कि गुरुजनकी हत्या करनेकी अपेक्षा भिक्षावृत्तिको अपनाना ज्यादा श्रेयस्कर है, यह भी कहा कि बधु-बांधवोंकी हत्याका पाप हमें लगेगा, लेकिन यह बात उन्होंने कर्मका स्वभाव देखकर नहीं कही, कर्म-फल देखकर कही इसीलिये श्रीकृष्णने उसके दुखको दूर करनेके लिये यह शिक्षा दी कि कर्मका फल नहीं देखना चाहिये, कर्मके स्वभावको देखकर यह निश्चय करना चाहिये कि यह कर्म उचित है या अनुचित। अर्जुनके मनका सबसे पहला भाव यह था कि ये हमारे आत्मीय, गुरुजन, बंधु, बचपनके सखा हैं, सभी स्नेह, भक्ति और प्रेमके पात्र हैं। इनकी हत्या कर एकछत्र राज्य पा लेनेपर वह राज्यभोग कभी सुखद न होगा बल्कि जीवन भर दुःख और पश्चात्तापकी अग्निमें जलना पड़ेगा। बंधु-बांधवरहित पृथ्वीपर राज्य करना किसीके लिये वांछनीय नहीं है। अर्जुनके मनमें दूसरा भाव यह था कि प्रियजनकी हत्या करना धर्मके विरुद्ध है, जिनसे द्वेष होता है उनकी युद्धमें हत्या करना क्षत्रियका धर्म है। तीसरा भाव यह था कि स्वार्थके लिये, इस तरह कार्य करना धर्मके विरुद्ध और क्षत्रियके लिये अनुचित है। चौथा भाव था कि भाईके विरोध, भाईकी हत्यासे कुलनाश और जातिनाश होगा। इस तरहका बुरा परिणाम लाना कुल और जातिके रक्षक, वीर क्षत्रियके लिये महापाप है। अर्जुनके विषादके मूलमें इन चार भावोंसे भिन्न और कोई भाव न था। इसको न समझकर श्रीकृष्णका उद्देश्य और उनकी शिक्षाके अर्थको नहीं समझा जा सकता। ईसाई धर्म, बौद्ध-धर्म और वैष्णव-धर्मके साथ गीताके धर्मके विरोध या सामंजस्यकी बात बादमें करेंगे। पहले अर्जुनके कथनके भावका सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण कर, उसके मनके भावको दिखायें।

वैष्णवी मायाका आक्रमण

अर्जुनने पहले अपने विषादका वर्णन किया। स्नेह और करुणाके अचानक विद्रोहसे महावीर अर्जुन अभिभूत और परास्त हो गये, उनके शरीरका सारा बल क्षण भरमें सूख गया, सारे अंग शिथिल पड़ गये, खड़े रहनेकी भी शक्ति न रही, बलवान् हाथ गांडीव पकड़नेमें भी असमर्थ हो गये, शोकके प्रबल वेगसे ज्वरके लक्षण दीखने लगे, शरीरमें दुर्बलता आ गयी, त्वचा मानों आगमें जलने लगी, मुंह अंदर सूखने लगा, सारा शरीर जोरोंसे कांपने लगा, मन मानों इस आक्रमणसे चक्कर खाने लगा। इस तरहका वर्णन पढ़कर पहले तो हम इसे कविकी तेजस्वी कल्पनाके विकासका अतिरेक कहकर केवल उस कविताके सौंदर्यका रस लेकर शांत हो जाते हैं, लेकिन अगर हम बारीकीसे जांच करें तो इस वर्णनका गूढ़ अर्थ प्रकट होता है। अर्जुनने कुरुवंशके साथ पहले भी युद्ध किया था लेकिन इस तरहका विचार उनके अंदर कभी नहीं उठा, अब श्रीकृष्णकी इच्छासे अचानक उनके अंदर उत्पात होने लगा। मनुष्य जातिकी बहुत-सी प्रबल वृत्तियां क्षत्रिय शिक्षा और ऊंची आंकाक्षाके नीचे दबकर और उनसे बंधकर अर्जुनके हृदयमें गुप्त रूपसे उपस्थित थीं। निग्रहसे चित्तकी शुद्धि नहीं होती, विवेक या शुद्ध बुद्धिकी सहायतासे, संयमसे चित्तकी शुद्धि होती है। निग्रहकी वृत्तिका विचार सभीमें होता है, इस जन्ममें या दूसरे जन्ममें वह एक-न-एक दिन चित्तसे उठकर बुद्धिपर आक्रमण करके उसपर विजय प्राप्त करके समस्त कर्मको अपने विकासके अनुसार आगे बढ़ाता है। इसी कारण जो इस जन्ममें दयावान् होता है वह दूसरे जन्ममें निष्ठुर होता है, जो इस जन्ममें कामी और दुश्चरित्र होता है वह दूसरे जन्ममें साधु और पवित्र मनवाला होता है। निग्रह न करके विवेक और विशुद्ध बुद्धिकी सहायतासे वृत्तियोंको निकाल बाहर कर चित्तको शुद्ध करना चाहिये। इसीको संयम कहते हैं। जबतक ज्ञानके प्रभावसे तमो-

भाव दूर न हो जाय तबतक संयम असंभव है। इसीलिये श्रीकृष्ण अर्जुनके अज्ञानको दूर करके, सोये हुए विवेकको जगाकर, चित्त-शुद्धि करनेके इच्छुक हैं। लेकिन जिन वृत्तियोंको निकाल बाहर करना है उन्हें जबतक चित्तमें ऊपर उठाकर बुद्धिके सामने उपस्थित न किया जाय तबतक बुद्धि भी इन्हें निकालनेका अवसर नहीं पाती। और फिर युद्धमें ही अंदर स्थित दैत्य और राक्षस विवेकद्वारा नष्ट किये जाते हैं और तब विवेक बुद्धिको मुक्त करता है। योगकी आरंभिक अवस्थामें चित्तके अंदर बंद सभी कुप्रवृत्तियां साधककी बुद्धिपर बड़े जोरसे आक्रमण करती हैं और नये साधकको भय और शोकसे परेशान कर देती हैं। पश्चिममें इसीको शैतानका प्रलोभन कहते हैं, यही मार (कामदेव)का आक्रमण है। यह भय और शोक अज्ञानसे पैदा होते हैं। यह प्रलोभन शैतानका नहीं, भगवान्का है। अंतर्यामी जगद्गुरु इन सब प्रवृत्तियोंको साधकपर आक्रमण करनेके लिये बुलाते हैं और यह उसके अमंगलके लिये नहीं, मंगलके लिये, चित्त शुद्धिके लिये होता है। श्रीकृष्ण जहां बाह्य जगत्में शरीरसे अर्जुनका सखा और सारथि थे वहां अंतरमें उनके अशरीरी ईश्वर और अन्तर्यामी पुरुषोत्तम भी थे। उन्होंने ही इन सब गुप्त प्रवृत्तियों और भावोंको एक साथ बड़े वेगसे अर्जुनकी बुद्धिपर फेंका था। इस भयंकर आघातसे अर्जुनकी बुद्धि चक्कर खाने लगी और साथ ही कविके वर्णनके अनुसार मानसिक विकार अर्जुनके स्थूल शरीरमें प्रकट हुए। प्रबल और अप्रत्याशित शोक और दुःख शरीरमें इसी तरह प्रकट होते हैं, यह तो हम जानते ही हैं। यह मनुष्य जातिके अनुभवसे बाहरकी चीज नहीं है। भगवान्की वैष्णवी मायाने अखण्ड बलसे क्षण भरमें अर्जुनको अभिभूत कर दिया। इसी कारण यह प्रबल विकार पैदा हुआ। अधर्म जब दया, प्रेम आदि कोमल धर्मका रूप धारण करके आता है, अज्ञान ज्ञानका छद्मवेश पहन लेता है, गाढ़ा अंधकारपूर्ण तमोगुण जब उज्ज्वल और विशद पवित्रताका रूप धारण करके कहता है, "मैं सात्विक

हूं, मैं ज्ञान हूं, मैं धर्म हूं, मैं भगवान्‌का प्रिय दूत हूं, पुण्यरूप और पुण्यप्रवर्तक हूं" तब यह समझ लेना चाहिये कि भगवान्‌की वैष्णवी माया बुद्धिके अंदर प्रविष्ट हुई है।

वैष्णवी मायाका लक्षण

इस वैष्णवी मायाके मुख्य अस्त्र हैं दया और स्नेह। मानव जातिका प्रेम, स्नेह और शुद्ध वृत्तियां नहीं हैं। शारीरिक और प्राणिक कोषोंके विकारके कारण पवित्र प्रेम और दया कलुषित और विकलांग हो जाते हैं। चित्त वृत्तियोंका निवास स्थान है, प्राण भोगका क्षेत्र है, शरीर कर्मका यंत्र और बुद्धि चिन्तनका राज्य है। शुद्ध अवस्थामें इन सबकी प्रवृत्ति स्वतंत्र होती है, एक दूसरेका विरोध नहीं करती। चित्तमें भाव उठता है, शरीर उसके अनुसार कर्म करता है, बुद्धिमें उसके अनुसार विचार आते हैं, प्राण उसी भाव, कर्म और चिंतनका आनंद लेता है। जीव साक्षी रूपसे प्रकृतिकी इस आनंदमयी क्रीड़ाको देखकर खुश होता है। अशुद्ध अवस्थामें प्राण शारीरिक या मानसिक भोगके लिए लालायित रहता है और शरीरको कर्मयंत्र न बनाकर भोगका साधन बना लेता है। शरीर भोगमें आसक्त होकर बार-बार शारीरिक भोगकी मांग करता है और शारीरिक भोगकी कामनामें फंस कर चित्त निर्मल भाव ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाता है। कलुषित भावनासे भरा भाव चित्त-सागरको क्षुब्ध कर देता है और वासनाका कोलाहल बुद्धिको अभिभूत करके व्याकुल कर डालता है और उसे बहरा बना देता है। अब बुद्धि निर्मल, शांत, और भ्रान्तिरहित चिंतनके लिए असमर्थ हो जाती है और असत्यके प्रबल हो जानेके कारण अंधी बन जाती है। बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारण जीव भी ज्ञानशून्य होकर साक्षी भाव और निर्मल आनंद भावसे वंचित होकर अपने-आपको आधारके

साथ एक मान लेता है और यह सोचकर कि 'मैं चित्त हूं,' 'मैं बुद्धि हूं' इस भ्रांत धारणाके कारण शारीरिक और मानसिक सुख-दुखके साथ सुखी और दुखी होता है। इस सारी गड़बड़का मूल है अशुद्ध चित्त, अतः चित्तशुद्धि उन्नतिका प्रथम सोपान है। यह अशुद्धि केवल राजसिक और तामसिक वृत्तिको कलुषित करके ही चुप नहीं हो जाती बल्कि सात्त्विक वृत्तिको भी कलुषित करती है। "अमुक मनुष्य मेरे शारीरिक और मानसिक भोगकी सामग्री है, वह मुझे अच्छा लगता है, मैं उसीको चाहता हूं, उसके विरहसे मुझे क्लेश होता है" — यह है अशुद्ध प्रेम, शरीर और प्राणने चित्तको कलुषित करके निर्मल प्रेमको विकृत कर दिया है। इस अशुद्धिके कारण बुद्धि भी भ्रांत होकर कहती है, "अमुक मेरी स्त्री है, भाई, बहन, सखा, आत्मीय, मित्र है, उसीसे प्यार करना होगा। यही प्रेम पुण्यमय है, यदि मैं इसके विपरीत काम करूं तो वह पाप होगा क्रूरता होगी, अधर्म होगा।" इस तरहके अशुद्ध प्रेमके फलस्वरूप इतनी बलवती दया पैदा होती है कि प्रियजनोंको कष्ट देने, प्रियजनोंका अनिष्ट करनेकी अपेक्षा स्वयं धर्मको तिलांजलि देना श्रेयस्कर मालूम होता है। अंतमें इस 'दया'को चोट न पहुंचे इसलिए धर्मको अधर्म कहकर अपनी दुर्बलताका समर्थन किया जाता है। इस प्रकारकी वैष्णवी मायाका प्रमाण अर्जुनकी बात-बातमें मिलता है।

वैष्णवी मायाकी क्षुद्रता

अर्जुनकी पहली बात यह थी कि ये हमारे स्वजन हैं, आत्मीय हैं, स्नेहके पात्र हैं, इनकी हत्यासे हमारा क्या हित हो सकता है? विजेताका गर्व, राजाका गौरव, धनीका सुख? मुझे नहीं चाहिए ये अर्थहीन स्वार्थ। लोगोंको राज्य, भोग और जीवन किसलिए प्रिय होते हैं? हमारे

स्त्री, पुत्र, कन्या हैं, हम इन नाते रिश्तेदारोंको सुखसे रख सकें, बंधु-बांधवोंके साथ सुख और ऐश्वर्यसे दिन बितायें — इसी चाहसे सुख और महत्त्व लोभके विषय बन जाते हैं। लेकिन हम जिनके लिए सुख और महत्त्व चाहते हैं यहां तो वही हमारे शत्रु बनकर हमारे सामने युद्धमें उपस्थित हैं। वे हमारा बध करनेके लिए तो तैयार हैं पर हमारे साथ मिलकर राज्य और सुख भोगनेके लिए तैयार नहीं हैं। वे भले मुझे मार डालें पर मैं उन्हें कभी न मारूंगा। अगर मुझे इनकी हत्यासे तीनों लोकोंका राज्य भी मिल जाय तो भी मैं यह काम न कर सकूंगा। पृथ्वीका निर्विरोध राज्य तो उसके आगे राख है। स्थूलदर्शी लोग —

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।

और —

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥

इन उक्तियोंसे मोहित हो जाते हैं और कहते हैं, आह अर्जुनका भाव कितना महान्, उदार, निःस्वार्थ और प्रेमभरा है। रक्तसे सने भोग और सुखकी अपेक्षा उन्हें पराजय, मरण और चिरदुःख स्वीकार है। लेकिन अगर हम अर्जुनके मनोभावकी परीक्षा करें तो पता चलेगा कि अर्जुनका मनोभाव बहुत क्षुद्र, दुर्बलताको प्रकट करनेवाला और नपुंसकों जैसा है। कुलके हितके लिए, प्रियजनोंके प्रेमवश, 'करुणा'से पिघलकर, रक्तपातके भयसे व्यक्तिगत स्वार्थका त्याग अनार्यके लिए महान्, उदार भाव हो सकता है, आर्यके लिए तो वह मध्यम कोटिका भाव है। उसके लिए तो धर्म और भागवत प्रीतिके लिए किया गया स्वार्थ त्याग ही उत्तम भाव है। आर्यके लिए तो कुलके हितके लिए, प्रियजनोंके प्रेमवश, करुणाके अधीन, रक्तपातके भयसे धर्मका परित्याग अधम भाव है। धर्म और भगवान्‌की

प्रीतिके लिए स्नेह, करुणा और भयका दमन करना ही सच्चा आर्य-भाव है। अर्जुन अपने क्षुद्र भावका समर्थन करनेके लिए, स्वजनोंकी हत्याका पाप दिखाकर फिरसे बोले: "कौरवोंका वध करनेसे हमें कौन-सा सुख मिलेगा? मनकी कौन-सी तुष्टि मिलेगी? वे हमारे बंधु-बांधव हैं, नाते-रिश्तेदार हैं। वे हमारे साथ अन्याय और शत्रुता करते हैं, राज्य छीन लेते हैं, और सत्यका गला घोंटते हैं। फिर भी उनकी हत्यासे हमें पाप ही लगेगा, सुख न मिलेगा।" अर्जुन यह भूल गये कि वे धर्मयुद्धमें लगे हैं, अपने निजी या युधिष्ठिरके सुखके लिए नहीं। श्रीकृष्णने उन्हें कौरवोंकी हत्याके लिए नहीं भेजा है। इस युद्धका उद्देश्य है धर्मकी स्थापना, अधर्मका नाश, क्षत्रियधर्म पालन, भारतमें धर्मपर आधारित एक महान् साम्राज्यकी स्थापना। अर्जुनका कर्तव्य था सारे सुखोंको तिलांजलि देकर, आजीवन दुःख और यंत्रणा भोगकर भी इस उद्देश्यको पूरा करना।

कुलनाशकी बात

लेकिन अपनी दुर्बलताकी पुष्टिके लिए अर्जुनने एक और उच्चतर युक्ति खोज निकाली, इस युद्धसे कुलनाश और जातिनाश होगा, इसलिए यह युद्ध धर्मयुद्ध नहीं, अधर्मयुद्ध है। भाइयोंकी हत्यासे, मित्रद्रोहसे, यानी जो स्वभावसे हमारे अनुकूल और सहायक हैं, उन्हींका अनिष्ट करना है, और फिर, अपने ही कुल अर्थात्, जिस कुरुनायक क्षत्रिय वंश और जातिमें दोनों पक्षोंका जन्म हुआ है उन्हींका विनाश करना है। प्राचीन कालकी जातियां प्रायः रक्तके संबंधसे बनी थीं। एक महान् कुल बढ़कर जाति बन जाता था, जैसे भोजवंश, कुरुवंश इत्यादि भारत जातिमें कुलविशेषकी प्रत्येक बलशाली जाति बन गये थे। कुलके अंदरके अंतर्विरोध और परस्पर अनिष्टकी भावनाको ही अर्जुनने मित्रद्रोह कहा। एक तो मित्रद्रोह नैतिक दृष्टिसे महापाप है, उसपर अर्थनीतिकी दृष्टिसे इस मित्रद्रोहमें एक

महान् दोष यह है कि कुलक्षय इसका निश्चित परिणाम है। सनातन कुलधर्मका अच्छी तरह पालन करना कुलकी उन्नति और उसकी स्थितिका कारण है, गृहस्थ जीवन और राजनीतिके क्षेत्रमें पितर जिस महान् आदर्श और कर्मश्रृंखलाकी स्थापना और रक्षा करते आ रहे हैं, उसी आदर्शकी हानि या श्रृंखलाके ढीले पड़ जानेसे कुलका पतन हो जाता है। जबतक कुल सौभाग्यशाली और बलवान् रहता है तबतक ये आदर्श और कर्मश्रृंखला बचे रहते हैं, कुलके क्षीण और दुर्बल हो जानेसे, तमोभावके फैल जानेसे धर्ममें बहुत शिथिलता आ जाती है, उसके फलस्वरूप अराजकता छा जाती है, दुर्नीति इत्यादि दोष कुलमें आ जाते हैं, कुलकी स्त्रियां दुश्चरित्र हो जाती हैं, इससे कुलकी पवित्रता नष्ट हो जाती है, नीच जाति और नीच चरित्र लोगोंके सहवाससे महान् कुलमें वर्णसंकर पैदा होते हैं। इस तरह पितरोंकी प्रकृत या शास्त्रानुकूल संततिके नाश होनेसे कुलनाशकों-को नरक भोगना पड़ता है और अधर्मके फैलने और वर्णसंकरसे पैदा हुई नैतिक अधोगति और नीच गुणके फैलाव और अराजकता-के दोषसे सारे कुलका भी विनाश होता है और वह नरकमें जाता है। कुलनाशसे जातिधर्म और कुलधर्म दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। जातिधर्मका अर्थ है सारी कुल-समष्टिमें जो महान् जाति होती है उसका पुरुष परंपरासे चला आया सनातन आदर्श और कर्मश्रृंखला। इसके बाद अर्जुन फिरसे अपने पहले सिद्धांत और कर्तव्यकर्मके बारेमें अपना निश्चय बता कर ठीक युद्धके समय गाण्डीव छोड़कर रथमें बैठ गये। कविने इस अध्यायके अंतिम श्लोकमें इशारा करके यह बात बतलायी कि दुखसे उसे बुद्धि-भ्रम हो गया था इसीलिए अर्जुन इस तरह क्षत्रियके लिए अनुचित और अनार्य तरीकेसे आच-रण करनेके लिए कृतसंकल्प थे।

विद्या और अविद्या

अर्जुनके कुलविनाशके विषयकी बातमें हम एक बड़े और ऊंचे विचार-की छाया देख सकते हैं, इस विचारके साथ जो महान् प्रश्न जुड़ा है, उसकी आलोचना करना गीताके व्याख्याकारके लिए बहुत जरूरी है। अगर हम गीताके केवल आध्यात्मिक अर्थको ही ढूंढ़े, अपने जातीय, गृहस्थ और व्यक्तिगत सांसारिक कर्म और आदर्शको गीतामें कहे हुए धर्मसे पूरी तरहसे काट दें तो हम उस विचार और उस प्रश्नकी महानता और आवश्यकताको अस्वीकार करेंगे और गीतामें बताए धर्मके सर्वव्यापी विस्तारको छोटा कर देंगे। शंकरसे लेकर जिन-जिन लोगोंने गीताकी व्याख्या की, वे सब संसारसे मुंह मोड़े हुए दार्शनिक, अध्यात्मविद्याके ज्ञानी या भक्त थे, उन्होंने गीतामें आवश्यक ज्ञान और विचारोंको ढूंढ़ कर उनके अपने लिए जो जरूरी था उसीसे लाभ उठाया और संतुष्ट हो गये। जो एक साथ ज्ञानी, भक्त और कर्मी हैं वही गीताकी गूढ़तम शिक्षाके अधिकारी हैं। गीताके वक्ता श्रीकृष्ण ज्ञानी और कर्मी थे, गीताके पात्र, अर्जुन भक्त और कर्मी थे, उनके ज्ञानके चक्षु खोलनेके लिए श्रीकृष्णने कुरुक्षेत्रमें यह शिक्षा दी। गीताके उपदेशका कारण एक महान् राजनीतिक संघर्ष था, उस संघर्षमें अर्जुनको महान् राजनीतिक उद्देश्यकी सिद्धिके यंत्र और निमित्तके रूपमें युद्धके लिए तैयार करना ही गीताका उद्देश्य था, युद्धक्षेत्र ही उसकी शिक्षाका स्थल था। श्रीकृष्ण श्रेष्ठ राज-नीतिज्ञ और योद्धा थे। धर्मके राज्यकी स्थापना करना ही उनके जीवनका मुख्य उद्देश्य था, अर्जुन भी क्षत्रिय राजकुमार था, राजनीति और युद्ध उसके स्वभावोचित कर्म थे। गीताके उद्देश्यको हटाकर, गीताके वक्ता, पात्र और उसके उपदेशके कारणको अलग कर गीताकी व्याख्या करनेसे कैसे काम चल सकता है भला?

मानव संसारमें चिरकालसे पांच मुख्य आधार मौजूद हैं। व्यक्ति,

परिवार, वंश, जाति और मानवसमष्टि। इन्हीं पांच आधारोंपर धर्म खड़ा है। धर्मका उद्देश्य है भगवत्प्राप्ति। भगवान्को पानेके दो रास्ते हैं, विद्याको पाना और अविद्याको भी पाना -- ये दोनों ही आत्मज्ञान और भगवद्दर्शनके उपाय हैं। विद्याका रास्ता है ब्रह्मकी अभिव्यक्ति, अविद्यामय प्रपंचका त्याग करके सच्चिदानन्दकी प्राप्ति या परब्रह्ममें लय। अविद्याका मार्ग है हर जगह आत्मा और भगवान्के दर्शन करके, ज्ञानमय, मंगलमय शक्तिमय परमेश्वरको बंधु, प्रभु, गुरु, पिता, माता, पुत्र, कन्या, दास, प्रेमी, पति, और पत्नीके रूपसे प्राप्त करना। विद्याका उद्देश्य है शांति, अविद्याका उद्देश्य है प्रेम। लेकिन भगवान्की प्रकृति विद्यामयी और अविद्यामयी दोनों है। अगर हम केवल विद्याके मार्गपर चलें तो हम विद्यामय ब्रह्मको प्राप्त होंगे, अगर केवल अविद्याके मार्गपर चलें तो अविद्यामय ब्रह्मको प्राप्त होगें; जो विद्या और अविद्या दोनोंको पा लेते हैं वही संपूर्ण भावसे वासुदेवको पाते हैं, वे विद्या और अविद्यासे परे हैं। जो विद्याके अंतिम लक्ष्य तक पहुंच गये हैं उन्होंने ही विद्याकी सहायतासे अविद्याको पा लिया है। ईश उपनिषद्में इस महान् सत्यको बहुत स्पष्ट रूपसे व्यक्त किया गया है, जैसे --

अन्धः तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥
अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥
विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

"जो अविद्याके उपासक हैं, वे अंधे, अज्ञानरूपी तममें प्रवेश करते हैं। वे धीर ज्ञानी जिन्होंने हमें ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया है उनके मुखसे यह सुना है कि विद्या और अविद्या दोनोंका फल मिलता है।

ये दोनों फल स्वतन्त्र हैं। जो विद्या और अविद्या दोनोंके ज्ञानको पा सकें हैं, वे ही अविद्याद्वारा मृत्युको पारकर विद्याद्वारा अमृतमय, पुरुषोत्तमके आनंदका उपभोग करते हैं।''

सारी मानव जाति अविद्याका भोग कर, विद्याकी दिशामें बढ़ रही है। यही स्वाभाविक क्रम-विकास है। जो श्रेष्ठ, साधक, योगी, ज्ञानी, भक्त कर्म योगी हैं वे इस महान् अभियानके अग्रगामी सैनिक हैं, वे दूरके उस गंतव्य स्थानपर तेजीसे जाकर लौट आते हैं और मानवजातिको सुसंवाद सुनाते हैं, उसका पथ-प्रदर्शन करते हैं, चारों तरफ शक्ति फैलाते हैं। भगवान्के अवतार या विभूति आकर रास्तेको सरल बना देते हैं। अनुकूल अवस्थाकी रचना करते हैं और बाधाको नष्ट कर देते हैं। अविद्यामें विद्या, भोगमें त्याग, संसारमें संन्यास, आत्माके अंदर सभी प्राणी, सभी प्राणियोंके अंदर आत्मा, भगवान्में जगत्, जगत्में भगवान् —— यही उपलब्धि असली ज्ञान है। यही मानव जातिका अपने गंतव्य स्थानकी ओर जानेका निर्दिष्ट पथ है। आत्मज्ञानकी संकीर्णता ही उन्नतिकी मुख्य बाधा है, उस संकीर्णताका मूल कारण है देहात्मकबोध और स्वार्थबोध, इसलिए, दूसरेको अपने जैसा देखना उन्नतिकी पहली सीढ़ी है। मनुष्य पहले व्यक्ति होकर रहता है, अपनी व्यक्तिगत शारीरिक और मानसिक उन्नति, भोग और शक्तिको बढ़ानेमें लगा रहता है। मैं देह हूं, मैं मन हूं, मैं प्राण हूं, देहका बल, सुख और सौंदर्य, मनकी तेजी, आनंद और स्वच्छता, प्राणका तेज, योग और प्रफुल्लता —— ये ही जीवनके उद्देश्य और उन्नतिकी परम अवस्था हैं, —— यह मनुष्यका पहला और आसुरिक ज्ञान है। उसकी भी उपयोगिता है; पहले देह, मन और प्राणको विकसित और पूर्ण बनाकर, उसके बाद पूरी तरहसे विकसित उस शक्तिको दूसरोंकी सेवामें लगाना उचित है। इसीलिये आसुरिक शक्तिका विकास मानव जातिकी सभ्यताकी पहली अवस्था है; पशु, यक्ष, राक्षस, असुर, पिशाचतक मनुष्यके मन, कर्म और चरित्रमें लीला करते और पनपते हैं। उसके बाद मनुष्य

आत्मज्ञानका विस्तार करके दूसरेको अपने जैसा देखना शुरू करता है, दूसरोंकी सेवामें स्वार्थको डुबाना सीखता है। पहले परिवारको ही अपने जैसा देखता है, पत्नी और संतानके प्राणोंकी रक्षाके लिए अपने प्राण त्याग देता है, पत्नी और संतानके सुखके लिए अपने सुखकी जलांजलि देता है। उसके बाद वंश या कुलको अपने जैसा देखता है, कुलकी रक्षाके लिए अपने प्राणत्याग करता है, स्वयंकी, पत्नी, संतानकी बलि देता है। कुलके सुख, गौरव और उन्नतिके लिए अपने और स्त्री और बच्चोंके सुखकी जलांजलि देता है। उसके बाद जातिको अपने जैसा देखता है, जातिकी रक्षाके लिए प्राणत्याग करता है, अपनी और स्त्री और बच्चोंकी, कुलकी बलि देता है — जिस तरह चित्तौड़के राजपूत कुलने सारी राजपूत जातिकी रक्षाके लिए बार-बार अपनी इच्छासे अपनी बलि चढ़ाई थी — वह जातिके सुख और गौरवकी वृद्धिके लिए अपनी, स्त्री और बच्चोंकी, कुलके सुख और गौरवकी, वृद्धिकी जलांजलि देता है। उसके बाद समस्त मानवजातिको अपने समान देखता है, मानवजातिकी उन्नतिके लिए प्राणत्याग करता है, अपनी, पुत्र कलत्रकी, कुल और जातिकी बलि देता है। मानवजातिके सुख और उन्नतिके लिए अपनी, पुत्र-कलत्रकी, कुल और जातिके सुख, गौरव और वृद्धिकी जलांजलि देता है। इस भांति दूसरेको अपने रूपमें देखना, दूसरेके लिए अपनी और अपने सुखकी बलि देना बौद्ध धर्म और बौद्ध धर्मसे जन्मे ईसाई धर्मकी मुख्य शिक्षा है। यूरोपकी नैतिक उन्नति इसी पथपर आगे बढ़ी है। प्राचीन यूरोपीयने व्यक्तिको परिवारके लिए डुबा देना, परिवारको कुलके लिए डुबा देना सीखा था। आधुनिक यूरोपीयने कुलको जातिमें डुबाना सीखा है। अब उनमें यह मान्यता है कि जातिको मानव समाजमें डुबाना कठिन आदर्श है। टालस्टाय आदि मनीषी और समाजवादी, अराजकतावादी आदि नये आदर्शोंके अनुयायी इस आदर्शको कार्यमें परिणत करनेके लिए उत्सुक हैं—

यहींतक यूरोपकी दौड़ है। वे अविद्याके उपासक, सच्ची विद्यासे परिचित नहीं हैं। अंधं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

भारतके मनीषियोंने विद्या और अविद्या दोनोंको प्राप्त किया है। वे जानते हैं कि अविद्याके पांच आधारोंसे भिन्न विद्याके आधार भगवान् हैं; उन्हें जाने बिना अविद्याको भी नहीं जाना जाता, प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः उन्होंने केवल औरोंको अपने समान न देखकर, आत्मवत् परदेहेषु अर्थात्, अपने अंदर और दूसरेके अंदर समान रूपसे भगवान्के दर्शन किये हैं। अपना उत्कर्ष करूंगा, अपनी समृद्धि करनेसे परिवारकी समृद्धि होगी, परिवारकी समृद्धिसे कुलकी समृद्धि होगी। राष्ट्रका उत्कर्ष करूंगा, राष्ट्रकी समृद्धिसे सारी मानवजातिकी समृद्धि होगी। यह ज्ञान आर्योंकी सामाजिक व्यवस्था और शिक्षाकी जड़ोंमें बसा है। व्यक्तिगत त्याग तो आर्योंकी मज्जामें बसा है, इसका उन्हें अभ्यास है, परिवारके लिए त्याग, कुलके लिए त्याग, समाजके लिए त्याग, मानवजातिके लिए त्याग, भगवान्के लिए त्याग। हमारी शिक्षामें जो दोष या न्यूनताएं दिखायी देती हैं ये कुछ ऐतिहासिक कारणोंके फल हैं जैसे राष्ट्रको हम समाजके भीतर देखते हैं। समाजके हितके लिए हम व्यक्तिके और परिवारके हितको छोड़ सकते हैं किंतु राष्ट्रकी राजनीतिके जीवन विकासको हमारे यहां धर्मके अंतर्गत मुख्य अंग नहीं माना गया है। हमें पश्चिमसे इस शिक्षाका आयात करना पड़ा। हमारी प्राचीन शिक्षामें महाभारत, गीता, राजस्थानका इतिहास, रामदासका दासबोध -- यह शिक्षा हमारे देशकी ही थी। विद्याकी बहुत अधिक उपासनासे, अविद्याके भयसे हम उस शिक्षाको विकसित नहीं कर पाये, उस दोषके कारण तमग्रस्त होकर राष्ट्रधर्मसे च्युत होकर भयंकर दासता, दुख, और अज्ञानमें जा गिरे। हमने अविद्या भी नहीं पायी और विद्यासे भी हाथ धो बैठे — **ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।**

श्रीकृष्णका राजनीतिक उद्देश्य

मानव समाजके क्रमिक विकासमें कुल और राष्ट्र भिन्न-भिन्न हैं। प्राचीनकालमें भारत और दूसरे देशोंमें भी यह भिन्नता इतनी खिली नहीं थी। कई बड़े-बड़े कुलके इकट्ठे होनेसे एक राष्ट्र खड़ा हो जाता था। वे विभिन्न कुल या तो एक ही पूर्व पुरुषके वंशधर होते थे या भिन्न वंशके होनेपर भी, अपने प्रेमके संबंधकी दृढ़ स्थापनाके कारण एक वंशके ही माने जाते थे। पूरा भारत एक बड़ा राष्ट्र नहीं बन पाया लेकिन सारे देशमें जो बड़ी-बड़ी जातियां छायी हुई थीं उनके बीच एक ही सभ्यता, एक ही धर्म एक ही संस्कृत भाषा और विवाह इत्यादिके संबंध प्रचलित थे। फिर भी प्राचीन कालसे एकताका प्रयास चला आ रहा है। कभी कुरु, कभी पांचाल, कभी कौशल, तो कभी मगध जाति देशकी नेता या सार्वभौम राजा बनकर राज्य करती थी, लेकिन प्राचीन कुलधर्म और कुलकी मुक्ति-प्रियता एकताके लिए इतनी कठिन बाधाएं पैदा करती थीं कि यह प्रयास कभी बहुत समयतक टिक नहीं पाया। भारतमें एकताका प्रयास, एकछत्र साम्राज्यका प्रयास, पुण्यकर्म और राजाके कर्तव्य-कर्मके रूपमें माना जाता था। एकताका यह स्रोत इतना बलशाली हो गया था कि चेदिराज शिशुपाल जैसा तेजस्वी और प्रचण्ड क्षत्रिय भी युधिष्ठिरद्वारा राज्यकी स्थापनाको पुण्यकर्म कह कर उसमें सहयोग देनेके लिए सहमत हो गया। इसी तरहके एकत्व, साम्राज्य और धर्मराज्यकी स्थापना करना ही श्रीकृष्णका राजनीतिक उद्देश्य था। पहले मगधराज जरासंधने यही प्रयास किया था, लेकिन उसकी शक्ति अधर्म और अत्याचारपर टिकी थी, इसलिए उसे क्षणिक समझकर श्रीकृष्णने भीमद्वारा उसकी हत्या करवाकर उसके इस प्रयासको विफल बनाया। श्रीकृष्णके कार्यके लिए मुख्य बाधा थी गर्वीला और तेजस्वी कुरुवंश। कुरुजाति बहुत दिनोंसे भारतका नेतृत्व करनेवाली जाति रही थी,

अंग्रेजीमें जिसे (हेगेमोनी) कहते हैं, यानी बहुत सी एक समान स्वाधीन जातियोंके बीच प्रमुख, नेतृत्व करनेवाली जाति। कुरु-जातिका इसपर पुरुष परंपरागत अधिकार हो गया था। श्रीकृष्ण यह जानते थे कि जबतक इस जातिका बल और गर्व अक्षुण्ण बना रहेगा तबतक भारतवर्षमें कभी एकताकी स्थापना नहीं होगी। इसीलिए वे कुरुजातिका नाश करनेके लिए कटिबद्ध हो गये। लेकिन श्रीकृष्ण यह बात भी नहीं भूले थे कि भारतके साम्राज्यमें कुरुजातिका पुरुष परंपरागत अधिकार था; धर्मानुसार जो चीज जिसे मिलनी चाहिए उससे व्यक्तिको वंचित करना अधर्म है इस-लिए न्यायसंगत रूपसे जो कुरुजातिके राजा और प्रधान थे, उन युधिष्ठिरको उन्होंने भावी सम्राट्के पदके लिए मनोनीत किया। श्रीकृष्ण परम धार्मिक थे, समर्थ होते हुए भी, स्नेहके वशमें आकर अपने प्रिय यादव कुलको कुरुजातिके स्थानपर बिठानेका प्रयास नहीं किया, पाण्डवोंमें ज्येष्ठ युधिष्ठिरकी अवहेलना कर, अपने प्रियतम सखा अर्जुनको उस पदपर नियुक्त नहीं किया। लेकिन, केवल उम्र या पूर्व अधिकार देखनेसे अनिष्टकी संभावना होती है, गुण और सामर्थ्य भी देखना होता है। अगर राजा युधिष्ठिर अधार्मिक, अत्याचारी या अशक्त होते तो श्रीकृष्ण किसी दूसरे पात्रको ढूंढ़नेके लिए विवश होते। जिस तरह युधिष्ठिर वंशक्रममें, न्यायके अनु-सार अधिकारी और देशके पूर्व प्रचलित नियमके अनुसार सम्राट् बननेके उपयुक्त थे, उसी तरह गुणमें भी वे उस पदके सच्चे अधिकारी थे। उनकी अपेक्षा तेजस्वी और प्रतिभावान् और भी कई बड़े-बड़े वीर राजा थे, लेकिन केवल बल और प्रतिभासे तो कोई राज्यका अधिकारी नहीं बन जाता। राजाको धर्मरक्षा करनी होती है, प्रजारंजन करना होता है, देशरक्षा करनी होती है। पहले दो गुण युधिष्ठिरमें अतुलनीय थे, वे धर्मपुत्र थे, वे दयावान्, न्याय-परायण, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ और सत्यकर्म करनेवाले थे, प्रजाको बहुत प्रिय थे। दूसरे जिन आवश्यक गुणोंकी उनमें कमी थी, उसे पूरा

करनेके लिए उनके दो वीर भाई भीम और अर्जुन समर्थ थे। पंचपाण्डवके जैसा पराक्रमी राजा या वीर पुरुष उस समयके भारतमें नहीं था। इसीलिए जरासन्धको मारकर कांटेको उखाड़ फेंक श्रीकृष्णके परामर्शसे राजा युधिष्ठिरने देशकी प्राचीन प्रणालीका अनुसरण कर राजसूय यज्ञ किया और वे देशके सम्राट् हुए।

श्रीकृष्ण धार्मिक और राजनीति जानने वाले थे। अगर देशके धर्म, देशकी प्रणाली, देशके सामाजिक नियमके अंदर कर्म करके उनके महान् उद्देश्यके सिद्ध होनेकी संभावना होती तो वे धर्मकी हानि उस प्रणालीके विरुद्ध आचरण, उस नियमको भला तोड़ते क्यों? बिना किसी कारण इस तरह राष्ट्रक्रांति और समाजक्रांति करना देशके लिए हानिकर होता है। इसी कारण उन्होंने पहले पुरानी प्रणालीकी रक्षा करके उद्देश्यकी सिद्धिके लिए प्रयास किया, लेकिन देशकी प्राचीन प्रणालीमें यह दोष था कि उनके प्रयासके सफल हो जानेपर भी उस फलके स्थायी होनेकी संभावना बहुत कम थी। जिनके पास युद्धका बल अधिक था, वे राजसूय यज्ञ करके सम्राट् तो बन सकते थे लेकिन उनके वंशधरोंके तेजके मन्द पड़नेसे ही वह मुकुट उनके मस्तकसे खुद ही खिसक कर गिर पड़ता था। जो तेजस्वी वीर जातियां उनके पिता या पितामहके वंशमें हुई थीं, वे भला अब विजयीके पुत्र या पौत्रकी अधीनता क्यों स्वीकार करतीं? यानी उस साम्राज्यका मूल वंशगत अधिकार नहीं, राजसूय यज्ञ अर्थात् असाधारण बलवीर्य ही था, जिनका अधिक बलवीर्य था वे ही यज्ञ करके सम्राट् बन जाते थे। इसलिए साम्राज्यके स्थायी भावकी कोई आशा न थी। इस तरह थोड़े समयके लिए ही प्रधानता हो सकती है। इस प्रथामें दूसरा दोष यह था कि अचानक सम्राट्के बलके बढ़ जाने और प्रधानता प्राप्त करनेसे देशके गर्वीले, असहिष्णु, तेजस्वी क्षत्रियोंके हृदयमें ईर्ष्याकी आग भड़क उठती थी, उनके मनमें सहज ही इस विचारके उठनेकी संभावना रहती कि ये क्यों प्रधान हों, हम क्यों नहीं। स्वयं युधिष्ठिरके अपने कुलके क्षत्रियोंने इसी ईर्ष्यासे उसके

विरोधमें आचरण किया, उसके चाचाकी संतानोंने इस ईर्ष्याके कारण बड़े कौशलके साथ उसे पदच्युत और निर्वासित किया। द्वेष-की प्रणालीका यह दोष कुछ ही दिनोंमें प्रकट हो गया।

श्रीकृष्ण जैसे धार्मिक थे, वैसे ही राजनीति जाननेवाले भी थे। वे कभी भी दोषी, अहितकर या समयकी अनुपयोगी प्रणाली, उपाय या नियमको बदलनेमें पीछे न हटते थे। वे अपने युगके प्रधान क्रांति-कारी थे। राजा भूरिश्रवाने श्रीकृष्णकी भर्त्सना करते समय उस समयके पुराने मतके कई भारतवासियोंके आक्रोशको व्यक्त करते हुए कहा था कि कृष्ण और कृष्णद्वारा चलाया हुआ यादवकुल कभी भी धर्म-विरुद्ध आचरण करने या धर्मको विकृत करनेमें हिचकिचाता नहीं, जो कृष्णके परामर्शसे काम करेगा वह निश्चित रूपसे तुरंत पापमें जा गिरेगा। क्योंकि, पुरानी रीतिसे चिपके हुए रक्षा करनेवालोंके मतके अनुसार नया प्रयास ही पाप है। श्रीकृष्ण युधिष्ठिरके पतनसे समझ गये -- उन्हें समझना क्या था, वे तो भगवान् थे, पहले-से ही जानते थे कि द्वापर युगकी उपयोगी प्रथा कलिमें कभी सुरक्षित रखने योग्य नहीं होती। इसलिए उन्होंने फिर उस तरहका प्रयास नहीं किया, कलिकी उचित भेददण्ड प्रधान राजनीति-का अनुसरण करके गर्वीली, घमण्डी, क्षत्रिय जातिके बलका नाशने करके, आने वाले साम्राज्यको निष्कंटक करनेका प्रयास किया। उन्होंने कुरुके पुराने, समकक्ष राष्ट्र पांचालको कुरुवंशका ध्वंस करनेके लिए प्रेरित किया, जितनी जातियां कुरुओंसे द्वेषके कारण युधिष्ठिरके प्रेमद्वारा या धर्मराज्य या एकत्वकी आकांक्षासे खींच सकती थी, उन सभीको इस पक्षमें खींच लाये और उन्हें युद्धमें लगा दिया। संधिका जो प्रयास हुआ उसमें श्रीकृष्णकी आस्था न थी, वे जानते थे कि संधिकी संभावना नहीं है, संधिके हो जानेपर भी वह स्थायी नहीं रह सकती, फिर भी धर्म और राजनीतिके लिए उन्होंने संधिका प्रयास किया। इसमें संदेह नहीं कि कुरु-क्षेत्रका युद्ध श्रीकृष्णकी राजनीतिका फल था, और कुरुध्वंस क्षत्रिय-

ध्वंस और निष्कंटक साम्राज्य और भारतकी एकताकी स्थापना थी उनका उद्देश्य। धर्मराज्यकी स्थापनाके लिए जो युद्ध होता है वही है धर्मयुद्ध, उसी धर्मयुद्धके ईश्वरद्वारा नियत विजेता, दिव्यशक्तिसे अनुप्राणित महारथी थे अर्जुन। अर्जुनके अस्त्रके त्याग करनेसे, श्रीकृष्णका राजनीतिक परिश्रम पंगु हो जाता, भारतमें एकता नहीं आ पाती, और तुरंत देशके भविष्यमें भयंकर दुष्परिणाम आ जाते।

भ्रातृवध और कुलनाश

अर्जुनने जो कुछ कहा, कुलके हितकी आशासे कहा, स्नेहके कारण जातिके हितकी चिंता उसके मनसे दूर हो गयी। कुरुवंशके हितकी बात सोचनेमें भारतके हितकी बात रह गयी, अधर्मके भयसे वे धर्मको जलांजलि देनेको कटिबद्ध हो गये थे। यह बात सबको मालूम है कि स्वार्थके लिए भाईकी हत्या करना महापाप है, लेकिन भाईके प्रेमके वशमें आकर जातिके अनर्थमें सहायक होना, जातिके हितमें मुंह मोड़ना, यह तो और भी बड़ा पाप है। अगर अर्जुन शस्त्रका त्याग करते तो अधर्मकी जीत होती, दुर्योधन भारतका प्रधान राजा और सारे देशका नेता बनकर जातिके चरित्र और क्षत्रिय कुलके आचरणको अपने बुरे दृष्टांतसे कलुषित कर देता, भारतके सभी प्रबल, पराक्रमी कुल स्वार्थ, ईर्ष्या और विरोधप्रियताकी प्रेरणासे एक दूसरेके विनाशके लिए उद्यत हो जाते, तब धर्मसे प्रेरित ऐसी कोई एकछत्र राजशक्ति न रहती जो देशको एकत्र और नियन्त्रित कर उसकी शक्तिको इकट्ठा करके उसकी सुरक्षा कर पाती। ऐसी स्थितिमें जो विदेशी आक्रमण रुद्ध समुद्रकी तरह भारतपर टूटकर उसे बहा देनेके लिए तैयार खड़ा था, वह असमय आकर आर्य सभ्यताको नष्ट-भ्रष्ट करके जगत्के भावी हितकी आशाको जड़से उखाड़ फेंकता। श्रीकृष्ण और अर्जुनद्वारा स्थापित राज्यके नाशके

दो हजार वर्ष बाद भारतमें जिस राजनीतिक उत्पातकी शुरूआत हुई थी, वह उसी समय शुरू हो जाता।

लोग कहते हैं कि अर्जुनने जिस अनिष्टके डरसे यह आपत्ति उठायी थी, कुरुक्षेत्रके युद्धके फलस्वरूप ठीक वही अनिष्ट पैदा हो गया। कुरुक्षेत्रके युद्धका फल हुआ भ्रातृवधसे कुलनाश जातिनाशतक। कुरुक्षेत्रका युद्ध कलिके आरंभका कारण बना। यह सच है कि इस युद्धमें भयंकर भ्रातृवध हुआ। लेकिन प्रश्न यह है कि और किस उपायसे श्रीकृष्णका महान् उद्देश्य सिद्ध होता? इसीलिए श्रीकृष्णने संधि प्रस्तावनाकी विफलताको जानते हुए भी संधि करनेके लिए बहुत कोशिश की, यहांतक कि पांच गांव वापस मिल जानेपर भी युधिष्ठिर युद्ध न करते, पैर रखने भरकी जगह मिल जानेपर भी श्रीकृष्ण धर्मराज्यकी स्थापना कर सकते थे। लेकिन दुर्योधनका यह दृढ़ निश्चय था कि युद्धके बिना सूईकी नोक बराबर भी जमीन नहीं दूंगा। जब सारे देशका भविष्य युद्धके फलपर निर्भर हो तो यह कहकर कि इस युद्धमें भाईकी हत्या होगी, महान् कर्मसे पीछे हटना ही अधर्म है। परिवारके हितको, राष्ट्रके हितमें, जगत्के हितमें डुबाना होता है; भाईके स्नेह, परिवारके प्रेमके मोहमें आकर करोड़ों लोगोंका सर्वनाश नहीं किया जा सकता, करोड़ोंके भावी सुख या दुःख मोचनको नष्ट नहीं किया जा सकता, इससे व्यक्ति और कुल नरकमें जाते हैं।

यह बात भी सच है कि कुरुक्षेत्रके युद्धमें कुलनाश हुआ था, इस युद्धके फलस्वरूप महाप्रतापी कुरुवंशका एक तरहसे लोप हो गया लेकिन, अगर कुरुजातिके लोपसे सारे भारतकी रक्षा हुई, तो कुरुध्वंशसे हानि नहीं, लाभ ही हुआ है। जिस तरहसे पारिवारिक प्रेमकी माया होती है, उसी तरह कुलकी भी माया होती है। देशभाईको कुछ नहीं कहेंगे, देशवासीका विरोध नहीं करेंगे, अनिष्ट करनेपर भी, आततायी होनेपर भी, देशका सर्वनाश करनेपर भी वे हमारे भाई हैं, स्नेही हैं, हम चुपचाप सह लेंगे; हमारे बीच इस

वैष्णवी मायासे उत्पन्न जो अधर्म धर्मका स्वांग रच कर, बहुतोंकी बुद्धि भ्रष्ट कर देता है, वह इस कुलकी मायाके मोहसे उत्पन्न होता है। बिना कारण या स्वार्थके लिए, बिना किसी प्रयोजन या आवश्यकताके देशभाईका विरोध और उसके साथ कलह करना अधर्म है। लेकिन जो देशभाई सबकी मांके प्राण ले रहा हो या उसका अनिष्ट करनेपर उतारू हो उसका अत्याचार चुपचाप सह लेना, उस मातृहत्या या अनिष्ट आचरणको बढ़ावा देना और भी बड़ा पाप है। जब शिवाजी मुसलमानोंकी सहायता करनेवाले अपने देशभाइयोंको मारने गये तो अगर उस समय कोई कहता आह! क्या करते हो? ये देशभाई हैं, चुपचाप सह लो, मुसलमान महाराष्ट्रपर अधिकार करते हैं तो करें, मराठे मराठेके बीच प्रेम बना रहे यही काफी है तो क्या बात एकदमसे हास्यकर नहीं लगती? जब अमेरिकाके लोगोंने दासप्रथा हटानेके लिए देशमें विरोध और गृहयुद्ध उत्पन्न कर, हजारों देशभाइयोंके प्राण लिये, तो क्या उन्होंने कोई कुकर्म किया था? कई बार देश भाइयोंका विरोध, देशभाइयोंका युद्धमें वध करना ही जातिकी भलाई और जगत्‌की भलाईका एकमात्र उपाय होता है। इससे कुलनाशकी आशंका होनेपर भी जाति और जगत्‌की भलाईसे मुंह नहीं मोड़ा जा सकता। अगर कुलकी रक्षा करना राष्ट्रकी भलाईके लिए आवश्यक हो तो समस्या अधिक जटिल हो जाती है। महाभारत युगमें भारतमें राष्ट्रकी प्रतिष्ठा नहीं हुई थी, सब कुलको ही मनुष्यजातिका केंद्र मानते थे। इसीलिए भीष्म, द्रोण इत्यादि जो पुरातन विद्याकी खान थे, उन्होंने पाण्डवके विरोधमें युद्ध किया। वे जानते थे कि धर्म पाण्डवोंके पक्षमें है, यह भी जानते थे कि महान् साम्राज्यकी स्थापनाके लिए पूरे भारतको एक केंद्रमें बांधनेकी आवश्यकता थी। लेकिन वह यह भी समझते थे कि कुल ही धर्मकी प्रतिष्ठा और जातिका केंद्र है, कुलके नाशसे धर्मकी रक्षा और जातिकी स्थापना करना असंभव

(शेष अगले अंकमें)

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है। तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये भी बहुमूल्य हो जायगा।

—— श्रीमां



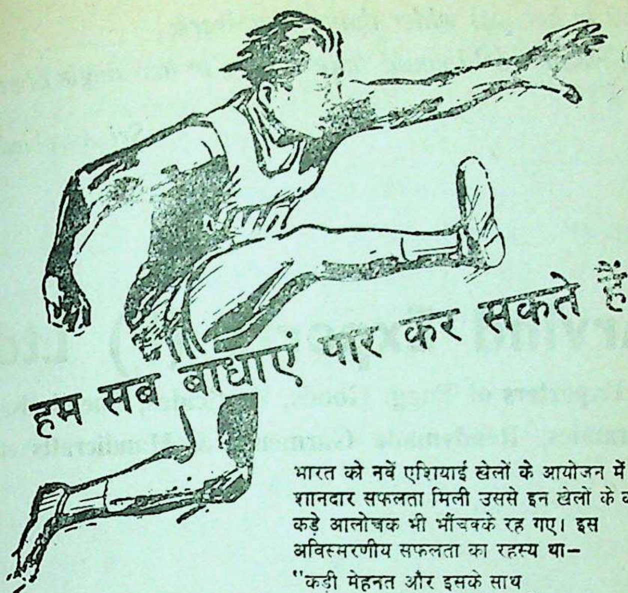


Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo







भारत को नवें एशियाई खेलों के आयोजन में जो शानदार सफलता मिली उससे इन खेलों के कड़े से कड़े आलोचक भी भौंचक्के रह गए। इस अविस्मरणीय सफलता का रहस्य था–

"कड़ी मेहनत और इसके साथ अनुशासन तथा अपने उद्देश्य की सही और साफ जानकारी" जैसा कि प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने नये बीस सूत्री कार्यक्रम के श्रीगणेश के समय राष्ट्र का आवाहन करते हुए कहा था।

इसी भावना से काम करते हुए हमने देखते ही देखते भव्य स्टेडियम तैयार कर लिए और एशियाई खेलों का आयोजन अत्यन्त सुचारु ढंग से और कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया। जिस तरह हमने एशियाई खेलों को सफल बनाया, उसी तरह हम अपनी पंचवर्षीय योजना और नये बीस सूत्री कार्यक्रम को भी सफल बना सकते हैं।



आइए हम सब मिल कर एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में जुट जाएं

डीएवीपी 82/581

Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

Sri Aurobindo

[श्रीअरविंद सोसायटीके सदस्योंका वार्षिक अधिवेशन कलकत्ते के पंजीकृत दफ्तरमें ९ जुलाई १९८३ को होगा। उसकी विस्तृत सूचना इसी अंकके साथ भेजी जा रही है।]

१९८३ का वार्षिक अधिवेशन

पिछले अंकमें हमने सूचना दी थी कि श्रीअरविंद सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन पांडिचेरीमें अगस्तमें होगा। इसमें सभी सदस्य आमन्त्रित हैं। रेलवे कंसेशन और रहनेकी व्यवस्थाकी जानकारी अग्निशिखाके पिछले अंकमें छपी थी।

सदस्यों और अतिथियोंके लिये ८ से १२ अगस्ततक कार्यक्रम होंगे जिनमें योग और साधनासंबंधी भाषण तथा कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम होंगे। भाषण अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओंमें होंगे।

सोसायटीके केंद्रों और शाखाओंके सक्रिय कार्यकर्ताओं और पदाधिकारियोंकी बैठक ११ और १२ अगस्त को होगी। जो इसमें भाग लेना चाहते हैं वे कृपया पहली अगस्त १९८३ तक हमें सूचना दे दें।

१३ और १४ अगस्तको सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन होगा। इसका मुख्य विषय होगा 'हमारा भावी कार्य'।

केंद्रोंकी सूचना

बम्बईकी श्रीअरविंद सोसायटी शाखामें हमारे अन्ताराष्ट्रिय विद्यालयके प्रो० मनोज दासके तीन भाषण हुए जिनके विषय थे— मृत्युका रहस्य, पुनर्जन्मका प्रश्न और मृत्युपर विजय।

कलकत्तेमें श्रीअरविंद सांस्कृतिक केंद्र — लक्ष्मी हाऊसमें विभिन्न कार्यकलापोंके साथ-साथ श्रीमती संयुक्ता पाणिग्रहीकी ओडिसी नृत्यकी कक्षाएं भी शुरू हो गयीं। वहां शैक्षिक और सांस्कृतिक दोनों दिशाओंमें अच्छी प्रगति हो रही है।

पूर्वी कलकत्तेमें सोसायटीके एक केंद्रमें अप्रैलमें पुस्तकों और आश्रमकी बनी चीजोंकी एक प्रदर्शनी हुई। श्री सुधीर दीवानने अप्रैलमें कई केंद्रोंका दौरा किया और वहां भाषण दिये।

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70
REGD. No. M. 8731

२२ मईको बैंगलोरमें डा० आर० एल० कपूरने 'योगपर परीक्षणात्मक अध्ययन' विषयपर श्रीअरविंद भवनमें भाषण दिया।

सितान (गुजरात) शाखाने अपना ग्यारहवां वार्षिकोत्सव मनाया जिसमें श्री अम्बाप्रेमी शाह और प्रो० अश्विन कापडिया बोले।

घोषणाएं

कागजकी महंगाईकी वजहसे 'आल इण्डिया मैगजीन' का चन्दा (सदस्योंके लिये नहीं केवल ग्राहकोंके लिये) १६ से २० रु. हो गया है।

बम्बईकी पेडर रोडकी श्रीअरविंद सोसायटी शाखाने पांच पोस्टरोंका एक सेट (२२"×३५") निकाला है जिसमें अंग्रेजी और हिंदीमें कवि सुन्दरम् द्वारा लिखी कविताएं और साथ-साथ सुन्दर चित्र और कुछ पोस्टकार्ड भी हैं। इच्छुक व्यक्ति 'शब्द' पाण्डिचेरी ६०५००२ या श्रीअरविंद केंद्र, ४० बी, नालन्दा, ६२ पेडर रोड बम्बई-४०००२६ के पतेपर लिखकर मंगवा सकते हैं।

जिन मित्रोंके पास श्री नवजातके कैसेट, उनके चित्र यां संस्मरण हों वे कृपया इस पतेपर भेजें —- रिसर्च कोओरडीनेटर, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

हमारे नये केंद्र

१. श्रीअरविंद सोसायटी, झलदा सेण्टर
श्री गोपाल जालान रोड, पो० बा० झलदा, जिला पुरुलिया (प. बं.) – ७२३२०२

२. श्रीअरविंद सोसायटी सेण्टर
९, बापू कालोनी, बनदुराई, साउथ स्ट्रीट
कुम्बकोनम (तमिलनाडु) – ६१२००१

३. श्रीअरविंद सोसायटी सेण्टर
द्वारा, श्री वारीन्द्रनाथ चाकी, पद्मपुर, पो. बा. राजबोरासम्बर
जिला सम्बलपुर (उड़ीसा)–७६८०३६

अग्निशिखा

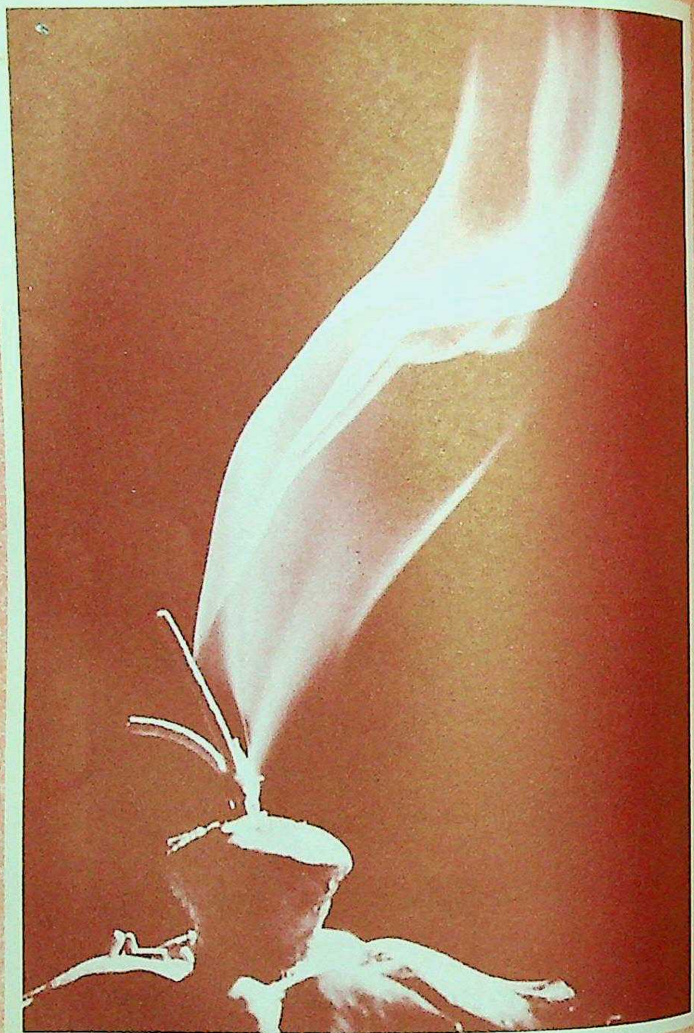




अपने हृदयके मर्मकी ओर सचेत होकर,
यह जानकर कि प्रेम और ऐक्यका अनुभव करना ही जीवन है
सुनहरे परिवर्तनका यह जादू ही
वह सत्य है जिसे मैं जानता या खोजता हूं . . .



तब हमारा जीवन एक शान्त यात्रा होता है,
हर वर्ष हमारे स्वर्गिक मार्गपर एक मील होता है,
हर उषा एक बृहत्तर प्रकाशमें खुलती है।

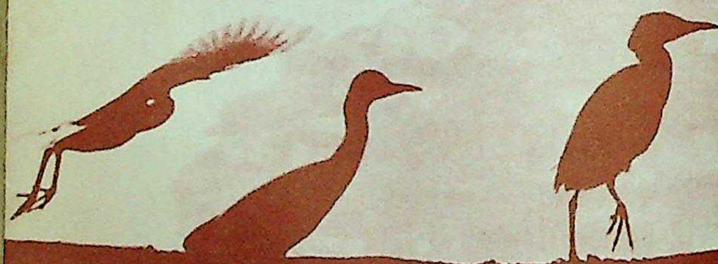


हे प्रभु, अपनी शान्ति
धरतीपर निवास करनेवाले मनुष्यकी भव्य अंतरात्माके लिये
निबंध कालके कोलाहल और विध्वंसके बीच,
अपने अंदर सहेजने लायक वरदान (प्रदान कर)

(प्रदान कर) हे प्रभु, बहुत-से निकट आते हुए हृदयोंमें अपना एकत्व . . .

(प्रदान कर) अपना आलिंगन, जो पीड़ाकी जीवित गांठको काट देता है,
वह आनन्द हे प्रभु ! जिसमें सभी प्राणी सांस लेते हैं,
अपने गभीर प्रेमके बहते जलोंका जादू,
और अपनी मधुरता, धरतीके लिये और मनुष्योंके लिये मुझे प्रदान कर।

अगर हमारी अंतरात्माएं भगवान्के सत्यको देख पाएं और
उससे प्रेम करें और उसे आलिंगनबद्ध कर सकें,
तो उसकी अनन्त दीप्ति हमारे हृदयोंको जकड़ लेगी,
हमारी सत्ता फिरसे भगवान्की मूर्तिके रूपमें गढ़ी जायगी
और पार्थिव जीवन दिव्य-जीवन बन जायगा।



२८. जिसकी भागवत करुणापर श्रद्धा है उसके लिये दिव्य प्रकाशकी वापसी आसान हो जाती है।

२९. तुम्हारी श्रद्धा तुम्हें उस 'परम' के संरक्षणमें ला देती है जो सर्वशक्तिमान् है।

३०. भागवत करुणा हमेशा उपस्थित है और प्रत्येक पतन नयी प्रगतिके लिये छलांग लगानेके तख्तेमें बदल सकता है।

३१. भारतके भूतकालके वैभव उसकी जीवित आत्माकी सहायता और उसके आशीर्वादसे उसके सन्निकट भविष्यकी सिद्धिमें फिर से जन्म लें।

(श्रीमातृवाणीसे)

इस अंकसे अग्निशिखाका वार्षिक चंदा १० रुपये और आजीवन सदस्यताका १७५ रुपये हो गया है।

अगर हमारी अंतरात्माएं भगवान्‌के सत्यको देख पाएं और
उससे प्रेम करें और उसे आलिंगनबद्ध कर सकें,
तो उसकी अनन्त दीप्ति हमारे हृदयोंको जकड़ लेगी,
हमा
और

शक्ति और प्रेम हमारे साथ रहते हैं और उतना ही अधिक विजयका आनंद भी।

२०. डटे रहो और तुम विजयी होंगे।

२१. तुम्हें अपने-आपको विस्तृत करना होगा, अपने द्वार खोलने होंगे।

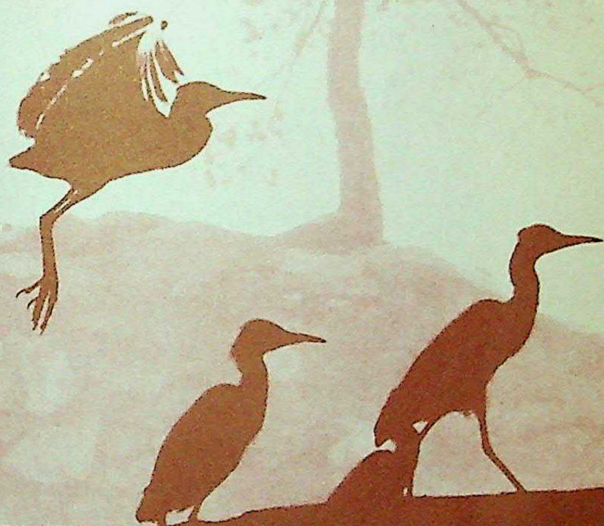
२२. उत्साह सफलताकी अनिवार्य शर्त है।

२३. प्रभु सदा उपस्थित होते हैं, तब भी जब लोग मानते हैं कि वे नहीं हैं। और उनकी सचेतन इच्छा सब चीजोंमें व्याप्त है।

२४. सब चीजोंके लिये, एकदम भौतिक वस्तुओंके लिये भी प्रभुमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखो। सब ठीक रहेगा।

२५. श्रद्धा जितनी अधिक रहेगी मार्ग उतनी तेजीसे कटेगा।

२६. अगर हमारे चारों ओर मिथ्यात्व न होता तो हमें श्रद्धाकी कोई आवश्यकता ही न होती क्योंकि तब हर एक सहज रूपसे 'सत्य' में विश्वास करता। इस मिथ्यात्वके तीव्र और अन-



अपनी उच्चतर आत्माको स्वीकार कर ले, सृजन कर, सहन कर।
ज्ञानसे मुंह न मोड़, तेरा परिश्रम विस्तृत हो . . .



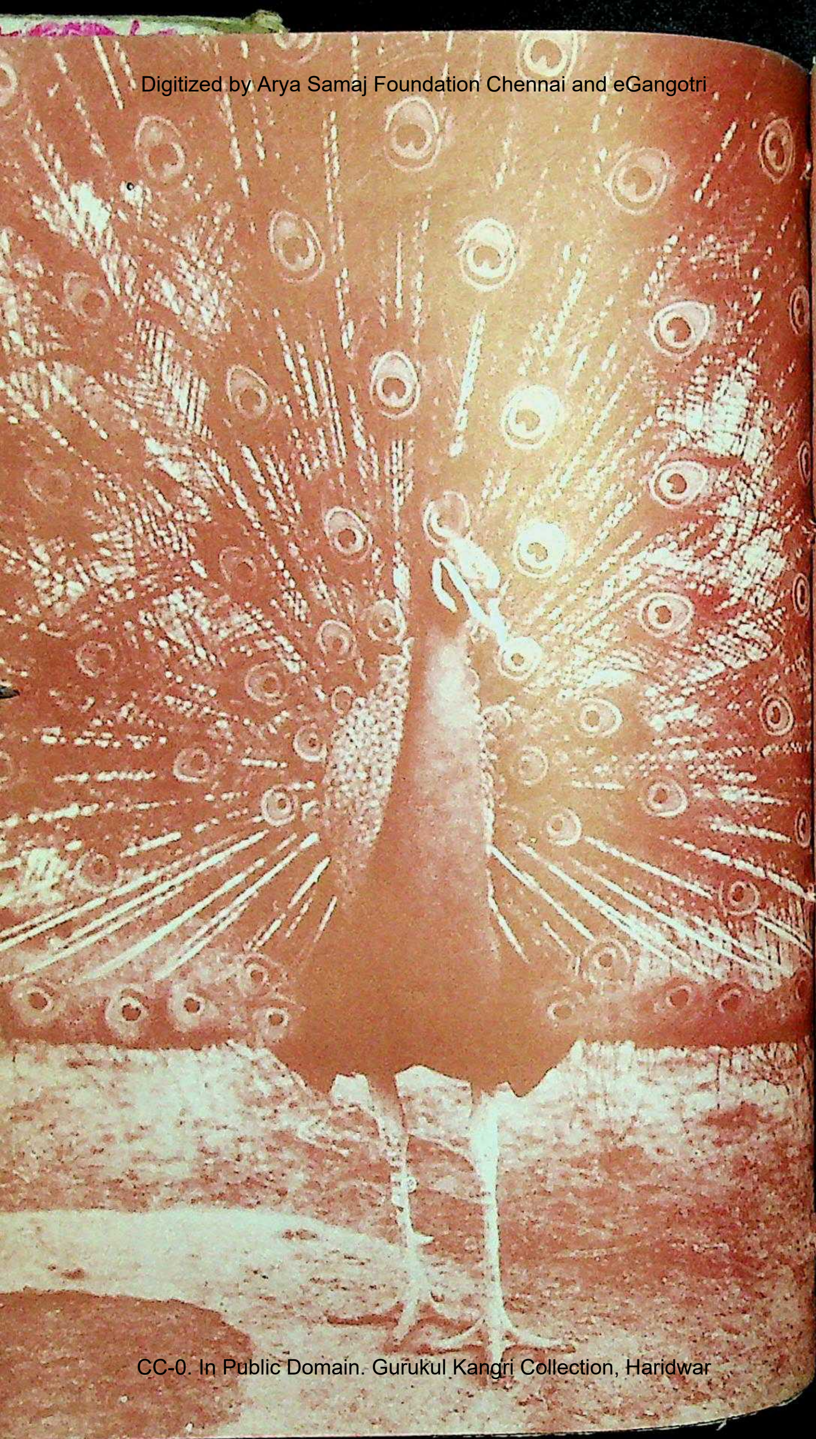
अपनी आंखें सूर्यकी ओर उठाओ। वह जीवनके उस अद्भुत हृदय, प्रकाश और भव्यतामें विद्यमान है। रातके समय अनगिनत तारामण्डलोंको देखो, जो सीमाहीन नीरवतामें अनन्तकी गंभीर निरीक्षक-अग्नियोंकी तरह चमक रहे हैं। यह नीरवता शून्य नहीं है, वह एकमेव, स्थिर और अतिविशाल सत्ताकी उपस्थितिसे धबकती है... देखो, वीणाके परे "वह" है। वह अन्तरिक्षमें दूर, इतनी दूर है कि वहां त्रिशंकु नहीं दिखलायी देता। फिर भी वह है वहां। तब धरतीपर लौट आओ और देखो कि "वह" है कौन। वह तुम्हारे बहुत नजदीक है। उधर देखो, उस झुके हुए, दीनतापूर्वक झुके हुए बूढ़ेको जो लाठी लिये तुम्हारे पाससे गुजर रहा है। क्या तुम अनुभव करते हो कि यह भगवान् ही हैं जो तुम्हारे पाससे गुजर रहे हैं? लो, सूर्यालोकमें एक बालक हंसता हुआ दौड़ रहा है। क्या तुम उस हंसीमें उन्हींकी ध्वनि सुनते हो? नहीं, वे तुम्हारे और भी नजदीक हैं, वे तुम्हारे अंदर हैं, 'वे' तुम हो। तुम ही करोड़ों मील दूर, अन्तरिक्षकी अनन्त दूरियोंमें जल रहे हो। तुम ही विश्वास-भरे कदमोंसे वायवीय सागरकी उठती-गिरती उत्ताल तरंगोंपर चल रहे हो। तुम्हींने नक्षत्रोंको उनके स्थानपर बैठाया है और सूर्योंके हारको हाथोंसे नहीं बल्कि उस योगद्वारा, उस नीरव, निष्क्रिय, निर्वैयक्तिक इच्छाद्वारा बनाया है जिसने तुम्हें आज यहां ला बिठाया है ताकि तुम मेरे अंदर अपनी ही आवाज सुनो। ऊपर देखो, हे प्राचीन योगके बालक, और कांपनेवाले, सन्देह करनेवाले न बने रहो। डरो मत, सन्देह न करो, दुःख न करो, तुम्हारे इस दीखनेवाले शरीरमें वह "एक" विराजमान है जो एक श्वासमें जगतोंको बना और बिगाड़ सकता है।



विस्तृततम क्षितिजसे भी अधिक विस्तृत बनो,
उच्चतम कंचनजंगासे भी अधिक उत्तुंग
और गहनतम सागरसे भी अधिक गहरे बनो ।



दुःखपीड़ित जगत्‌में अपनी कठिन यात्राके समय,
अपनी अंतरात्माके संबलके लिये स्वर्गके बलका टेका ले,
उच्च सत्यकी ओर मुड़, प्रेम और शांतिके लिये अभीप्सा कर ।



तुम्हारे हृदयमें नवजन्म अभिव्यक्त हो और स्थिरता तथा आनंदके साथ प्रसारित हो। नवजन्म तुम्हारी सत्ताके सभी भागों, मन और दृष्टिको, इच्छा और भावोंको, प्राण और शरीरको अपना ले।

तुम्हारे जीवनकी प्रत्येक तिथि उसके विकासकी अधिक पूर्णताकी तिथि हो, यहांतक कि तुम्हारे अंदर सब कुछ मांका बालक बन जाय।

दिव्य प्रकाश, शक्ति और उपस्थिति तुम्हें घेरे रहें, तुम्हारी रक्षा करें, तुम्हें दुलरायें और तुम्हारा पालन-पोषण करें, यहां तक कि तुम्हारी आंतरिक और बाह्य सत्ता एक ही गति बन जाय और उसकी शांति, उसके बल और आनंदकी अभिव्यक्ति बन जाय।

आशीर्वाद

— श्रीअरविंद

व्यापक अभिव्यक्तिके ऐक्य-भावमें
सबकी एकता ही धरतीपर नवीन और
दिव्य जगत्को संभव बनायेगी।
हर एक अपना भाग लेकर आयेगा
लेकिन कोई भाग संपूर्ण न होगा।
परंतु हर भाग समग्रके ऐक्य-भावमें एक शक्ति होगा।

अग्निशिखा अगस्त १९८३
वर्ष १४, अंक १, पूर्णांक १५७

संपादक : रवींद्र, अनुवेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–६०५००२
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–६०५००२, भारत



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

अक्तूबर १९८३ वर्ष १४, अंक ३, पूर्णांक १५९

विषय सूची

वार्षिक चंदा अग्निशिखा रु० १०.०० पुरोधा १४.००
दोनों मिलाकर रु० २२.००
आजीवन सदस्यता अग्निशिखा रु० १७५.००; पुरोधा रु० २२५.००
दोनों मिलाकर रु० ४००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता:
संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक: रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक: श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक: अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

भावी कार्यका एकमात्र आधार

The Ashram has nothing to do with Hindu religion or culture or any religion or nationality. The Truth of the Divine which is the spiritual reality behind all religions and the descent of the supramental which is not known to any religion are the sole things which will be the foundation of the work of the future.

SRI AUROBINDO

आश्रमका हिन्दू धर्म या संस्कृतिके साथ अथवा किसी भी धर्म या जातीयताके साथ कोई संबंध नहीं है। भगवान्‌का सत्य जो सभी धर्मोंके पीछेकी सद्वस्तु है और अतिमानसका अवतरण जो किसी भी धर्मको ज्ञात नहीं है, बस यही दो चीजें हमारे भविष्यके कार्यका आधार होंगी।

—श्रीअरविंद

*

संपादकीय :

भक्ति-गंगा

भारतमें यह महीना देवी, देवताओंके पूजन, अर्चन और मंत्रोच्चारसे गूंजता और सुगंध, अगरु, फूल, धूपसे महकता रहता है। वायुमंडलमें मानों पुनः स्निग्धता और पवित्रताकी सत्ताओंका आह्वान करते हुए स्वर लहराते हैं। भारतका एक-एक अंग धर्मके प्रति, देवोंके प्रति अदम्य अभीप्सासे भर उठता है।

पूर्वीय भारत विशेषकर बंगालमें सिंहवाहिनी महिषासुरमर्दिनी दुर्गाका इस समय स्वागत होता है। आइये हम भी श्रीअरविन्दकी भाषामें उस स्वागतमें अपना स्वर मिलायें।

"मातः दुर्गे! सिंहवाहिनी, सर्वशक्तिदायिनी, मातः शिवप्रिये! तुम्हारी ही शक्तिके अंश हम भारतवर्षके युवक तुम्हारे मंदिरमें आसीन, प्रार्थना करते हैं। सुनो मातः, भारतवर्षमें प्रकट होओ। प्रकाशमान होओ।"

इन्हीं दिनों उत्तर प्रदेश और दक्षिण भारतमें भगवान् रामकी विजयका उत्सव मनाया जाएगा। रामलीलाद्वारा रामके पुनीत जीवनको श्रद्धासे याद किया जाएगा। चलिए, तुलसीदासजीके शब्दोंमें हम भी श्रीरामचन्द्रकी वंदना करें:

"श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण-भव-भय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंजमुख, करकंज पदकंजारुणं।।"

दक्षिणमें एक और प्रथा है — आयुध पूजाकी : उस दिन घरकी प्रत्येक वस्तुकी पूजा होती है। गृहस्वामिनी चूल्हे, हांड़ेकी पूजा करती है तो रिक्शावाले रिक्शाकी। निर्जीवमें प्रच्छन्न जीवकी यह पहचान बड़ी सुखद अनभूति होती है।

गुजरातमें भी इस समय लक्ष्मी, अम्बाकी आगमनीके गीत गाये जाते हैं। श्रीअरविंदने लक्ष्मीके मधुर रूपका ऐसा आकर्षक वर्णन किया है कि हमारा मन स्वयं उनकी ओर मुग्ध हो निहारता रहता है। "महालक्ष्मीकी ओर सभी बड़े उल्लास और उत्कंठासे मुड़ते हैं क्योंकि वे भगवान्‌की सम्मोहक मधुरताका जादू फैलाती हैं। उनके पास होनेका अर्थ ही है गहन सुख पाना और उन्हें अपने हृदयके अंदर अनुभव करनेका अर्थ है जीवनके आनंदोल्लास और चमत्कारसे भर जाना। महालक्ष्मीसे लावण्य, मोहकता और मृदुता ऐसे ही प्रवाहित होती हैं जैसे सूर्यसे प्रकाश। वे जहां कहीं अपनी अद्‌भुत दृष्टि स्थिर करती हैं या जिसपर अपने स्मितकी मधुरता डालती हैं वही आत्मा उनकी पकड़में आकर बंदी बन जाती है और अथाह आनंदकी गहराईमें डुबकी लगाती है। उनके हाथोंका स्पर्श चुम्बककी तरह आकर्षक है, और उनका रहस्यमय कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीरको परिष्कृत करता है। और जहां उनके चरण पड़ते हैं, सम्मोहक आनंदकी दिव्य धाराएं बहने लगती हैं।"

इस प्रकार सारा देश भक्ति-गंगामें स्नान कर नया उत्साह, नयी ताजगी लिए जीवन पथपर चल पड़ता है।

हम केवल त्यौहार मनाकर संतुष्ट न हों। इस सुलभ अवसरसे लाभ उठाकर अपने अंदर विराजमान दिव्य-पुरुषको जगायें और अपने इस 'स्व'की आज्ञाके अनुसार चलें।

— **अनुबेन**

दैनन्दिनी

अक्तूबर

१. भय चेतनाका अधःपतन है।

२. भयके कारण तुम किसी भी चीजको, दुर्घटनाको आकर्षित कर सकते हो।

३. उत्सवोंकी रूढ़ि-ग्रस्तताके पीछे एक जीवित जाग्रत् प्रतीक होता है।

४. केवल सच्ची और स्थायी निष्ठा भगवान्के प्रति निष्ठा है।

५. प्रकृति अपने पुष्पोंके स्मितद्वारा सहयोगका प्रमाण देती है।

६. हम क्या खाते हैं या नहीं खाते, इससे अनंतगुणा महत्त्वपूर्ण है हमारा भगवान् और उनके कार्यके प्रति सच्चा और संपूर्ण समर्पण।

७. हे प्रभु, मुझे पूर्ण सचाई प्रदान कर।

८. हे प्रभु, मेरे अंदर तुझे जाननेकी उद्दीप्त कामना जगा। मैं अभीप्सा करता हूं कि मेरा जीवन तेरी सेवाके लिए निवेदित हो।

९. मैं सदा तेरे दिव्य पथ-प्रदर्शनका अनुसरण करूं। वर दे कि मैं अपनी सच्ची नियतिको जानूं।

१०. हे प्रभु, तेरी मधुरता मेरी अंतरात्मामें प्रवेश कर गयी है और तूने मेरी सत्ताको आनंदसे भर दिया है।

११. मेरा हृदय शांत है, मेरा मन अधीरतासे मुक्त है और सभी चीजोंमें मैं तेरी इच्छापर बालकके मुस्कराते हुए विश्वासके साथ निर्भर हूं।

१२. मेरे प्रभु, प्रतिदिन, सभी परिस्थितियोंमें मैं हृदयकी पूरी सचाई-के साथ जपूं — तेरी इच्छा पूरी हो, मेरी नहीं।

१३. प्रभु ! अपनी पूरी अंतरात्माके साथ मैं वही करना चाहती हूं जो करनेका तू आदेश दे।

१४. हे मेरे प्रभु, तेरी सहायता और कृपा हो तो फिर डर ही क्या है। तू ही परम सुरक्षा है जो सभी शत्रुओंको हरा देता है।

१५. हे मेरे प्रभु, तेरी सुरक्षा सर्वसमर्थ है। वह हर शत्रुको हरा देती है।

१६. सभी परिस्थितियोंमें तेरी विजयको देखना निश्चय ही उसके जल्दी आनेमें सहायता करनेका सबसे अच्छा उपाय है।

१७. भगवान्‌से दूर होनेके अतिरिक्त कोई और पाप नहीं, उसके सिवा कोई और दोष नहीं है।

१८. प्रभु, तेरे बिना जीवन विकृति है। तेरे प्रकाश, तेरी चेतना, तेरे सौंदर्य और तेरी शक्तिके बिना समस्त अस्तित्व एक विकृत और डरावना प्रहसन है।

१९. हे प्रभु, जो कुछ है और जो कुछ होगा उसकी गहराइयोंमें तेरी दिव्य, अपरिवर्तनशील मुस्कान है।

२०. समतासे आसक्ति मर जाती है, रागद्वेष शांत हो जाता है, आसक्तिके नाश और रागद्वेषके शांत होनेसे शुद्धताका जन्म होता है।

२१ जबतक ज्ञानके प्रभावसे तमोभाव दूर न हो जाय तबतक संयम असंभव है।

२२. हम जब-जब तर्क और दार्शनिक युक्तिका प्रयोग करके असंभवको संभव करते चलते हैं तब-तब वे रंगमय प्रभु उस जालको हटाकर हमारे सामने, पीछे, इधर-उधर, दूर चारों ओर फैले हुए विश्वरूप और विश्वातीत रूपको फैलाकर बुद्धिको हरा देते हैं।

२३. निग्रहसे चित्तकी शुद्धि नहीं होती, विवेक या शुद्ध बुद्धिकी सहायतासे, संयमसे, चित्तकी शुद्धि होती है।

२४. दुःखपर विजय पानेका सच्चा उपाय है ज्ञान, शांति और समता। शांत् भावसे सुख दुःखको ग्रहण करना ही सच्चा पथ है।

२५. योगकी आरंभिक अवस्थामें चित्तके अंदर बन्द सभी कुप्रवृत्तियां साधककी बुद्धिपर बड़े जोरसे आक्रमण करती हैं और नये साधकको भय और शोकसे परेशान कर देती हैं। यही मार (कामदेव) का आक्रमण है। यह प्रलोभन शैतानका नहीं भगवान्का है।

२६. अंतर्यामी जगद्गुरु इन सब (मारकी) प्रवृत्तियोंको साधक पर आक्रमण करनेके लिए बुलाते हैं और यह उसके अमंगलके लिए नहीं, मंगलके लिए, चित्तशुद्धिके लिए होता है।

२७. अधर्म जब दया, प्रेम आदि कोमल धर्मका रूप धारण करके आता है, अज्ञान ज्ञानका छद्‌मवेश पहन लेता है, गाढ़ा अंधकार-पूर्ण तमोगुण जब उज्ज्वल और विशद पवित्रताका रूप धारण करके कहता है, "मैं सात्विक हूं, मैं ज्ञान हूं, मैं धर्म हूं, मैं भगवान्‌का प्रिय दूत हूं, पुण्य रूप और पुण्य प्रवर्तक हूं" तब यह समझ लेना चाहिए कि भगवान्‌की वैष्णवी माया बुद्धिके अंदर प्रविष्ट हुई है।

२८. बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारण जीव भी ज्ञानशून्य होकर साक्षी भाव और निर्मल आनंद भावसे वंचित होकर अपने-आपको आधारके साथ एक मान लेता है और यह सोचकर कि "मैं चित्त हूं, मैं बुद्धि हूं" शारीरिक और मानसिक सुख-दुःखके साथ सुखी और दुःखी होता है।

२९. हम अपने-आपको पानेके लिए अपना त्याग करते हैं। क्योंकि मानव जीवनमें केवल एक खोज होती है। लेकिन चरम प्राप्ति तबतक नहीं होती जबतक मनको पार न कर लिया जाय।

३०. परम प्रभुको संबोधित अभीप्सा —
मेरे अंदर सब कुछ सदा तेरी सेवामें रहे।

३१. बुद्धिमें समभाव होनेसे चित्त और प्राण अपने-आप समता पा लेंगे, और इस तरह प्रेम इत्यादि स्वाभाविक प्रवृत्तियां भी सूख नहीं जातीं, मनुष्य पत्थर नहीं बन जाता, जड़ या निर्जीव नहीं बन जाता।

(श्रीमातृवाणी और गीताकी भूमिकासे)

अंतरमें भगवान्

हमारे अंदर जो कुछ पूरी तरह अंतरके भगवान्को निवेदित नहीं है, वह टुकड़े-टुकड़े करके वस्तुओंकी उस समग्रताके अधिकारमें है जो हमें घेरे रहती है और उस चीजपर क्रिया करती है जिसे हम अनुचित रूपमें अपना "आपा" कहते हैं। वह या तो इन्द्रियोंके द्वारा या सुझावोंके द्वारा सीधी मनपर क्रिया करती है।

सचेतन सत्ता बननेका, स्वयं बननेका एक ही मार्ग है और वह है भागवत आत्माके साथ एक होना जो सबमें विद्यमान है। उसके लिये हमें एकाग्रताकी सहायतासे अपने-आपको बाहरी प्रभावोंसे अलग कर लेना चाहिये।

जब तुम अंतरके भगवान्के साथ एक होते हो तो तुम सभी चीजोंके साथ उनकी गहराइयोंमें एक हो जाते हो। तुम्हें उस भागवत तत्त्वमें, 'उसी'के द्वारा उनके साथ नाता जोड़ना चाहिये। तब तुम बिना किसी आकर्षण या अपकर्षणके, जो 'उनके' नजदीक हो उसके नजदीक और जो कुछ 'उनसे' दूर हो उससे दूर होगे।

दूसरोंके साथ रहते हुए तुम्हें हमेशा एक दिव्य उदाहरण होना चाहिये। तुम्हें एक ऐसा अवसर बनना चाहिये जो उन्हें भागवत जीवनको समझने और उसके मार्गपर चलनेके लिये दिया गया है। इससे बढ़कर कुछ नहीं। तुम्हारे अंदर यह चाह भी न होनी चाहिये कि वे प्रगति करें क्योंकि यह भी तुम्हारी मनमानी होगी।

जबतक तुम अंदरके दिव्यत्वके साथ एक नहीं हो जाते तबतक बाहरके साथ संबंधोंके बारेमें सबसे अच्छा तरीका यह है कि जिन्हें इस एकताका अनुभव है उनकी एकमतसे दी हुई सलाहके अनुसार चलो।

हमेशा सतत शुभेच्छाकी स्थितिमें रहना — इसे अपना नियम बना लो, किसी चीजसे परेशान न हो और किसीकी परेशानीका कारण न बनो और, जहांतक हो सके, किसीको कष्ट न पहुंचाओ।

(८ जून, १९१२) (श्रीमातृवाणी खंड २ से)

दुःखपर विजय

ग्रीक स्टोइक संप्रदायने यह गलती की कि वे दुःखपर विजय पानेके सच्चे उपायको समझ नहीं पाये। उन्होंने दुःखको संयमद्वारा दबाकर, पांवसे कुचलकर जीतनेकी कोशिश की। लेकिन गीतामें एक जगह कहा गया है — प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति? समस्त भूत अपनी-अपनी प्रकृतिका अनुसरण करते हैं, निग्रहसे क्या होगा? दुःखके निग्रहसे मनुष्यका हृदय शुष्क, कठोर प्रेमशून्य हो जाता है। दुखमें आंसू नहीं बहाऊंगा, यंत्रणाके बोधको नहीं स्वीकारूंगा, 'यह कुछ नहीं है' कहकर चुपचाप सहन कर लूंगा, स्त्रीका दुःख, संतानका दुःख, मित्रका दुःख, राष्ट्रका दुःख अविचलित चित्तसे देखूंगा, इस प्रकारका भाव बलके गर्वमें चूर असुरका तपस्या भाव है — इसका भी महत्त्व है, मानवकी उन्नतिके लिए इसकी भी आवश्यकता है, लेकिन यह दुःखपर विजय पानेका सच्चा उपाय नहीं है, अंतिम या चरम शिक्षा नहीं है। दुःखपर विजय पानेका सच्चा उपाय है ज्ञान, शांति और समता। शांत भावसे सुख-दुःखको ग्रहण करना ही सच्चा पथ है। प्राणमें होनेवाले सुख दुःखके संचारको नहीं रोकूंगा, बुद्धि अविचलित रखूंगा। समताका स्थान बुद्धि है, चित्त नहीं, प्राण नहीं। बुद्धिमें समभाव होनेसे चित्त और प्राण अपने-आप समता पा लेंगे, और इस तरह प्रेम इत्यादि स्वाभाविक प्रवृत्तियां भी सूख नहीं जातीं, मनुष्य पत्थर नहीं बन जाता, जड़ या निर्जीव नहीं बन जाता — प्रकृतिः यान्ति भूतानि — प्रेम इत्यादि प्रवृत्तियां प्रकृतिकी शाश्वत प्रवृत्तियां हैं, उनके हाथसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय है परब्रह्ममें लीन हो जाना। प्रकृतिके अंदर रहकर प्रकृतिका त्याग करना असंभव है। अगर कोमलताका त्याग करें तो कठोरता हृदयपर छा जायेगी —अगर बाहरके दुःखके स्पन्दनको पास न आने दें तो दुःख अंदर जमा रहेगा और अप्रकट रूपसे हृदयको सुखा देगा। इस प्रकारके कष्टसाध्य उपायसे

उन्नतिकी कोई संभावना नहीं होती। निश्चय ही ऐसी तपस्यासे शक्ति तो प्राप्त होगी लेकिन इस जन्ममें जिस चीजको दवाकर रखेंगे, दूसरे जन्ममें वह सब बाधाओंको तोड़-फोड़कर दूने वेगके साथ उमड़ आयेगी।

(गीताकी भूमिकासे)

अंतरात्माके आवरण

मधुर मां, यहां उन्होंने कहा है, "अंतरात्माके आवरण"। अंतरात्माके आवरण क्या हैं?

ओह! यह तो तुलना की गयी है... अब भी उसकी तुलना पौधेके साथ की जाती है; और यह कोई ऐसी चीज है जो मानों फूलकी कलीको बंद रखती है, कह सकते हैं, उसे बांधती है, फूल या कलीको बांध देती है, बंद करती है; ये चीजें ऐसी हैं जिन्हें तोड़ना पड़ता है ताकि फूल खिल सके। तो यह कमलके साथ तुलनाका ही अनुगमन है, है न, जो अंतरात्माको बंद करता है, उसे सक्रिय होने और अपने-आपको अभिव्यक्त करनेसे रोकता है; उसीको तोड़ना पड़ेगा, कड़ियोंकी तरह, बंधनोंकी तरह, ऐसी चीजें जो उसे पकड़ रखती हैं; उसे तोड़ना पड़ेगा, कुछ धीरे-धीरे ताकि, अंतरात्मा फूलकी तरह खिल सके। ये आसक्तियां... वे समझाते हैं कि ये क्या हैं, मेरा ख्याल है कि वे यहांपर कहते हैं कि वे... (माताजी पढ़ती हैं) "अनिवार्य प्रस्फुटनमें बाधक हैं।"

और वे यह भी कहते हैं: "...आसक्तियोंद्वारा सीमित रंग-रूपमें बंद।" तो यह वही बात है, है न; वे सब चीजें जो तुम्हें सामान्य बाह्य चेतनाके साथ बांधती हैं, वह सब जो तुम्हें साधारण जीवनके साथ बांधता है — वही है जो अंतरात्माको बंद कर देता है, यहां, इस तरह, निचुड़ा हुआ, बंद।

इसे तोड़ना चाहिये। तो बस।

(श्रीमातृवाणीसे)

प्रलय करो

प्रलय करो शंकर, प्रलय करो,
आज फिर अपना डमरू संभालो
प्रलय करो।

आज हमारे अणु-अणुमें तुम्हारा ताण्डव नृत्य चले
आसक्तिका कोई बीज न बचने पाये
समस्त दुर्बलताका नाश करो
समस्त भयका नाश करो
नाश करो शम्भू, नाश करो
नव सृजनके लिये समस्त अशुभका, समस्त अमंगलका नाश करो।

प्रलय करो शंकर, प्रलय करो
आज फिर अपना डमरू संभालो
प्रलय करो।

हमारे सारे अभिमानको, सारे-के-सारे अहंभावको,
युगों-युगोंके आबद्ध अज्ञानको
अपने दिव्य नेत्रकी अशुभनाशिनी प्रचण्ड ज्वालासे
क्षण मात्रमें जलाकर राख कर दो।
समस्त कामनाओंका नाश करो
समस्त वासनाओंका नाश करो।
नाचो, मेरे शंकर नाचो — नृत्य करो

प्रलय करो शंकर, प्रलय करो
आज फिर अपना डमरू संभालो
प्रलय करो।

— शंकर कोठारी

दूसरी दृष्टि

हमें मालूम है कि सामान्यतः जानवरोंमें ज्ञानेन्द्रियां असाधारण रूपसे पैनी होती हैं। मानव इन्द्रियके लिये जो सामान्य है उससे कहीं अधिक दूरीसे वे सुन और सूंघ सकते हैं। एक कुत्तेको किसी आदमीके काममें आया हुआ रुमाल दो तो वह हजारोंमेंसे उस आदमीको ढूंढ निकालेगा। अगर तुम किसी ऐसी जगह फंस गये हो जहां पानी नहीं है तो हाथी तुम्हें मीलों दूर सीधा उस जगह ले जाएगा जहां पानी है। जहां दृष्टि या गन्धका सवाल ही नहीं होता, वहां भी जानवर एक अजीब तरीके-से चीजोंको देख लेते हैं। उदाहरणके लिये, एक हाथी जिसने अचानक आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया। बादमें पता चला कि रास्ता खोखला था। अगर हाथी उसपर चला होता तो वह धंस जाता। इस तरह अनगिनत घटनाएं हैं जो जानवरके सहजबोधके पैनेपन और सूक्ष्मताको साबित करती हैं।

बोधका मतलब है विषयके साथ संपर्क। अब वह कौन-सी चीज है जो संपर्क स्थापित करती है? साधारण इन्द्रिय बोधमें, सामान्य मानव इन्द्रिय बोधमें उस वस्तुसे निकलता हुआ भौतिक स्पन्दन भौतिक अवयवके साथ संपर्कमें आता है। किस दूरीसे स्पन्दनको ग्रहण किया जा सकता है, यह ग्रहण करनेवाली स्नायुओंपर निर्भर है। मनुष्यमें संवेदनशीलता सीमित है। जानवरमें वह बहुत तीव्र है। फिर, यह तथ्यका केवल एक ही कारण है। हम इसे स्पष्ट करेंगे।

यह जानी-मानी बात है कि चेतनाके तीन स्तर होते हैं — शारीरिक, प्राणिक और मानसिक। फिलहाल हम चौथेकी गिनती नहीं करेंगे — आध्यात्मिक (उसमें चैत्य भी शामिल है)। केवल इतना ही नहीं, हरएक क्षेत्र या स्तरमें दूसरे भी अन्तर्ग्रस्त — यानी छिपे

हुए हैं। इस तरह मनमें एक प्राणिक मन होता है और एक भौतिक। प्राणमें एक मानसिक प्राण होता है और एक भौतिक, इसलिये भौतिकमें भी ये तीन सोपान हैं: १) भौतिक भौतिक, २) प्राणिक भौतिक, ३) मानसिक भौतिक। अब इन्द्रिय ज्ञानमें संपर्ककी प्रक्रियाको हम ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। विशुद्ध रूपसे भौतिक संपर्क — जिसमें शारीरिक स्पन्दन शरीरके अवयव विशेषको छूता हो, भौतिक-भौतिक बोधका एक उदाहरण है। कुत्तेका असाधारण दूरीसे गन्ध पाना या हाथीका ऐसी दूरीसे सुनना भी ऐसे उदाहरण हैं। हमने उन लोगोंके बारेमें सुना है जो जमीन-से कान लगाकर बहुत दूरसे आती आवाजको पकड़ सकते हैं जब कि इर्द-गिर्द खड़े लोगोंको कुछ नहीं सुनायी देता। लेकिन एक और वर्ग होता है, जहां भौतिक स्पंदनका सवाल नहीं होता। वह भौतिकमें प्राणिक स्पंदन ग्रहण करनेवालेके प्राणिक-भौतिकको छूता है। जब हाथी पानी खोज लेता है या समझ लेता है कि रास्ता खोखला है तो ये इसीके उदाहरण हैं। तीनोंमेंसे अंतिम मानसिक-भौतिक, शरीरमें एक प्रकारकी अंतर्दृष्टि है। इसीको सामान्यतः सहजबोध कहते हैं। उदाहरणके लिये, अगर तुम एक बिल्लीको बोरेमें डालकर उसके घरसे मीलों दूर छोड़ आओ तो वह ठीक वापस आ जाएगी। कुत्ता अपने प्रभुकी खोजमें लगभग सारी दुनिया-का चक्कर लगा लेगा और सालों बाद भी उसे पहचान लेगा। (युलिसिसको सबसे पहले उसके कुत्तेने ही पहचाना था।) मनुष्यमें भी प्राणिक-भौतिक, विशेष रूपसे मानसिक-भौतिक अक्सर जगह बना लेता है, यद्यपि उसका भौतिक-भौतिक, यानी, विशुद्ध रूप-से भौतिक संवेदनशीलता बहुत ही सीमित होती है। सामान्यतः भौतिक संवेदनशीलताका परिसीमन, चाहे वह किसी भी क्षेत्रका क्यों न हो, उस बौद्धिक या तर्कसंयत पूर्वाग्रहके कारण होता है, जो उसके अंदर विकसित हो गया है। ज्यादा स्वाभाविक या अविकसित जातियों या प्रकारोंमें संवेदनशीलता बनी रहती है। मनुष्य इन क्षमताओंको

सचेतन रूपसे विकसित कर सकता है। तब वह योगकी पद्धति कहलाती है। मनुष्यमें मानसिक-भौतिक क्रियाको विकसित करनेका उदाहरण पानीका पता लगानेवालोंमें मिलता है। लेकिन जैसा कि मैं कह चुकी हूं मानव बुद्धिका सामान्य प्रभाव है इन्द्रियोंकी सहज क्रियाको रोकना जब कि जानवरमें वह स्वाभाविक रहती है। यह देखना मजेदार है कि जानवर अपनी जंगली अवस्थामें सहज क्षमताको, 'दूसरी दृष्टि'को बनाए रखते हैं, लेकिन जब वे मनुष्यके साथ रहने लगते हैं, मानव मन और तर्कके प्रभावमें आते हैं, या यूं कहें, 'पालतू' बन जाते हैं, तो उस क्षमताको खो बैठते हैं। वह गाय जिसे खुले मैदानोंमें चरनेकी आदत है कभी जहरीली घासको छूएगी भी नहीं, वह हमेशा उससे बचेगी और केवल निर्दोष तथा स्वास्थ्यकर घास खायेगी। लेकिन जब उसे गोशालामें रखा जाता है, वह चार दीवारोंमें बंद रहती है तो वह अपना स्वाभाविक सहजबोध खो बैठती है, चकरा जाती है, और हितकर और अहितकर आहारमें भेद करना भूल जाती है, क्योंकि उसका स्वामी हमेशा बनी-बनायी चीजें उसके सामने रख देता है।

इस तरह मानव संपर्कका, पशुके स्वाभाविक जीवनपर अहितकर प्रभाव होता है। लेकिन दूसरी दृष्टिसे उसका असर ऊपर उठानेवाला भी हो सकता है। कुछ संस्कृत मानव भावनाएं — सहानुभूति, कृतज्ञता, श्रद्धा, आत्म-समर्पण — उन पशुओंमें मानव ढंगसे अभिव्यक्त होती हैं जो पालतू होते हैं और मानव वातावरणमें मनुष्यके नजदीक रहते हैं। बात तो ठीक है कि पशु जगत्‌की स्वाभाविक और जंगली अवस्थामें इन भावनाओंका पूरा अभाव नहीं है (विशेष रूपसे उच्चतर स्तरोंपर), लेकिन वे विशुद्ध रूपसे भावना या आवेगके स्तरकी चीजें होती हैं और अभी उन भावनाओंके स्तरतक नहीं उठी हैं, जिनके प्राणिक पदार्थमें मानसिक तत्त्व भी होता है। सचमुच पालतू पशु में एक प्रधान मानसिक तत्त्व, तर्क करनेकी क्षमता कभी-कभी बहुत स्पष्ट रूपसे विकसित हो जाती है।

हम कहते हैं कि जानवर सहजबोधद्वारा काम करता है। यानी, वह सीधा उस चीजपर जाता है जो करनी है। वह कोई चीज करनेके लिये संभावनाओंमें चुनाव नहीं करता, उसकी चेतना में चुननेकी प्रक्रिया नहीं होती। केवल मानव चेतना ही कहती है, 'यह नहीं करना चाहिये, वह करना चाहिये, यह नहीं, वह करना चाहिये', या सवाल करती है, 'कौन-सा, रखूं या न रखूं?' विवेक या विचार-विमर्शसे हमारा यही मतलब होता है। साधारणतः पशु-में यह क्षमता अनुपस्थित रहती है। हम मनुष्यमें संस्कृत भावनाओं-की बात कर चुके हैं; यहां जरूरी नहीं है कि 'संस्कृत'का अर्थ हमेशा उदात्त या नैतिक दृष्टिसे उत्कृष्ट हो। उसका अर्थ ज्यादा सूक्ष्म और जटिल हो सकता है, कुछ निम्नतर और बहुत विकृत भावनाओंपर भी यह शब्द लागू हो सकता है जो शायद विशिष्ट रूपसे मानव है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि पालतू जानवर उन्हें मनुष्योंसे पाते हैं — ईर्ष्या, विद्वेष, मनमुटाव, बदला, बहुत अधिक प्रतिशोधकी भावना इत्यादि वन्य पशुओंकी अपेक्षा पालतू पशुओं-में अधिक मिलते हैं। हमने उन हाथियोंके बारेमें सुना है जो कई महीनोंतक किसी चोट या अपमानको अपने अंदर पोसते रहते हैं और मौका मिलते ही बदला लेते हैं। और फिर, यह भी सुना है कि एक बिल्लीने खिड़कीसे सड़कपर कूद कर आत्महत्या कर ली क्योंकि उसकी मालकिन दूसरी बिल्लीसे ज्यादा प्यार दिखाती थी। पालतू पशुओंके मानवीकरणका, उसके अच्छे और बुरे प्रभावों सहित, क्रमविकासकी दृष्टिसे मूल्य होता है। यानी, इस तरह कुछ पशु अपनी आत्मामें लगभग मानव स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। और गुह्य-वादियोंका कहना है कि इस तरह आत्माएं पशु योनिसे मनुष्य योनि-में जाती हैं।

एक दरवेश

एक दरवेश एकान्तवासका व्रत लेकर किसी जंगलमें जा बैठा। जंगलके पेड़-पौधे और खग-मृग ही उसके नातेदार रिश्तेदार थे।

भगवान्‌की करनी, एक दिन उस प्रदेशका राजा अपनी सेनाके साथ उधरसे निकला। नगाड़े, तुरही, झांझ सब तरहके वाजे बज रहे थे। और राजाका जय-जयकार हो रहा था।

दरवेशने सिर उठाकर भी न देखा, मानो कह रहा हो 'मा रा चे अजीनस्त कि गाव आमद व खर रफत', "मुझे इससे क्या कि बैल आया या गधा गया।"

राजाने भी दरवेशको देखा, मंत्रीने भी देखा और सेनापतिने भी देखा। तीनों गुस्सेसे भर गये। आंखें लाल हो गयीं और एकने दूसरेसे कहा, "देखी इस चीथड़ेवालेकी हिम्मत? आखिर सहन-शक्तिकी भी कोई हद होती है।"

मंत्रीसे न रहा गया। वह जा पहुंचा दरवेशके पास और बोला, "अरे भिखमंगे, तेरे आंखें नहीं हैं? अभी तेरे आगेसे दुनिया जहानके मालिक गुजरे हैं। तूने उठकर कोर्निश तक नहीं की, इतना घमंडी है तू?"

दरवेशने पांव फैलाते हुए कहा। "राजा और मंत्रियोंको कोर्निश वह करता फिरे जो उनकी कृपा चाहता हो। मेरे ऊपर राजाओंके राजाकी कृपा है। मुझे किसी छोटे-मोटे राजाकी क्या परवाह।"

मंत्रीकी समझमें न आया कि वह क्या करे। उसने सोचा, इस भिखारीके आगे तो हार भी हार होगी और जीत भी हार। वह भन्नाता हुआ चल दिया।

"जरा सुनते जाओ" दरवेशने आवाज दी। "अपने राजासे कहना, राजा प्रजाकी रक्षाके लिये, उसकी सेवाके लिये होते हैं। प्रजासे सेवा लेनेके लिये नहीं। प्रजा सही-सलामत रहे तो अनेक राजा

बना लेगी लेकिन प्रजा नष्ट हो जाय तो राजा लुंज-पुंज रह जायगा।"

मंत्रीका सिर झुक गया। बात कुछ-कुछ समझमें आ गयी और वह दरवेशकी बातपर मनन करता हुआ लौट पड़ा।

(एक सूफी आख्यान)

शांति

मनुष्य जब कोई काम करनेसे बचना चाहता है तो उसे एक अच्छा बहाना मिल जाता है। वह कहता है, "भई इसे तो सोच-समझकर शांतिसे करना चाहिये।" और उसके विचार इतने लंबे चौड़े होते हैं कि बेचारा काम उसका मुंह ताकता रह जाता है। किसी गांवमें यह कहानी प्रचलित है। एक दिन लोगोंने देखा कि रामूको कुछ पागलपन सूझा और उसने अपना सिर भैंसके सींगोंमें जाकर फंसा दिया। भैंस बीच बाजार भागी जा रही है और रामू चिल्ला-चिल्लाकर आसमान सिरपर उठा रहा है। एक हट्टे-कट्टे ग्वालेने साहस करके भैंसकी पूंछ पकड़ ली। दूसरे ग्वालेने सामनेसे सींगको थाम लिया तब कहीं जाकर रामू महाशय भैंसके सिंहासन नहीं सींगासनसे उतरे। मित्रोंने उलाहना दिया, "अरे भई, जरा सोचता तो! शांतिसे विचार करता! क्यों भैंससे भिड़ने दौड़ा था?" रामूने सिर खुजलाते हुए कहा, "सोचा तो था, छः महीनोंतक सोचता रहा।"

एक मित्रने पूछा, "क्या सोचते रहे?" रामू कुछ शरमाया फिर बोला यही कि भैंसके सींग बड़े हैं या मेरा सिर! कभी सोचता सिर बड़ा है, कभी सोचता सींग। रोज-रोजकी इस चख-चखसे तंग आ गया तो आज सोचा नापकर क्यों न देख लूं। मैंने सींगोंके बीच सिर डाला ही था कि वह बिदककर भाग खड़ी हुई। मैं सिर निकालनेवाला ही था लेकिन उसने मुझे अवसर न दिया। तो

सोचा, सब कुछ शांतिसे करना आदि सब बड़े आकर्षक बहाने बन जाते हैं आलसियोंके लिये।

कहीं पढ़ा था कि कवियोंको जब काव्यकी प्रेरणा, यानी कविताकी पंक्तियां यूं ही सूक्ष्म जगत्‌से आती हैं तब उन्हें उसी समय लिखनेके लिये बैठना पड़ता है, शांतिसे लिखने बैठें तो प्रेरणा ही गायब हो जाती है।

युद्ध क्षेत्रमें भी आक्रमण करते समय सिपाही शांतिसे सोच नहीं सकते। उन्हें आदेश मिलते ही धावा बोलना पड़ता है।

वास्तविक शांतिसे कम ही लोग परिचित होंगे। जो शांति शांति रटते हैं वे अपने तमस, आलस्य और आरामको बनाए रखनेके लिये उसका उपयोग करते हैं।

शक्तिसे भरपूर शांतिकी बातें कम करता है। बलहीन और आलसी ही शांतिकी दुहाई दे देकर उसे बदनाम करते हैं।

स्फूर्ति, बल और साहससे भरा मनुष्य हमेशा अच्छी नस्लके घोड़े-सा, कामके लिये तत्पर और उत्सुक रहता है।

—अनुबेन

गीर्वाण वाणी

अवाच्यानां सहस्राणि कथयन्तु न मन्मनः।
मालिन्यम् एत्युदासीनं रजोभिर् मुकुरो यथा॥

मेरे लिए चाहे कोई अपने मुंहसे हजार गालियां भी क्यों न निकाले, मेरे मनके वासीको (आत्माको) उससे किसी तरहका खेद नहीं पहुंचेगा। मैं अगर सहज (स्वात्म) शंकर की भक्त हूं तो भला मेरे मन-दर्पणपर मैल कैसे जम सकती है?

कश्चित् प्रसुप्तोऽपि विबुद्ध एव कश्चित् प्रबुद्धोऽपि च सुप्ततुल्यः।
स्नातोऽपि कश्चिदशुचिर्मतो मे भुक्त्वा स्त्रियं चाप्यपरः सुपूतः ॥

कुछ (व्यक्ति ऐसे होते हैं जो) निद्रामग्न होकर भी जागृत रहते हैं। कुछ जागृत होनेपर भी निद्रामग्न रहते हैं। कुछ स्नान करनेपर भी अपवित्र रहते हैं तथा कुछ घर (गृहस्थी) करने पर भी अक्रिय अर्थात् निर्लिप्त रहते हैं।

पंच चैव विकारा दश तथैकादश संख्यकाः।
गता विहाय मे देहं भिन्न-भिन्नानुमार्गगाः।
यदि ते गां हि कर्षेयुरेक मार्गानुसारतः।
अहो मदीया धी-धेनुः कथं भूयात् कुमार्गगा ॥

इन पांच (तत्वों), दस (विकारों) और ग्यारह (पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और एक मन) का क्या करूं। ये सब मेरी हंडिया (देह)को खाली कर गये। (सभी भिन्न दिशाओंकी ओर जा रहे हैं) काश ! ये सभी मिलकर एक ही दिशामें रस्सीको खींचते तो भला फिर ग्यारहकी देख-रेख रहते भी गाय कैसे भाग सकती थी [1]

(भुवनवाणी प्रेस लखनऊसे प्रकाशित 'लल्यद्'से साभार)

---

[1] कश्मीरी भाषा में 'कहन गाव रावन्य' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है अत्यधिक सावधानीके बाद भी किसी चीजका खो जाना। मुहावरेका शाब्दिक अर्थ है—ग्यारह (ग्वालों) की देखरेख से गायका भाग जाना।

एक तरुण साधकका माताजी और श्रीअरविंदके साथ पत्र-व्यवहार

अंधकारमय प्राण, तेजोमय प्राणमें कैसे बदला जा सकता है?

प्राणके समर्पण, उसे प्रकाशके प्रति खोलकर और चेतनाके विकासके द्वारा।
(४ मार्च, १९३३) —माताजी

कल रात मुझे यह विचार आया कि मैं पूरी तरहसे चुप रहनेकी कोशिश करूं, यहांतक कि हंसूं और सोचूं भी नहीं। केवल माताजी-के बारेमें सोचूं। परम प्रभुसे प्रार्थना करूं।

हंसना और सोचना नहीं, यह जरा ज्यादती है।

मैंने अपने-आपसे कहा पूरे दिन चुप क्यों न रहूं? मैं इसे करनेकी कोशिश करूंगा।

यह जरा ज्यादा ही है। एकदमसे चुप रहनेकी अपेक्षा अपनी भाषापर संयम कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। सीखने लायक सबसे अच्छी चीज यह है कि जो उपयोगी है उसे अधिकाधिक यथार्थ और यथासंभव सच्चे तरीकेसे कहा जाय।
(५ मार्च, १९३३) —माताजी

कभी-कभी मैं एकदम अचंचल हो जाता हूं। मैं किसीसे नहीं बोलता। मैं परम प्रभुके बारेमें सोचता हुआ अकेला टहलता रहता हूं, अगर कोई मुझसे बातें करे और अगर कभी-कभी व्यर्थ

बोलता रहे तो मैं उसका उत्तर नहीं देता। इस अवस्थाको हर समय रखना ठीक है क्या?

यह उत्तम अवस्था है जो बिना किसी हानिके रखी जा सकती है लेकिन यह निष्कपट होनी चाहिये। यानी, यह अचंचल रहनेका आभास नहीं होना चाहिये बल्कि एक सच्ची और गभीर अचंचलता होनी चाहिये जो तुम्हें सहज रूपसे चुप रखती है।

— माताजी

(९ मार्च, १९३३)

(लिफाफेके ऊपर किसी चित्रके बारेमें) क्या यह बकरी है?

यह एण्टीलोप (एक प्रकारका हिरण) है जिसका अर्थ है "गतिमें तेजी।" बकरी फुर्तीका प्रतीक है।

— माताजी

(९ मार्च, १९३३)

(सूअरोंके एक चित्रके बारेमें)

जो लिफाफा मैं भेज रही हूं वह प्रकृतिमें प्राणकी अंधकारमय क्रियाओंका प्रतिनिधित्व करता है।

— माताजी

(१५ मार्च, १९३३)

मैं यह नहीं जानता कि कौन-सा पहला है, कौन-सा दूसरा इत्यादि। उदाहरणके लिये सत्यके बाद क्या आता है?

सत्यके बाद सत्य आता है और फिरसे सत्य।

'ज्ञ' ने मुझसे माताजीसे यह पूछनेके लिये कहा कि मुझे क्या पढ़ना चाहिये। क्या मैं 'ज्ञ' के साथ 'आर्य' पढ़ सकता हूं?

हां, तुम गीता प्रबन्ध[१] से शुरू कर सकते हो।

आज सुबह मैं सोया।

दिनमें नहीं सोना ज्यादा अच्छा है और रातको पूरी नींद लेनी चाहिये।
(२५ मार्च, १९३३) — श्रीअरविंद

रातको मैं ग्यारह बजेके बाद ही अच्छी तरह सोता हूं। मैं साढ़े पांच बजे उठता हूं; लेकिन मैं चार साढ़े चार बजे जग जाता हूं।

जगनेके बाद भी बिस्तरपर पड़े रहना अच्छा नहीं है। यह आराम देनेकी वजाय अधिक थकानेवाली चीज है और यह तमस्को भी बढ़ाती है। ज्यादा अच्छा है कि जगते ही तुम बिस्तरसे वाहर निकल आओ, फिर तुम्हें रातमें नींद आयेगी और तुम ज्यादा जल्दी सो सकोगे। आधी रातसे पहलेके घण्टे सोनेके लिये सबसे अच्छे और आरामदायक होते हैं।
(२५ मार्च, १९३३) — माताजी

प्रह्लादकी कहानीमें वह मरने-मरनेको था लेकिन उसने केवल भगवान्के बारेमें सोचा जिन्होंने उसकी चेतनामें आगका स्थान ले लिया जो उसे जला देती। मृत्यु जीवनमें, हर्षमें बदल गयी और उसके द्वारा उसने भागवत प्रकाशको चरितार्थ किया। क्या इस

---

[१] 'गीता प्रबन्ध' सबसे पहले आर्यमें प्रकाशित हुआ था। आर्य एक दार्शनिक मासिक पत्रिका थी जो १९१४से १९२१ तक जारी रही। इसीमें श्रीअरविंदके मुख्य ग्रन्थ क्रमशः प्रकाशित हुए थे।

कहानीका यह अर्थ है कि भगवान्‌के द्वारा या भगवान्‌की सहायता-द्वारा, कठिन चीजें सरल चीजोंमें बदल सकती हैं, यहांतक कि मृत्यु जीवनमें ?

हां, नैतिक रूपमें यह सच है और एक दिन यह भौतिक रूपमें भी सच होगा।

— माताजी

(२६ मार्च, १९३३)

मैं आपसे दो और बातें पूछना चाहता हूं जो मुझे अब याद हैं। मेरे लिये लिख दीजिए : "प्राणको आश्वासन देनेके लिये कहानियां न पढ़ो" और दूसरी चीज है : "प्राणको संतुष्ट करने या उसे प्रसन्न करनेके लिये अनावश्यक बातें मत करो।"

हल्की और अस्वस्थ चीजें पढ़नेमें समय नष्ट न करो।
निरर्थक बातोंमें अपनी शक्ति नष्ट मत करो।

— माताजी

(२८ मार्च, १९३३)

"गीता प्रबन्ध"के सातवें अध्यायमें श्रीअरविंद लिखते हैं :

"अर्जुनकी वेगवती शंकाओंकी जो पहली बाढ़ आयी — जिसमें उसका चित्त, संहार-कर्मसे हट गया, जिसमें उसे दुःख और पाप ही दीखने लगा, जीवन शून्य और निस्सार प्रतीत होने लगा, पाप-कर्मसे भविष्यमें होनेवाले पापमय परिणाम दिखायी देने लगे — उनका एक ही उत्तर भागवत परम गुरुने दिया और वह था एक बड़ी फटकार। उन्होंने कहा कि यह सब उसके मनकी उथल-पुथल है, मनका भ्रम है, उसके हृदयका दौर्बल्य है, कापुरुषता है, उसके अपने क्षात्र तेजसे, शूरवीरके पौरुषसे च्युत होना है . . . यह आर्योंकी नीति नहीं है, यह भाव न तो स्वर्गसे आया है, न स्वर्ग ले जानेवाला है। और इस लोकमें वह उस कीर्तिका नाश करनेवाला

हैं जो बल, वीर्य, पराक्रम और उदार कर्मसे ही प्राप्त हुआ करती है। इसलिये यही उचित है कि वह इस दुर्बल और आत्म-केंद्रित दयाको त्यागकर अपने शत्रुओंका संहार करनेके लिये आ खड़ा हो।"

इसका क्या अर्थ है? क्या इसका यह अर्थ है: जब हम योग करनेके लिये मां, बाप भाई, बहनके संबन्धको त्याग देते हैं तो हमें उनके लिये किसी तरहकी अनुकंपा नहीं होनी चाहिये। हमें उन्हें बिना किसी विचारके छोड़ देना चाहिये।

यह अनुच्छेद गीतामें अर्जुनको दी गयी श्रीकृष्णकी पहली सलाहका वर्णन करता है — इस योगके लिये यह एक नियमके रूपमें नहीं दिया गया है। तुम अपनी व्याख्यामें जो कहते हो वह सच है — लेकिन वह इस अनुच्छेदके अर्थसे स्वतन्त्र अपने-आपमें सच है।
(२९ मार्च, १९३३) — श्रीअरविंद

कुरुक्षेत्रके युद्धमें, एक ओर सत्य या धर्म था और दूसरी ओर मिथ्यात्व या अधर्म था।

मानव संघर्षमें हमेशा मिश्रण होता है।

अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा कि वह लड़नेमें असमर्थ था, क्योंकि वह अपने सगे-संबन्धियोंको नहीं मारना चाहता था — उनके बिना जीवन व्यर्थ होता है।

यह सामाजिक और पारिवारिक लगाव है।

क्या वे विरोधी शक्तियां नहीं थीं जिन्होंने उससे यह कहलवाया?

वह मानव अज्ञान था जिसने उससे यह कहलवाया और जिसके कारण उसने ऐसा सोचा।

जब श्रीकृष्णने अर्जुनको अपनी सलाह दी तो क्या उन्होंने उसमें कोई शक्ति नहीं डाली ताकि जो वह कह रहे थे उसे अर्जुन समझ सके ?

उन्होंने अर्जुनको प्रकाश, ज्ञान और चेतना दी और उसके अज्ञान-को हटा दिया।

(३० मार्च, १९३३) — श्रीअरविंद

विद्यार्थियोंको दी गयी वार्तासे

मधुर मां, यहां आश्रममें रहते हुए हमें जितना लाभ उठा सकना चाहिये हम उतना लाभ क्यों नहीं उठाते ?

आह ! यह तो बहुत सीधी-सी बात है, इसलिये क्योंकि यह बहुत आसान है। . . . जब गुरुको ढूढ़नेके लिये तुम्हें सारी दुनियाका चक्कर लगाना पड़े, जब तुम्हें शिक्षाके पहले शब्दोंको पानेके लिये सब कुछ त्यागना पड़े, तब, वह शिक्षा, वह आध्यात्मिक सहायता उस चीजकी तरह बहुत अनमोल बन जाती है जो बड़ी कठिनाईसे मिलती है और तुम उसके अधिकारी बननेके लिये बहुत प्रयास करते हो।

तुममेंसे अधिकतर यहां तब आये जब तुम बहुत छोटे थे, ऐसी उम्र थी जब आध्यात्मिक जीवनका या आध्यात्मिक शिक्षाका कोई प्रश्न ही नहीं उठता . . . वह बिलकुल असामयिक होता। तुम यहांके वातावरणमें रहे जरूर पर उसे जाने बिना, तुम मुझे देखनेके, मेरी बात सुनने के अभ्यस्त हो, मैं तुम्हारे साथ ऐसे बात करती हूं जैसे सभी बच्चोंके साथ की जाती है। मैं तुम्हारे साथ खेली तक हूं जैसे कोई बच्चोंके साथ खेलता है, तुम्हें बस यहां आना और बैठना होता है और तुम मुझे बोलते हुए सुनते हो, तुम्हें सिर्फ प्रश्न करना होता है और मैं उत्तर दे देती हूं। मैंने कभी किसीको कोई बात बतानेसे इंकार नहीं किया। यह इतना सरल है। बस इतना

काफी है . . . जीना, — सोना, खाना, व्यायाम करना और विद्यालयमें अध्ययन करना। तुम यहां वैसे ही रहते हो जैसे कहीं बाहर रहते। और इसलिये, तुम इसके आदी हो गये हो।

यदि मैंने कड़े नियम बनाये होते, यदि मैंने कहा होता: "मैं तुम्हें तबतक कुछ नहीं बताऊंगी जबतक तुम उसे जाननेके लिये प्रयास नहीं करते," तो शायद तुम कुछ प्रयास करते, पर नहीं, यह मेरे विचारोंसे मेल नहीं खाता। कठोर शिक्षाकी अपेक्षा मैं वातावरणकी शक्ति और उदाहरणपर ज्यादा विश्वास करती हूं। मैं विधिवत् अनुशासित प्रयत्नकी अपेक्षा मूक संचार द्वारा सत्तामें कुछ जगा देनेपर ज्यादा भरोसा करती हूं।

शायद, अंततः, कोई चीज तैयार हो रही है और एक दिन वह फूट निकलेगी।

मैं इसकी आशा करती हूं।

एक दिन तुम अपने-आप कहोगे: "अरे! मैं इतने समयसे यहां हूं मुझे कितना कुछ सीख लेना चाहिये था, उपलब्ध कर लेना चाहिये था, और मैंने कभी इसके बारेमें सोचातक नहीं। बस, ऐसे ही कभी-कभार!" और तब, उस दिन . . हां, उस दिन, जरा कल्पना करो, तुम सहसा एक ऐसी चीजके प्रति जागृत हो उठोगे जिसकी ओर कभी तुम्हारा ध्यान ही नहीं गया लेकिन जो तुम्हारे भीतर गहराईमें है, जिसमें सत्यके लिये प्यास है, रूपांतरके लिये प्यास है और जो इसे पानेके लिये अपेक्षित प्रयत्न करनेको तैयार है। उस दिन तुम बहुत तेज चलोगे, लंबे डगोंसे आगे बढ़ोगे . . .। शायद जैसा कि मैंने कहा था, आज पांच साल बाद, वह दिन आ पहुंचा है। मैंने कहा था: "मैं तुम्हें पांच साल देती हूं . . .।[1] अब वे पांच

[1]जुलाई १९५३में माताजीने कहा था, "मेरे बच्चो, पांच साल बाद मैं तुम्हें आध्यात्मिक जीवनके बारेमें पढ़ाऊंगी। मैं तुम्हें स्वयं-को तैयार करनेके लिये पांच साल देती हूं। . . .।"

साल बीत गये हैं, अतः शायद वह दिन आ गया है। शायद, तुम अचानक एक अदमनीय आवश्यकता अनुभव करो कि अब निश्चेतन और अज्ञानमें नहीं जीना है, उस अवस्थामें नहीं रहना है जिसमें कारण जाने बिना तुम काम करते हो, कारण समझे बिना अनुभव करते हो, विरोधी इच्छाएं रखते हो, किसी चीजके बारेमें कुछ नहीं समझते, केवल आदत, दिनचर्या और प्रतिक्रियावश जीते हो, बस जीवनको सहज रूपमें लेते हो। और एक दिन आता है जब तुम उससे संतुष्ट नहीं रहते।

तुम देखोगे कि यह हर एकके लिये अलग-अलग है। ज्यादातर यह जानने, समझनेकी आवश्यकता होती है; कुछ लोगोंके लिये यह जो कुछ करना चाहिये और जैसे करना चाहिये उसे वैसा करनेकी आवश्यकता होती है; कुछ दूसरोंके लिये यह एक धुंधली-सी अनुभूति होती है कि इस इतने अचेतन, व्यर्थ और निरर्थक जीवनके पीछे कुछ ऐसी चीज है जो जीनेके **लायक** है, जिसे पाना है — एक सद्वस्तु है, इन मिथ्यात्वों और मायाजालोंके परे एक सत्य है।

सहसा तुम महसूस करते हो कि जो कुछ तुम कर रहे हो, जो कुछ देख रहे हो उसका कोई अर्थ नहीं, उसके अस्तित्वका कोई हेतु नहीं, लेकिन कहीं **कुछ ऐसा** है जिसका अर्थ है कि मूलतः हम यहां इस धरतीपर किसी कामके लिये हैं, इस सबका, इन सब गतिविधियोंका, सब उद्वेगोंका, शक्ति और ऊर्जाके इस सारे अपव्ययका जरूर कोई प्रयोजन होना चाहिये — उद्देश्य होना चाहिये, और यह बेचैनी जो हम अपने अंदर अनुभव कर रहे हैं, यह असंतोष, यह आवश्यकता, किसी चीजके लिये प्यास जरूर हमें कहीं ले जायेंगी।

और एक दिन तुम अपनेसे पूछते हो। "पर हमारा जन्म क्यों हुआ...हम मर क्यों जाते हैं? ...हम दुःख क्यों भोगते हैं? ...हम काम क्यों करते हैं..."

अब तुम एक छोटी-सी मशीनकी तरह नहीं रह जाते, मुश्किलसे अर्धचेतन। तुम सचमुच अनुभव करना, सचमुच काम करना, सच-

सुच जानना चाहते हो। तब, साधारण जीवनमें व्यक्ति पुस्तकें खोजता है, ऐसे लोगोंको ढूंढ़ता है जो उससे थोड़ा ज्यादा जानते हों, किसी ऐसेकी खोज शुरू करता है जो इन प्रश्नोंका समाधान कर सके, 'अज्ञान'का परदा उठा सके। यहां, अब यह सब बहुत आसान है। तुम्हें केवल...वही करना होता है जो प्रतिदिन करते हो, लेकिन करना होता है किसी उद्देश्यसे।

तुम समाधिपर जाते हो, श्रीअरविंदका चित्र देखते हो, मुझसे फूल लेने आते हो, पढ़ने बैठते हो, तुम वह सब करते हो जो प्रायः किया करते हो लेकिन..अपने अंदर एक प्रश्न लिये : क्यों?

और तब, यदि तुम प्रश्न करो तो तुम्हें उत्तर मिल जाता है। क्यों?

क्योंकि अब हम वैसा जीवन नहीं चाहते जैसा वह है, क्योंकि हम अब मिथ्या और अज्ञानको नहीं चाहते, क्योंकि हम पीड़ा और अचेतनताको और नहीं चाहते, क्योंकि हम अव्यवस्था एवं दुर्भावनाको और नहीं चाहते, क्योंकि श्रीअरविंद हमें यह बतानेके लिये आये हैं—सत्यको पानेके लिये धरतीको छोड़नेकी जरूरत नहीं, अपनी अंतरात्माको पानेके लिये जीवनका त्याग आवश्यक नहीं, भगवान्‌के साथ संबंध जोड़नेके लिये संसारका त्याग या सीमित मत रखना जरूरी नहीं है। भगवान् सब जगह हैं, हर वस्तुमें हैं और यदि वे छिपे हुए हैं तो इसलिये कि हम उन्हें ढूंढ़नेका कष्ट नहीं उठाते।

मात्र एक सच्ची अभीप्साद्वारा हम अपने अंदरका मुहरबंद द्वार खोल सकते हैं और पा सकते हैं.. वह 'कोई' चीज जो जीवनकी सारी सार्थकताको बदल देगी, हमारे सारे प्रश्नोंका उत्तर दे देगी, सारी समस्यायोंका हल कर देगी और हमें उस पूर्णता और सद्वस्तुतक ले जायेगी जिसके लिये हम अनजाने अभीप्सा करते हैं, केवल वही हमें संतुष्ट कर सकती है और स्थायी उत्फुल्लता, संतुलन, बल और जीवन दे सकती है।

यह सब तो तुम बहुत बार सुन चुके हो।

तुम सुन चुके हो—ओह! यहां कुछ ऐसे भी हैं जो इसके इतने आदी हो चुके हैं कि यह उन्हें वैसा ही लगता है जैसे एक गिलास पानी पीना या धूपके लिये अपनी खिड़की खोलना।

पर चूंकि मैंने तुम्हें वचन दिया था कि पांच सालमें तुम इन चीजोंको जी सकोगे, इनका ठोस, सच्चा विश्वास दिलानेवाला अनुभव पाओगे तो, इसका मतलब है कि तुम्हें तैयार हो जाना चाहिये और यह कि हम शुरू करनेवाले हैं।

हमने थोड़ा-सा प्रयत्न किया है लेकिन अब गंभीरतासे करने जा रहे हैं।

आरंभिक बिंदु: इच्छा करना, सचमुच चाहना, इसकी जरूरत महसूस करना। अगला चरण: केवल उसीके बारेमें सोचना। एक दिन आयेगा, बहुत जल्दी आयेगा, जब तुम किसी और चीजके बारेमें सोच ही न सकोगे।

यही एक चीज है जिसका कुछ मूल्य है। और इसके बाद...

तुम अपनी अभीप्साको शब्दबद्ध करते हो, अपने हृदयसे सच्ची प्रार्थनाका निर्झर फूटने देते हो जो तुम्हारी आवश्यकताकी सच्चाईको व्यक्त करती है। और तब... हां, तब तुम देखोगे कि क्या होता है।

कुछ होगा। निश्चय ही कुछ होगा। हर एकके लिये इसका रूप भिन्न होगा।

धम्मपदसे

पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति॥

जो सेवा-सत्कार स्वभाववाला तथा आचार (पालन)में निपुण है, सानंद दुःखका अंत करेगा।

वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो॥

जैसे जूही कुम्हलाये फूलोंको गिरा देती है वैसे ही, हे भिक्षुओ! (तुम) राग और द्वेषको छोड़ दो।

सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खू उपसन्तो'ति वुच्चति॥

काया (और) वचनसे शांत, भली प्रकार समाधियुक्त शांति सहित (तथा) जिसने लोकके आमिषको वमन कर दिया ऐसे भिक्षुको "उपशांत" कहा जाता है।

अत्तना चोदय'त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खू विहाहिसि॥

(जो) अपने ही आपको प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संलग्न करेगा; वह आत्म-गुप्त (= अपने द्वारा रक्षित), स्मृतिसंयुक्त भिक्षु सुखसे विहार करेगा।

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा सञ्ञमयत्तानं अस्सं भद्रं'व वाणिजो॥

(मनुष्य) स्वयं अपना स्वामी है, स्वयं अपनी गति है; इसलिये अपनेको संयमी बनाये, जैसे कि सुंदर घोड़ेको बनिया (संयत करता है)।

पामोज्जबहुलो भिक्खू पसन्नो बुद्धसासने॥
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं॥

बुद्धके उपदेशमें प्रसन्न, बहुत प्रमोदयुक्त भिक्षु संस्कारोंको उपशमन करनेवाले सुखमय, शांत पदको प्राप्त करता है।

यो ह वे दहरो भिक्खु युञ्जते बुद्धसासने।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा॥

जो भिक्षु यौवनमें बुद्ध-शासन (= बुद्धोपदेश, बुद्ध-धर्म)में संलग्न होता है, वह मेघसे मुक्त चंद्रमाकी भांति इस लोकको प्रकाशित करता है।

यहां जो सलाहें दी गयी हैं उनमेंसे एक सलाह है कि हमेशा सद्भावनापूर्ण बने रहो। इसे आमतौरपर दी जानेवाली घिसी-पिटी सलाहोंमेंसे एक न मान लेना चाहिये। यहां एक काफी मजेदार बात कही गयी है, इसे बहुत मजेदार भी कह सकते हैं। मैं टीका करती हूं: "हमेशा सद्भावनापूर्ण बने रहो और तुम दुःखसे मुक्त हो जाओगे, हमेशा संतोषी और सुखी रहोगे। तुम अपना शांत सुख चारों ओर फैलाओगे।"

यह खास ध्यान देने योग्य बात है कि पाचनकी सभी क्रियाएं आलोचनापूर्ण, दुर्भावनापूर्ण, तीखे मनोभावके प्रति और कटु निर्णयके प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। उसके सिवा पाचनका कार्य और किसी भी वस्तुसे इतना नहीं बिगड़ता। यह एक दुष्चक्र है:

जितनी अधिक पाचनक्रिया बिगड़ती है, उतने ही अधिक तुम दुर्भावनापूर्ण, आलोचनापूर्ण जीवनसे, चीजोंसे और मनुष्योंसे असंतुष्ट होते हो। इस तरह तुम उसमेंसे निकल नहीं पाते। और इसके लिये बस एक ही उपचार है, वह है निरंतर संयमद्वारा इस मनोभावसे समझ-बूझकर निकल आना, उसे पूरी तरह अस्वीकार करना और उसे अपने ऊपर लदने न देना, पूर्ण सद्भावनाका अभीष्ट मनोभाव अपना लेना। कोशिश करो और तुम देखोगे कि तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो गया है।

२२-८-१९५८ (श्रीमातृवाणी खंड ३से)

——:०:——

जब हम मानसिक गतिविधि या बौद्धिक कार्योंमें एकाग्र हों तो कभी-कभी हम भगवान्‌को भूल क्यों जाते हैं, उनसे संपर्क क्यों खो बैठते हैं?

तुम इसलिये खो बैठते हो क्योंकि अभीतक तुम्हारी चेतना विभक्त है। भगवान् अभीतक तुम्हारे मनमें स्थिर नहीं हैं। तुम पूरी तरह भागवत जीवनको निवेदित नहीं हो। अन्यथा तुम ऐसी चीजोंपर चाहे जितना एकाग्र हो फिर भी तुम्हारे अंदर यह भाव रहेगा कि भगवान् तुम्हारी सहायता कर रहे हैं और तुम्हें सहारा दे रहे हैं।

सभी व्यापारोंमें चाहे वे बौद्धिक हों या सक्रिय तुम्हारा एक मात्र मुद्रा लेख होना चाहिये — स्मरण करो और अर्पण करो। तुम जो कुछ भी करो भगवान्‌के प्रति अर्पणके रूपमें करो। यह तुम्हारे लिये बड़ी अच्छी साधना होगी जो तुम्हें बहुत-सी मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ चीजें करनेसे बचाएगी।

—माताजी

परम ज्योतिकी ओर

कुछ लोग, प्रायः सब, अपने संवेदनोंमें जीते हैं।

यहांतक कि वे केवल अपने वर्तमान क्षणके बारेमें ही सचेतन होते हैं। इन्हें अपने सारे जीवनकी चेतना सिखानी चाहिये और यह बताना चाहिये कि वे जो कुछ अनुभव करते हैं वह अस्थायी है और वह उनके जीवन-कालमें अनगिनत विपरीत संवेदनोंके द्वारा प्रतिस्थापित किया जायगा।

(मोम बत्ती)

जो अपने संपूर्ण जीवनके बारेमें सचेतन हो गये हैं उन्हें अपनी चेतनाको पृथ्वीकी चेतनाके साथ एक करना सिखाना होगा (अपनी सत्ताकी गहराइयोंमें प्रवेश करना जो पार्थिव नियतियोंके साथ एक है) — धरतीके जीवन-कालकी तुलनामें एक जीवनकी अवधि है ही क्या?

(गैसकी रोशनी)

जो पार्थिव जीवनके बारेमें सचेतन हो गये हैं उन्हें अपनी चेतनाका वैश्व चेतनाके साथ तादात्म्य करना सिखाना होगा, अपने अंदर वह चीज खोजनी होगी जो विश्वके साथ एक है और तबतक रहेगी जबतक विश्व है। (समस्त विश्वके जीवन-कालकी तुलनामें धरतीकी अवधि क्या है? एक श्वास!)

(बिजलीकी रोशनी)

जो वैश्व जीवनके बारेमें, उसके सब रूपोंमें सचेतन हो गये हैं, उन्हें 'उस' चेतनाके साथ तादात्म्य साधना सिखाना होगा जो शाश्वत है, जो अनादि और अनंत है, जो स्थायी और अक्षर है, जिसके परे कुछ नहीं।

और उनके लिये कभी न बुझनेवाली ज्योति जगेगी।

('परम ज्योति')

(श्रीमातृवाणी खंड २से)

सोसायटी समाचार

हमें यह घोषणा करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि ओस्लोमें ३० जून १९८३की सभामें श्रीअरविंद सोसायटीके अध्यक्ष डा० पी० पी० नारायणन फिरसे अगले चार वर्षोंके लिए 'इण्टरनेशनल कान्फडरेशन आफ फ्री ट्रेड यूनिअन्स'के विश्व-सभापति चुने गये। इसका मुख्य कार्यालय ब्रूसेल्समें होगा। १२ जुलाई १९८३को जमशेदपुरमें 'इण्यिन नैशनल मेटल वर्कर्स फेडरेशन' ने डा० पी० पी० नारायणन को 'माइकेल जान राल आफ आनर' पदकसे सम्मानित किया।

१४ अगस्त १९८३ आकाशवाणी पाण्डिचेरीसे डा० नारायणनका भाषण प्रसारित किया गया: विषय था "श्रीअरविंदके जीवनका महत्त्व।" उन्होंने अपने भाषणमें कहा कि श्रीअरविंदके जीवनका महान् अर्थ है: उनके द्वारा दिया गया अंतर्दर्शन और उनके द्वारा उतारी गयी नयी शक्ति। उन्होंने श्रीअरविंदके दृष्टिकोणसे शिक्षा, विज्ञान, कला, कर्म इत्यादिके उद्देश्यकी महानता बतलायी। उन्होंने कहा कि जीविकोपार्जनके लिए काम करना नहीं बल्कि अपनी सच्ची आत्माको उजागर करना, संप्रदायके लिए काम करते हुए भी अपनी संभावनाओं और क्षमताओंको विकसित करना व्यक्तिका लक्ष्य होना चाहिए।

वार्षिक अधिवेशन

१९८३का सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन पांडिचेरीमें १३ और १४ अगस्तको हुआ। इसमें सभापतिके भाषणके बाद पांडिचेरीमें सोसायटीकी विभिन्न योजनाओंका लेखा-जोखा और भविष्यके कार्यकी चर्चा हुई।

अधिवेशनका आरंभ माताजीके ध्वन्यांकित संदेशसे हुआ। जनरल

सेक्रेटरी श्री गुरु परशादने स्वागतमें कुछ शब्द कहे, फिर श्री नवजात-की "हमारा लक्ष्य और उद्देश्य" ध्वन्यांकित टेप सुनी गयी। इसमें उन्होंने श्रीअरविंद सोसायटीका इतिहास, उसके महान् कार्य इत्यादि पर प्रकाश डाला था। उसके बाद डा० पी० पी० नारायणनका भाषण हुआ जिसमें उन्होंने आगामी वर्षके कार्यके लिए कई सुझाव दिये।

इस अवसरपर श्री विजय पोद्दारने हृदयस्पर्शी भाषण दिया। उनका विषय था "हमारे आगेका कार्य।" इसके साथ-साथ कई आश्रमवासियोंने श्रीअरविंद और माताजीके साथके अपने अनुभव सुनाये। पांडिचेरी और बाहरके सोसायटीके विभिन्न केंद्रों और शाखाओंके कार्यकर्ताओंने अपने यहांके कार्योंका विवरण दिया। कइयोंके भाषण हुए। सभाके अंतमें अध्यक्षने कहा कि हमें कभी न भूलना चाहिए कि श्रीअरविंद सोसायटी एक आध्यात्मिक संस्था है और इसका राजनीतिसे कोई वास्ता नहीं।

११ और १२ अगस्तको डा० ह० माहेश्वरीने कार्यकर्ता शिविरका संचालन किया जिसके भिन्न-भिन्न विषयोंपर कई सत्र हुए। जो इसके बारेमें पूरी-पूरी जानकारी चाहते हैं वे श्री अश्विन महा-देवियाके साथ संपर्क कर सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सूचनाएं

१५ मई १९८३को सिंगापुरकी श्रीअरविंद सोसायटी अपने नये स्थान—सिंगापुर इण्डियन फाइन आर्टस सोसायटी, २, बैलेस्टियर रोड, सिंगापुर—१२३२ पर चली गयी है।

लंडनमें ४से १५ जुलाईतक 'इण्टरनेशनल इंस्टीटयूट फार ह्यूमन यूनिटी' और 'श्रीअरविंद सेन्टर'के संयुक्त तत्त्वावधानमें डा. रोहित मेहताने श्रीअरविंदकी 'एसेज आन दी गीता'के आधारपर भाषण-माला दी।

पहली बार श्रीअरविंदके अवशेष भारतके बाहर गये। पेन्साकोला

(फ्लोरिडा) के सर्वांगीण ज्ञान-केंद्रके अध्यक्ष रैड हिक्सने जुलाई १९८३ को उन्हें वहांके केंद्रमें स्थापित किया।

केंद्रों और शाखाओंकी सूचनाएं

बड़ौदामें श्रीअरविंद निवासमें श्रीअरविंद युवा परिषद्की स्थापना हुई। इसमें ध्यान, प्रार्थना, अध्ययन, आपसी विचार-विमर्श, विद्वानोंके भाषण, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रदर्शनियां, खेल-कूद इत्यादि चीजें की जायेंगी। हफ्तेमें दो दिन सदस्य मिलते हैं।

बड़ौदामें श्रीअरविंद निवासमें शेरा (जिला भरुच) के श्री मणिभाई पटेलने एक्यूप्रेशर चिकित्साकी एक सरल विधि दिखलायी। इस चिकित्सामें तलवों और हथेलियोंके विशेष बिन्दुओंपर दबाव डालना होता है।

अमरावती (महाराष्ट्र) में २६से ३० जून १९८३तक डा० ह० माहेश्वरीके "गीताका संदेश"पर ५ भाषण हुए।

बैंगलोरमें (ई. सी. जी) के डा० सुदर्शनने दो रोचक भाषण दिये। उनका विषय था "वैज्ञानिक आध्यात्मिकताकी ओर देखता है।"

"विकास-क्रम, उसके विभिन्न पहलू" शीर्षक पर २१ अगस्तको एक विचार गोष्ठी हुई जिसमें कई सदस्योंने भाषण दिये।

२२ से २७ अगस्ततक डा० ह० माहेश्वरीने ७ भाषण दिये।

कलकत्तेमें डा० पी० पी० नारायणनने भाषण दिया, उनके अतिरिक्त और भी कई इस अवसरपर बोले।

पांडिचेरीमें स्कूलमें खेलनेकी चीजोंपर शोधकार्य

"अध्ययनको आनंद और स्वतंत्रताकी विधि कैसे बनाया जाय" यह प्रश्न संसारमें बहुतसे शिक्षाविदोंकी जबानपर है। NCERT नई दिल्लीके सहयोगसे श्रीअरविंद सोसायटीने "पांडिचेरीमें खेलनेकी

Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

Sri Aurobindo

आप अग्निशिखा पढ़ते हैं इससे स्पष्ट जाहिर है

कि आप इसे स्वयंके लिए और समाजके लिए उपयोगी रूपसे आवश्यक मानते हैं।

तो क्या आपका यह कर्तव्य नहीं बनता कि...

१ — अग्निशिखाको यथासंभव अर्थिक सहायता अलगसे भेजें।

२ — कम-से-कम ५ सदस्य बनाकर उनका चन्दा पांडिचेरी भिजवायें।

शुभ कामनाओंके साथ

ज्ञानचन्द्र गुप्त
तुलाराम भवन
६२४, सदर बाजार
दिल्ली ११०००६
फोन : कार्यालय : ५१४९८०, ५१४१४७, ५१९२०३
घर : ७४१७५१, ७११४४३५

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है।

तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये भी बहुमूल्य हो जायगा।

— श्रीमां









वस्तुएं" नामक योजना हाथमें ली है। इस योजनाके अंतर्गत छोटे बच्चोंके लिए शैक्षिक खिलौनों और खेलोंकी रचना की जा रही है।

इस सिलसिलेमें पहली बैठक ११ जुलाई १९८३को पांडिचेरीमें हुई। योजनाके अध्यक्ष श्री विजय पोद्दारने योजनाका खाका खींचा। पांडिचेरीके विभिन्न स्थानोंके करीब ३२ शिक्षकोंने इसमें भाग लिया। इसके साथ सोसायटीने उत्तम शैक्षिक खिलौने बनानेके लिए ३ पुरस्कारोंकी घोषणा की है। व्यक्ति पांडिचेरीवासी होना चाहिए।

घोषणाएं

श्रीअरविंद सोसायटीके गुजरात विभागकी १२हवीं वार्षिक बैठक बड़ौदामें ७ और ९ अक्तूबर १९८३को होगी। पांडिचेरीसे श्री चंपकलाल और श्री मनोजदास इसमें भाग लेंगे। अधिक जानकारीके लिए कृपया इस पतेपर पत्र-व्यवहार करें: श्री अंबाप्रेमी शाह, श्रीअरविंद निवास, डाण्डिया बाजार, बड़ौदा—३९०००१

श्रीअरविंद सोसायटी उत्तर प्रदेश विभागकी वार्षिक सभा १७से २२ अक्तूबर १९८३तक मथुरामें होगी। कृपया अधिक जानकारीके लिए श्री ए. एम. वाजपेयी, अमरनाथ विद्या आश्रम, मथुरा (यू. पी.)के साथ पत्र-व्यवहार करें।

अखिल बंगालके श्रीअरविंद युवा शिविरका आयोजन २८ से ३० अक्तूबर १९८३ तक पुरुलियामें होगा। अधिक जानकारीके लिए कृपया श्री श्यामल कुमार सेन, श्रीअरविंद सोसायटी, पुरुलिया-७२३१०१को लिखें।

श्री गणपति रामचन्द्रनका "बोलचालकी संस्कृत सीखो" नामक १० दिनका शिविर निम्नलिखित स्थानोंपर होगा:—नागपुर (महाराष्ट्र) १०से १४ अक्तूबर १९८३, शृंगेरी (कर्नाटक) १८से २८ अक्तूबर, कडलोर (तमिलनाडु) ७ से १६ नवबंर, आन्ध्र-प्रदेश २० से ३० नवबंर, उड़ीसा ५से १४ दिसबंर और उड़ीसामें २०से ३०

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 18135/70

REGD. No. M. 8731

दिसबंर १९८३ तक होगा। अधिक जानकारीके लिए कृपया विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम् पांडिचेरी-६०५००२को लिखें।

नये प्रकाशन

जेम्स फ्राम द मदर टु हुता — मू. ११०.००।
प्राप्त करनेका स्थान — शब्द, पांडिचेरी – ६०५००२
माताजीके हस्तलिखित संदेशोंकी माला है।

राज़ानो योग (गुजराती) ले. और प्रकाशक — पूजालाल, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी; पृष्ठ ७०, मूल्य १०.००।

इस पुस्तकमें श्रीअरविंदके सावित्री महाकाव्यके कुछ हिस्सेका गुजरातीमें पद्यानुवाद है।

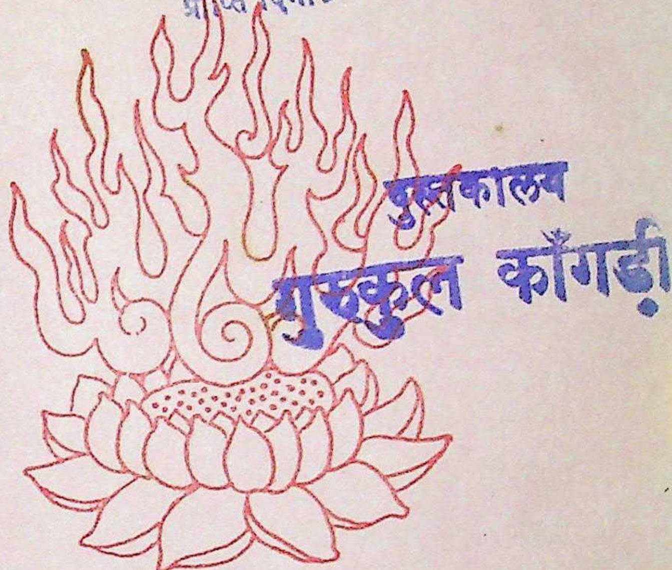
श्रीअरविंद सोसायटी पांडिचेरी – ६०५००२

'स्पिरिचुअल पार्टी आफ इंडिया' की पुस्तिकापर हमारा ध्यान खींचा गया है। इसमें माताजी और श्रीअरविंदके ग्रंथोंसे बहुत कुछ उद्धृत किया गया है।

हम सभी संबंधित व्यक्तियोंको यह बात पूरी तरहसे स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि श्रीअरविंद सोसायटीका इस संस्था या ऐसी किन्हीं संस्थाओंके साथ कोई सरोकार नहीं है।

१५-७-१९८३

ह० डा० पी० पी० नारायणन (अध्यक्ष)



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

सितम्बर १९८३ वर्ष १४, अंक २, पूर्णांक १५८



विषय सूची

वार्षिक चंदा अग्निशिखा रु० १०.०० पुरोधा १४.००
दोनों मिलाकर रु० २२.००
आजीवन सदस्यता अग्निशिखा रु० १७५.००; पुरोधा रु० २२५.००
दोनों मिलाकर रु० ४००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता:
संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन
प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

माताजीका संदेश

रे वालको !

हम एक ही लक्ष्य और एक ही उपलब्धिके लिये इकट्ठे हैं — क ऐसे अनोखे और नये कार्यके लिये जो भागवत् कृपाने हमें रितार्थ करनेके लिये प्रदान किया है। मैं आशा करती हूं कि म इस कार्यके असाधारण महत्त्वको अधिकाधिक समझोगे और पने अंदर उस उच्चतम आनंदका अनुभव करोगे जो इसकी चरि-ार्थता तुम्हें प्रदान करेगी।

भागवत शक्ति तुम्हारे साथ है — उसकी उपस्थितिका अधिका-धक अनुभव करोगे और उसे कभी धोखा न दोगे।

ऐसा अनुभव करो, ऐसी इच्छा करो, ऐसा कार्य करो कि तुम क नये जगत्की उपलब्धिके लिये नयी सत्ताएं बन सको और इसके लिये मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेंगे।

संपादकीय :

आगे कदम

यह वर्ष भारत और संसारके लिये विशेष कठिनाइयोंका वर्ष रहा है। इस समय केवल प्रार्थना पर्याप्त नहीं है। सबकी ओरसे सक्रिय प्रयासकी अत्यन्त आवश्यकता है। यही समय है वीर बननेका, अपना पौरुष आजमानेका। हर एक जिस क्षेत्रमें हो, उसीमें अपना अच्छे-से-अच्छा काम करे, उसे अधिक अच्छा करनेके उपाय ढूंढे। जितना संभव हो सच्चा बने और काम करते समय यह अनुभव करे कि सर्वत्र उपस्थित भगवान् मुझे देख रहे हैं। यह भावना हमें कई मूर्खताओंसे बचाएगी और आंतरिक जीवनमें सहायक होगी।

भारतको स्वाधीन हुए ३६ वर्ष हो चुके। क्या हम सन् ४२ के भारतसे आजके भारतमें कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखते हैं?

वही आगजनी, मारकाट और हड़तालोंका बाजार गर्म है।

आम भारतीय स्वाधीनताके साथ आई हुई जिम्मेदारीको समझता है?

अभीतक हमें यह ज्ञानतक नहीं प्राप्त हुआ है कि भारत एक भूमिका टुकड़ा नहीं है। वह एक जीवित जाग्रत् देवी है जिसका रूप शिव शंकर-सा सशक्त है। अगर जनता इसे जानती तो कहीं-कहीं देशके विभाजनकी जो बात उठती है उसकी कल्पना तक न होती। कोई अपनी माताके अंग-विच्छेदकी बात करता है? अगर हम भारतको एक जाग्रत् देवी मानते, उसकी पूजा करते तो सारे उत्पात अपने-आप शांत हो जाते।

भारतको एक, अविभाज्य रखनेका दायित्व जितना नेताओंका है उतना ही हमारा भी। एक बात श्रीअरविंदने स्पष्ट कर दी है,

वह यह कि भारतका उत्थान राजनीतिद्वारा नहीं, आर्थिक विकास-द्वारा नहीं, आध्यात्मिक जागरणद्वारा ही होगा। उस आध्यात्मिक जागरणका ध्वजावाहक कौन बनेगा? क्या हम अपने छोटे-छोटे दीप लेकर उस जागरणमें सहायता नहीं कर सकते?

आत्म-विश्वास जगाओ। जनताको आंतरिक जीवनकी ओर मोड़ो। ऐसे अनुष्ठान करो जिसमें जाति-पांति भूलकर, धर्मका भेद भूलकर सब एक ज्योतिर्मय परम पिताके चरणोंमें नत हो सकें।

श्रीअरविंद सोसायटीके केंद्र और शाखाएं इस काममें सक्रिय भाग ले सकती हैं। पिछले अंकोंमें दिये हमारे सुझावोंसे प्रेरित होकर गुजरातमें स्थित अमरेली केंद्रने आगे कदम उठाया है। उन्होंने 'रंगम्' नामक विभागकी स्थापना की है जिसमें कोई भी व्यक्ति जाकर चित्रकला तथा उसके विभिन्न पक्षोंकी निःशुल्क शिक्षा पा सकेगा। कुछ समय बाद फोटोग्राफी, नृत्य और संगीत विभाग शुरू करनेका विचार भी है।

हम अमरेली शाखाके सुरेश जोशी और अन्य कार्यकर्ताओंको इस कार्यके लिये बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि दूसरे केंद्र उनसे प्रेरणा पाकर आगे आएंगे। हमें इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि हम केवल सामाजिक उत्सर्ग या कलात्मक कार्यको बढ़ावा नहीं दे रहे, बल्कि उनके माध्यमसे लोगोंको अपने अंतर्लोकके साथ उनके अंदर विराजमान भागवत अंशके साथ जोड़ रहे हैं जो उनके जीवनको सार्थक बननेमें मार्गदर्शन दे पायेगा।

ऐसे छोटे-छोटे कदम भर कर हम देशमें आध्यात्मिक ऐक्यका वातावरण तैयार कर सकेंगे।

— अनुबेन

दैनन्दिनी

सितंबर

१. हम जीवनमें ही भगवान्‌को पाना चाहते हैं।

२. जहांतक सच्चे प्रेमकी बात है दिव्य शक्ति ही चेतनाको भगवान्‌के साथ एक होने देती है।

३. जिस तरह एक फूल खिलता है उसी तरह दिव्य प्रेम प्रेम करनेके लिए ही प्रेम करता है।

४. सच्चा प्रेम अपना आनंद और संतोष अपने ही अंदर प्राप्त करता है। उसे ग्रहण करनेकी, और सराहना पानेकी या बंटनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

५. सब मनुष्योंके लिए भगवान्‌का प्रेम समान रूपसे विद्यमान है लेकिन अधिकतर मनुष्योंकी चेतनाका अंधकार उन्हें भागवत प्रेमका अनुभव नहीं करने देता।

६. केवल भागवत इच्छा असंदिग्ध होती है और उसे ही मनुष्य अपने कर्मोंद्वारा विरूप और झूठा बनाते हैं।

७. तुम जो कर चुके हो उसे अनकिया करना हमेशा आसान नहीं होता।

८. समस्त सिद्धांतवाद एक अंधकार है। जो बात एक क्षणके लिये अच्छी है वह दूसरे क्षण अच्छी नहीं भी हो सकती।

९. अपने-आपको विनाशसे बचानेके लिए संदेह अहंका सबसे बड़ा अस्त्र है।

१०. जीनेके लिए खाओ, खानेके लिए मत जियो।

११. परम-आनंद प्राणिक सत्ताकी क्रिया नहीं है। वह शांति, नीरवता और समतापर प्रतिष्ठित है।

१२. परम-आनंदका जन्म उच्च और गभीर तथा विशाल स्थिरताकी एकाग्र तीव्रताके साथ पूर्णतया संतुलित ऐक्यसे होता है।

१३. हर एक अपना अच्छे-से-अच्छा करे और शांतिके साथ परिणामोंको परम प्रभुपर छोड़ दे।

१४. भगवान्को प्राप्त करने और उनके साथ एक होनेके लिए तुम्हें अपने अहंको छोड़ना होगा।

१५. अगर तुम अपने-आपको अहंसे अलग कर दो तो फिर तुम दुःखी न होओगे और जल्दी ही अपनी अंतरात्मासे अभिज्ञ हो जाओगे।

१६. नैतिक अहंभाव भौतिक अहंभावसे भी बुरा है क्योंकि वह अपनी श्रेष्ठताको जानता है।

१७. अपने छोटेसे अहंका उन्मूलन करना कोई नगण्य बात नहीं है।

2

१८. हमारा अस्तित्व भागवत इच्छाके कारण है, अहंके कारण नहीं।

१९. सत्य चेतना केवल उन्हींमें अभिव्यक्त हो सकती है जिन्होंने अहंसे पिंड छुड़ लिया हो।

२०. अपने अहंको नष्ट कर दो और तुम्हारे अंदर शांति राज्य करेगी।

२१. नये अशुभको सहनेकी अपेक्षा उस अशुभको अंगीकार करना बहुधा अच्छा होता है जिसे हम जानते हैं।

२२. जो बुराई तुमने जानबूझ कर की है, वह किसी-न-किसी रूपमें तुम्हारे पास लौट कर आती है।

२३. हम जिस आदर्शको चरितार्थ करना चाहते हैं, उसे दृष्टिमें रखते हुए हमें कार्य करना चाहिए।

२४. अनुभूतिके सत्यमें और उसे अभिव्यक्त करनेके तरीकेमें काफी अंतर आ जाता है

२५. मन जितना अधिक शांत होगा तुम्हारी आंखोंकी दृष्टि उतनी ही अच्छी रहेगी।

२६. चैत्यका एक विशिष्ट तथ्य है — श्रद्धा।

२७. मिथ्यात्वका सबसे अच्छा उपचार है भगवान्में पूर्ण, सर्वांगीण और निरपेक्ष श्रद्धा।

२८. थकान आंतरिक तनाव और बेचैनीसे आती है, शारीरिक

कामसे नहीं। अगर हम अपने मन और प्राणमें शांत रहें तो हमें कभी थकान न आयेगी।

२९. मेरा बालक डर नहीं सकता।

३०. डर तेजाबकी तरह द्रावक होता है।

वन्दे मातरम्

[इस वर्ष देशमें वन्दे मातरम् गीतकी शताब्दी मनायी जा रही है। इस शताब्दीके आरंभमें इस गीतने देश भरमें एक नया जीवन भरा था। वन्दे मातरम् कहने और सुननेसे लोगोंमें एक स्फूर्ति आती थी, देशके लिए प्रेम जागता था। उधर नौकरशाही इसे विद्रोहका चिह्न मानती थी और इसका नारा लगानेवालेको भारत सम्राट्का द्रोही मानकर कृष्ण मन्दिरकी सैर करायी जाती थी। आश्चर्य और खेद इस बातका है कि आज देशमें ऐसे लोग भी हैं जो इस गीतकी शताब्दी मनानेका विरोध कर रहे हैं, हर एक अपने-अपने कारणसे।
श्रीअरविंद राष्ट्रके उन उन्नायकोंमें हैं जिन्होंने वन्देमातरम् की महिमा गायी थी और देश भरमें उसका प्रचार किया था। २९ जनवरी १९०८को उन्होंने अमरावतीमें वन्दे मातरम्के बारेमें एक भाषण दिया था जिसका सारांश उनके अपने पत्र वन्दे मातरम् में छपा था। यहां उसीका अनुवाद दिया जा रहा है।]

श्रीअरविंदने कहा कि उन्हें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि यह गीत भारतके सभी भागोंमें इतना लोकप्रिय हो गया है और इस तरह जगह-जगहपर बारंबार गाया जा रहा है। उन्होंने कहा कि उनके अपने भाषणका विषय यही राष्ट्रगीत होगा। उन्होंने कहा कि यह यूरोपीय राष्ट्रगीतोंकी तरह कोई गीत नहीं है। यह

महान् शक्तिसे भरा हुआ पवित्र मंत्र है जिसे हमारे सामने आनंद-मठके लेखकने प्रकट किया है। हम उन्हें प्रेरणाप्राप्त ऋषि कह सकते हैं। उन्होंने बतलाया कि किस तरह यह मंत्र वंक्रिम चन्द्रके आगे संभवतः एक संन्यासीने प्रकट किया था जिसके वे शिष्य थे। उन्होंने कहा कि यह मंत्र कोई अन्वेषण नहीं था बल्कि किसी नवकृष्ण नामक व्यक्तिके विश्वासघातके कारण विलुप्त पुराने मंत्रका पुनरुज्जीवन था। बंकिम चन्द्रके मंत्रकी उनके कालमें सराहना नहीं हुई लेकिन उन्होंने भविष्यवाणी की कि एक समय आयेगा जब सारा भारत उस गानसे गूंज उठेगा और उस भविष्य-वेत्ताकी बात चमत्कारिक रूपसे पूरी हुई है। उन दिनों इस गीतका अर्थ नहीं समझा जा सका क्योंकि तब सच्चा देशप्रेम न था, जो था वह भारतको इंगलैंड और उन अन्य देशोंकी छाया बनाना चाहता था जो हमारी इस मातृभूमिके वालकोंकी दृष्टिको अपनी भव्यता और अपने प्राचुर्यसे चौंधिया देते थे। उन दिनोंके तथाकथित देशभक्त भारतके शुभाकांक्षी भले हों पर ऐसे लोग न थे जो उससे प्रेम करते हों, जो अपनी मांसे प्यार करता हो वह उसके दोषोंपर ध्यान नहीं देता, उसे एक अज्ञानी, अंधविश्वासी, विकृत, भ्रष्ट और जर्जर नारी मानकर उसकी अवहेलना नहीं करता।

इसके बाद वक्ताने गानके अर्थकी व्याख्या की। उन्होंने कहा, व्यष्टिकी तरह राष्ट्रके भी तीन शरीर या दोष होते हैं — स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर। इस तरह वक्ता इस गीतके छिपे हुए अर्थोंको स्पष्ट करते चले गये। उन्होंने जिस प्रकार प्रेम और भक्तिकी बात की वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी थी। और श्रोता मूर्तिवत् बैठे रहे, उन्हें पता न था कि वे कहां हैं, क्या वे किसी पैगम्बरको जीवनके उच्चतर रहस्य खोलते हुए सुन रहे हैं। अंतमें सच्चे देश-प्रेमसे अत्यन्त भावात्मक अपील की और श्रोतागणसे आग्रह किया कि वे अपनी मातृभूमिसे प्रेम करें और उसके परित्राणके लिए कुछ न्यौछावर करें।

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान चेतना, उसकी अवस्थाओं और क्रियाओंका और अगर हो सके तो हम जिसे प्रकृतिके रूपमें जानते हैं उससे परे की अवस्थाओं और क्रियाओंकी झांकी या अनुभूति है।

हमारी अपनी सतही प्रकृति और अन्य जीवित प्राणियोंकी ऊपरी प्रकृतिका अवलोकन करना और उनकी गतियोंको जानना काफी नहीं है जैसे भौतिक विज्ञानके लिए बिजलीके रूपमें बादलोंके अंदर दमकनेवाली बिजलीका अवलोकन और ज्ञान पाना या ज्योतिषीके लिए नक्षत्रोंकी उसी गति या उन्हीं गुणोंको जानना काफी नहीं है जो नंगी आंखको दिखलायी दे। यहां, वहां की तरह मनोवैज्ञानिकको अपने क्षेत्रका निष्णात होनेकी आशा करनेके लिए गुह्य तथ्योंका एक जगत् छान मारना होगा।

वह चेतना जिसका हम अवलोकन कर सकते हैं, जिसे हम अपना स्वयं कहते हैं वह हमारी सत्ताका जरा-सा एक दृश्य भाग है। वह एक छोटा-सा क्षेत्र है जिसके नीचे गहराइयां और अधिक गहराइयां हैं, विस्तार और अधिक विस्तार हैं जो उसे सहारा देते हैं, आपूर्ति करते हैं परंतु वहां तक उसकी कोई दृश्य पहुंच नहीं है। वह सब हमारा स्व है, हमारी सत्ता है, जो चीज हमें ऊपर दिखलायी देती है वह तो हमारा अहंकार है और दृश्य प्रकृति है।

इस छोटी-सी ऊपरी सतहकी गतिविधिकी प्रकृतिको तबतक नहीं समझा जा सकता, न ही तबतक उसके सच्चे विधानको जाना जा सकता है जबतक हम उस सबको न जान लें जो उसके नीचे या पीछे है, जो उसकी आपूर्ति करता है — और साथ ही उसे भी जानें जो ऊपर और चारों ओर है।

क्योंकि इस सचेतन प्रकृतिके नीचे वह विस्तृत निश्चेतना है जिसमेंसे हम आये हैं। हमारी इस व्युत्पन्न सचेतन प्रकृतिकी अपेक्षा निश्चेतना

ज्यादा बड़ी, ज्यादा गहरी, ज्यादा मौलिक और हम जो कुछ हैं उसे रूप देने और उसपर शासन करनेमें बहुत ज्यादा सक्षम है। वह हमारे लिए, हमारी सतही दृष्टिके लिए तो निश्चेतना है परंतु अपने-आपमें या अपने लिए निश्चेतन नहीं है। वह परम मार्ग-दर्शक, कार्यकर्ता, निर्णायक और स्रष्टा है। उसे न जाननेका अर्थ है अपने निम्नतम मूलको और हम जो कुछ हैं, और जो कुछ करते हैं उसके अधिकतर भागको न जानना। और निश्चेतना ही सब कुछ नहीं है।

हमारे सामनेके अहंकार और प्रकृतिके पीछे आंतरिक चेतनाका एक पूरा अंतर्लीन जगत् है जिसमें बहुतसे क्षेत्र और बहुतसे प्रदेश हैं। उस राज्यमें बहुत-सी शक्तियां, गतियां और व्यक्तित्व हैं जो हमारे भाग हैं और हमारे छोटेसे ऊपरी व्यक्तित्व और उसकी शक्तियों और गतियोंका निर्माण करनेमें मदद करते हैं। हम इस भीतरी स्वको, इन भीतरी व्यक्तित्वोंको नहीं जानते लेकिन वे हमें जानते, हमारा अवलोकन करते और हमारी वाणी, हमारे विचार, भाव हमारी वाणीको आदेश देते हैं और हमसे नीचेकी निश्चेतनाकी अपेक्षा अधिक सीधी तरहसे आदेश देते हैं।

हमारे चारों ओर भी एक परिचेतन वैश्व है, जिसके हम एक भाग हैं। यह परिचेतना अपनी शक्तियां, सुझाव, प्रेरणाएं, बाध्यताएं, हमारे जीवनके हर क्षण हमारे अंदर उंडेलती रहती हैं।

हमारे चारों ओर एक वैश्व मन है। हमारा मन उसीकी एक रचना है। हमारे विचार, भाव, इच्छा, आवेग उसीके विचार-तरंगों, शक्ति लहरोंके व्यक्तिगत रूपमें बदले हुए सतत अभिग्रहण और प्रतिलेखनसे बहुत अधिक कुछ नहीं हैं, उसके संवेगों और संवेदनोंका झाग ओर आवेगोंकी महातरंग है।

चारों ओर एक स्थायी वैश्व प्राण है। जिसका आदि भी है और अंत भी। हमारी प्राण-रचनाका तुच्छ बहाव उसकी एक छोटी-सी गतिशील लहरमात्र है।

(सेंटेनरी वाल्यूम १७से)

पहला अध्याय

भ्रातृवध और कुलनाश

(जुलाई अंकसे आगे)

है। अर्जुन भी उसी भ्रममें पड़े थे कि इस युगमें जाति ही धर्म-की प्रतिष्ठा, मानवसमाजका केंद्र है। जातिकी रक्षा ही इस युगका प्रधान धर्म है, इस युगमें जातिका नाश ऐसा महापाप है जिसे मिटाया नहीं जा सकता। लेकिन ऐसा युग भी आ सकता है जब एक अधिक महान् मानव समाज प्रतिष्ठित हो जाये, तब हो सकता है कि जगत्के बड़े-बड़े ज्ञानी और कर्मी राष्ट्रकी रक्षाके लिए युद्ध करें और दूसरे पक्षमें श्रीकृष्ण क्रांतिकारी बनकर नया कुरु-क्षेत्र युद्ध करके जगत्की भलाई करें।

श्रीकृष्णकी राजनीतिका फल

पहले करुणाके आवेशमें आकर अर्जुनने कुलनाशकी बातपर अधिक जोर दिया था, क्योंकि ऐसी बड़ी सेनाको इकट्ठा देख, कुलकी चिंता और राष्ट्रकी चिंता अपने-आप ही मनमें उठती है। कहते हैं कि उस समयके भारतवासीके लिए कुलकी भलाईकी चिंता उसी तरह स्वाभाविक थी जिस तरह राष्ट्रकी भलाईकी चिंता करना आधुनिक मनुष्यजातिके लिए स्वाभाविक है। लेकिन क्या यह आशंका निर्मूल थी कि कुलका नाश होनेसे राष्ट्रकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी? कई कहते हैं कि अर्जुनको जिस बातका भय था, वास्तवमें वही हुआ, कुरुक्षेत्रका युद्ध भारतकी अवनति और बहुत

समयकी पराधीनताका मूल कारण था। तेजस्वी क्षत्रिय वंशके लोपसे, क्षात्रतेजके ह्राससे भारतका बहुत अमंगल हुआ। एक विख्यात विदेशी महिलाको — जिनके श्रीचरणोंमें बहुतसे हिंदु शिष्य भावसे झुकते हैं — यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होता कि क्षत्रियका नाश करके, अंग्रेज साम्राज्यकी स्थापनाको ज्यादा सरल बनाना ही स्वयं भगवान्के अवतार लेनेका असली कारण था। हमारे विचारसे जो ऐसी ऊटपटांग बातें करते हैं वे विषयकी गहराईमें न जाकर, बहुत ही तुच्छ राजनीतिक तत्त्वके वशमें आकर, श्रीकृष्णकी राजनीति-का दोष दिखाते हैं। यह राजनीतिक तत्त्व म्लेच्छविद्या है जो अनार्य चिंतनसे पैदा होती है। अनार्य आसुरिक बलसे बलवान् होते हैं, उसी बलको वे स्वाधीनता और राष्ट्रके महत्त्वका एकमात्र आधार मानते हैं।

राष्ट्रका महत्त्व केवल क्षत्रियके तेजपर टिका नहीं रह सकता, चारों वर्णोंके चारों तेज ही इसके महत्त्वके आधार हैं। सात्विक ब्रह्मतेज, राजसिक क्षत्रिय-तेजको ज्ञान, विनय और दूसरोंकी भलाईकी चिंताकी मधुर संजीवनी-सुधासे जीवित रखता है, क्षात्र तेज शांत ब्रह्मतेजकी रक्षा करता है। क्षात्र तेजके बिना ब्रह्मतेज अंधकारके भावसे दबकर शूद्रके घटिया गुणोंको सहारा देता है, इसलिए जिस देशमें क्षत्रिय न हों उस देशमें ब्राह्मणका रहना निषिद्ध है। अगर क्षत्रिय वंशका लोप हो जाय, तो नये क्षत्रियोंकी सृष्टि करना ब्राह्मणका पहला कर्तव्य है। ब्रह्मतेज रहित क्षात्र तेज, दुर्दान्त, उद्दाम, आसु-रिक बलमें बदलकर पहले दूसरोंके हितको नष्ट करनेकी कोशिश करता है, और अन्तमें स्वयं नष्ट हो जाता है। रोमन कविने ठीक ही कहा है कि असुर अपने ही बलके अतिरेकसे पतित होकर, जड़के साथ नष्ट हो जाते हैं। सत्व रजस्को पैदा करे, रजस् सत्व-की रक्षा करे, सात्विक कार्यमें लगे, तभी व्यक्ति और राष्ट्रका मंगल संभव है। सत्व अगर रजसको ग्रस ले, रजः अगर सत्वको ग्रस ले तो तमके उत्पन्न होनेसे विजयी गुण अपने-आप पराजित हो जाते

हैं और तमोगुणका राज्य हो जाता है। ब्राह्मण कभी राजा नहीं बन सकता, क्षत्रियका नाश होनेपर शूद्र राजा बनेगा, ब्राह्मण तामसिक होकर, धनके लोभमें आकर ज्ञानको बिगाड़ कर शूद्रका दास बन जायेगा, आध्यात्मिक भाव निश्चेष्टताको पोसेगा और खुद मुरझा कर धर्मके पतनका कारण बनेगा। क्षत्रियके बिना शूद्रद्वारा शासित राष्ट्र निश्चित रूपसे दासताको प्राप्त होता है। भारतकी यही अवस्था हुई। दूसरी ओर आसुरिक बलके प्रभावसे उसके अंदर क्षणिक शक्तिका संचार या महत्त्वकी प्राप्ति तो हो सकती है लेकिन, जल्दी ही दुर्बलता और ग्लानि आ जाती है, शक्तिका ह्रास होकर, देश अवसादमें डूब जाता है या फिर राजनीतिक विलास, दंभ और स्वार्थके बाहुल्यसे राष्ट्र अनुपयुक्त होकर, महत्त्वकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है या, आंतरिक विरोध, दुर्नीति और अत्याचारसे देश क्षत-विक्षत होकर शत्रुका सुलभ शिकार बन जाता है। भारत और यूरोपके इतिहासमें इन सब परिणामोंके कई दृष्टांत मिलते हैं।

महाभारतके समय आसुरिक बलके भारसे पृथ्वी अस्थिर हो चली थी। भारतमें ऐसे तेजस्वी, पराक्रमी, प्रचण्ड क्षत्रियतेजका विस्तार न तो उससे पहले ही कभी हुआ और न बादमें ही हुआ। लेकिन उस भीषण बलके सदुपयोगकी संभावना बहुत ही कम थी। जो लोग इस बलके आधार थे वे सभी आसुरिक प्रकृतिके थे — अहंकार, दर्प, स्वार्थ, स्वेच्छाचार उनकी मज्जामें बसा था। अगर श्रीकृष्ण इस बलका नाश कर, धर्मराज्यकी स्थापना नहीं करते तो जिन तीन तरहके परिणामोंके बारेमें कहा गया है उसमेंसे एक-न-एक जरूर घटता। असमय, भारत म्लेच्छोंके हाथों जा गिरता। यह याद रखना चाहिए कि पांच हजार वर्ष पहले कुरुक्षेत्रका युद्ध हुआ था, ढाई हजार वर्ष बीत जानेपर म्लेच्छोंका पहला सफल आक्रमण सिन्धु नदीके दूसरे पारतक पहुंच पाया था। इस तरह अर्जुनने जिस धर्मराज्यकी स्थापना की थी उसने इतने दिन ब्रह्मतेजसे अनुप्राणित

क्षात्रतेजके प्रभावसे देशकी रक्षा की। उस समय भी देशमें संचित क्षात्रतेज इतना था कि उसके टूटे हुए अंशने ही देशको और दो हजार वर्षोंतक बचाये रखा। चन्द्रगुप्त, पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, विक्रम, संग्रामसिंह, प्रताप, राजसिंह, प्रतापादित्य, शिवाजी, इत्यादि महापुरुषोंने उसी क्षात्रतेजके बलसे देशके दुर्भाग्यके साथ युद्ध किया। अभी उसी दिन तो गुजरातके युद्ध और लक्ष्मीबाईकी चितामें उसकी अंतिम चिंगारी बुझी है। उस समय श्रीकृष्णके राजनीतिक कार्यका सुफल और पुण्य क्षीण हो गया। भारत और जगत्की रक्षा करनेके लिए भारतमें फिरसे पूर्णावतारकी आवश्यकता हुई। वे अवतार फिरसे उस लुप्त ब्रह्मतेजको जगा गये, वही ब्रह्मतेज क्षात्र-तेज पैदा करेगा। श्रीकृष्णने भारतके क्षात्रतेजको कुरुक्षेत्रके रक्त-समुद्रमें बहा नहीं दिया बल्कि आसुरिक बलका विनाश करके, ब्रह्म तेज और क्षात्रतेज दोनोंकी रक्षा की। आसुरिक बलसे चूर क्षत्रिय वंशका संहार कर, उन्होंने उद्दाम रजःशक्तिको छिन्न-भिन्न कर दिया, यह बात सच है। इस प्रकारकी महाक्रांति या अंतर्विरोधका उत्कट भोगद्वारा क्षय करके निग्रह करना, उद्दाम क्षत्रिय कुलका संहार करना, हमेशा अनिष्टकर नहीं होता। अंतर्विरोधसे रोमन क्षत्रिय कुलका नाश और राजतन्त्रकी स्थापनासे रोमका विराट् साम्राज्य असमय ही विनाशका ग्रास होनेसे बच गया। इंगलैण्डमें श्वेत और रक्त गुलाबदलके अंतर्विरोधद्वारा क्षत्रिय कुलका नाश होनेसे चौथे एडवर्ड, आठवें हेनरी और रानी एलिजाबेथ सुरक्षित, पराक्रमी, विश्वविजयी आधुनिक इंगलैण्डकी नींव स्थापित कर सके थे, कुरुक्षेत्रके युद्धमें भारतकी भी उसी तरह रक्षा हुई।

कलियुगमें भारतकी अवनति हुई है इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन अवनति ले आनेके लिए भगवान् कभी पृथ्वीपर नहीं उतरते। धर्म-रक्षा, विश्व-रक्षा, लोक-रक्षाके लिए ही अवतार आते हैं। विशेष रूपसे कलियुगमें ही भगवान्के पूर्ण रूपसे अवतीर्ण

होनेका कारण यह है कि कलिमें मनुष्योंकी अवनतिका अधिक भय रहता है, अधर्मका बढ़ना स्वाभाविक हो जाता है, इसलिए मानव-जातिकी रक्षा करनेके लिए, अधर्मके नाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिए, कलिकी गतिको रोकनेके लिए इस युगमें वे बार-बार अवतार लेते हैं। जब श्रीकृष्णने अवतार लिया तो कलिके राज्यका आरंभ हो चुका था। उनके आविर्भावसे भयभीत होकर ही कलि अपने राज्यमें पदार्पण नहीं कर सका, उन्हींके प्रसादसे परीक्षितने कलिको पांच गांव दानमें देकर उसीके युगमें उसके एकाधिपत्यको रोक दिया। जिस कलियुगमें आदिसे लेकर अंततक कलिके साथ मनुष्यका घोर संग्राम चल रहा है और चलता रहेगा, उस संग्रामके सहायक और नायकके रूपमें भगवान्‌के अवतार और उनकी विभूतियां कलिमें बार-बार आती हैं, उस संग्रामके आवश्यक ब्रह्मतेज, ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्मकी शिक्षा देने और रक्षा करनेके लिए कालके आरंभमें उन्होंने मानव शरीर धारण किया था। भारतकी रक्षा ही मानव कल्याणका आधार और उसका आशास्थल है। भगवान्‌ने कुरुक्षेत्रमें भारतकी रक्षा की। उस रक्त-समुद्रके नवीन जगत्‌पर लीलाके पंकजपर कालरूपी विराट् पुरुषने विहार करना आरंभ किया।

दूसरा अध्याय

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

संजयने कहा —

अर्जुनकी दयाके आवेश, अश्रुपूर्ण दो नेत्र और विषण्ण भावको देखकर मधुसूदनने उसे यह उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

भगवान्ने कहा —

हे अर्जुन। ऐसे संकटके समय, अनार्यद्वारा मान्य, स्वर्ग-पथमें बाधा देनेवाली यह अकीर्तिकर मनकी मलिनता कहांसे आ गयी?

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

"हे पृथातनय! हे शत्रुके दमनमें समर्थ! नपुंसकताका आश्रय मत लो, यह तुम्हारे लिए एकदम अनुचित है। मनकी इस क्षुद्र दुर्बलताको त्याग दो, उठो।"

श्रीकृष्णका उत्तर

श्रीकृष्णने देखा कि अर्जुन दयासे घिर गये हैं, विषादने उन्हें ग्रस लिया है। इस तामसिक भावको दूर करनेके लिए अन्तर्यामीने अपने प्रिय सखाका क्षत्रियोचित तिरस्कार किया, जिससे शायद राजसिक भाव जगकर तमसको दूर कर दे। उन्होंने कहा, देखो, यह तुम्हारे अपने पक्षके लिए संकटकाल है, अभी अगर तुम शस्त्रका त्याग कर दोगे तो उनके एकदम विपत्तिमें पड़ जाने और नष्ट हो जानेकी संभावना है। युद्धक्षेत्रमें अपने पक्षका त्याग करनेकी बात तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ क्षत्रियके मनमें नहीं उठनी चाहिए। कहांसे अचानक यह दुर्मति आ गयी? तुम्हारा विचार दुर्बलतासे भरा, पापसे भरा है। अनार्य इस विचारकी प्रशंसा करते हैं, इसके वशमें होते हैं, लेकिन आर्यके लिए यह अनुचित है, इससे परलोकमें स्वर्गकी प्राप्तिमें विघ्न पैदा होता है और पृथ्वीपर यश और कीर्तिका लोप हो जाता है। इसके बाद उन्होंने और भी मर्मभेदी तिरस्कार किया। यह विचार नपुंसकात्मक है। तुम श्रेष्ठवीर हो, विजेता हो, तुम कुन्तीके पुत्र हो और तुम ऐसी बात कहते हो? प्राणकी इस दुर्बलताका त्याग करो, उठो। अपने कर्तव्यकर्ममें लगो।

करुणा और दया

करुणा और दया दो स्वतंत्र विचार हैं, यहां तक कि करुणा दयाका विरोधी भाव भी हो सकती है। हम दयाके वशमें आकर जगत्का कल्याण करते हैं, मनुष्यके दुःख, जातिके दुःख, दूसरेके दुःखको मिटाते हैं। अगर हम अपना दुःख या किसी व्यक्ति विशेषके दुःखको न सह सकनेके कारण भलाईके उस मार्गसे पीछे हट जायें तो इसका मतलब यह होगा कि हमारे अंदर दया

नहीं करुणाका आवेश उठा है। संपूर्ण मानवजाति और देशके दुःख-को दूर करनेके लिए जब हम उठें तो वह दयाका भाव होता है। रक्तपातके भयसे, प्राणीकी हिंसाके भयसे जब उस पुण्य कामसे दूर हट जाते हैं, जगत्के, राष्ट्रके, दुःखके बने रहनेमें हामी भरते हैं तो यह करुणाका भाव होता है। मनुष्यके दुःखसे दुःखी होकर, दुःखको दूर करनेकी जो प्रवल वृत्ति होती है उसे दया कहते हैं। दूसरेके दुःखकी चिंता या दूसरेका दुःख देखकर कातर होनेको करुणाका भाव कहते हैं। कातरता दया नहीं, करुणा है। दया बलवानका धर्म है जब कि करुणा दुर्बलका धर्म है। दयाके आवेशमें बुद्धदेव स्त्री, पुत्र, माता-पिता, बंधु-बांधवोंको दुःखी और एकदमसे असहाय छोड़कर जगत्का दुःख दूर करनेके लिए निकल पड़े। तीव्र दयाके आवेशमें कालीने जगत्भरके असुरोंका संहार कर, पृथ्वीको खूनमें डुबा करके, सबके दुःखको दूर किया। अर्जुनने करुणाके आवेशमें आकर शस्त्र छोड़ा था।

इस भावकी अनार्य प्रशंसा करते और इसका आचरण अनार्य ही करते हैं। आर्यशिक्षा उदार, वीरोचित, देवताकी शिक्षा है। अनार्य मोहमें पड़कर अनुदार भावको धर्म कहकर उदार धर्मका त्याग करता है। अनार्य राजसिक भावसे ओत-प्रोत हो, अपना, अपने स्नेही, अपने परिवार या कुलका हित देखता है, वह महान् कल्याण नहीं देखता, करुणाद्वारा, धर्मसे मुंह मोड़कर अपने-आपको पुण्यवान् कहकर गर्व करता है और कठोर व्रत वाले आर्यको निष्ठुर और अधार्मिक कहता है। अनार्य तामसिक मोहसे मुग्ध होकर अप्रवृत्तिको निवृत्ति कहता है और कामनाभरी पुण्यप्रियताको धर्म-नीतिके उच्चतम आसनपर बिठाता है। 'दया आर्यका भाव है और करुणा अनार्यका भाव।

पुरुष दयाके वशमें आकर वीरभावसे दूसरेके अमंगल और दुःखका नाश करनेके लिए तत्पर रहता है। नारी दयाके वशमें आकर दूसरेके दुःखको कम करनेके लिए सेवा, सुश्रूषा, देखभाल करने,

दूसरोंके हितकी चिंतामें समस्त जी जान और शक्ति उंडेल देती है। जो करुणाके वशमें आकर अस्त्रका त्याग करता है वह धर्मसे मुंह मोड़ लेता है, रोने बैठ जाता है और यह सोचता है कि मैं अपना कर्तव्य कर्म कर रहा हूं, मैं पुण्यवान् हूं — वह है नपुंसक। यह क्षुद्र भाव है, यह विचार दुर्बलता है। विषाद कभी धर्म नहीं हो सकता। जो विषादको पोसता है वह पापको पोसता है। चित्तकी इस गन्दगीका, इस अशुद्ध और दुर्बल भावका त्याग करके, युद्धमें प्रवृत्त होकर, कर्तव्यपालनसे जगत्की रक्षा करना, धर्मकी रक्षा करना, पृथ्वीके भारको हल्का करना ही श्रेय है। यही श्रीकृष्णकी इस उक्तिका मर्म है।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

अर्जुनने कहा, —

"हे मधुसूदन, हे शत्रुनाशक, मैं भला किस तरह भीष्म और द्रोणका युद्धमें सामना कर, उन पूज्य गुरुजनके विरुद्ध अस्त्र चलाऊंगा?

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

इन उदारचेता गुरुजनोंका वध न करके पृथ्वीपर भिखारी बनकर रहना ज्यादा अच्छा है। अगर मैं गुरुजनका वध करूं तो धर्म

और मोक्ष खोकर केवल अर्थ और कामका भोग करूंगा, वह भी रक्त-रंजित विषयभोग जो पृथ्वीपर ही भोग्य है और प्राणत्याग तक बना रहता है।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६॥

इसलिए हम यह नहीं समझ पा रहे कि हमें किसकी अधिक चाह हो। जिनको मार डालनेसे हमारे जीनेकी कोई इच्छा नहीं रह जायेगी, वे ही विपक्षी सेनाके अग्रभागमें खड़े हैं, धृतराष्ट्रके पुत्रोंके सेनानायक हैं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

मेरा क्षत्रिय स्वभाव दीनताके दोषसे अभिभूत हुआ जा रहा है, धर्म अधर्मके संबंधमें मेरी बुद्धि चकरा गयी है, इसीलिए मैं आपसे पूछता हूं कि किसमें श्रेय होगा यह बात निश्चित रूपसे बताइये, मैं आपका शिष्य हूं, आपकी शरणमें आया हूं, मुझे शिक्षा दीजिये।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

क्योंकि पृथ्वीपर एकछत्र राज्य और देवताओंके ऊपर अधिकार प्राप्त कर लेनेपर भी यह शोक मेरी सारी इन्द्रियोंका तेज सोख लेगा, इस शोकको दूर करनेका कोई उपाय मुझे नहीं दीखता।"

शिक्षाके लिये अर्जुनकी प्रार्थना

श्रीकृष्णने जो कहा उसे अर्जुन समझ गये, और तब उन्होंने राजनीतिक आपत्ति नहीं उठाई। लेकिन और जो जो आपत्ति थीं, उनका उत्तर न पाकर वे शिक्षा पाने श्रीकृष्णकी शरणमें गये। उन्होंने कहा, "मैं स्वीकार करता हूं कि मैं क्षत्रिय हूं, दया-वश महान् कार्यसे पीछे हटना मेरी नपुंसकताका ही सूचक है, मेरे लिए अकीर्तिकर और धर्मके विरुद्ध है। लेकिन न मन मानता है न प्राण। मन कहता है गुरुजनकी हत्या करना महापाप है, अपने सुखके लिए गुरुजनकी हत्या करनेसे अधर्ममें गिर कर धर्म, मोक्ष, परलोक, जो कुछ वांछनीय है सब चला जायेगा। कामना तृप्त होगी, वह धनकी इच्छा तृप्त होगी लेकिन वह कितने दिनके लिए? अधर्मसे प्राप्त भोग प्राणत्याग तक बना रहता है, उसके बाद अकथनीय दुर्गति होती है। और जब भोग करूंगा तो उस भोगमें गुरुजनके रक्तका स्वाद पाकर कौन-सा सुख या शांति मिलेगी? प्राण कहता है, ये सब हमारे प्रियजन हैं, इनकी हत्या करके मैं इस जन्ममें फिर कोई सुख नहीं भोग सकूंगा। मैं जीवित रहना भी नहीं चाहता। आप चाहे मुझे पूरी पृथ्वीके साम्राज्यका उपभोग करने दें या स्वर्गपर विजय पाकर, इन्द्रका ऐश्वर्यभोग प्रदान करें, मैं नहीं मानूंगा। जो शोक मुझे घर दबायेगा उससे मेरी सभी कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां अभिभूत और अवसन्न होकर अपने-अपने कार्यमें शिथिल और असमर्थ हो जायेंगी, तब आप

किस सुखका भोग करेंगे ? मेरे अस्थिर चित्तमें दीनता आ गयी है और महान् क्षत्रिय स्वभाव इस दीनतामें डूब गया है। मैं तुम्हारी शरणमें आ गया हूं। मुझे ज्ञान, शक्ति, श्रद्धा दो, श्रेयका पथ दिखाकर मेरी रक्षा करो।"

संपूर्ण रूपसे भगवान्‌की शरण लेना ही गीतामें कहे गये योगका पथ है। इसीको आत्मसमर्पण या आत्म-निवेदन कहते हैं। जो भगवान्‌को गुरु, प्रभु, सखा, पथप्रदर्शक मानकर दूसरे सभी धर्मोंकी जलांजलि देनेके लिए तैयार हैं, पाप पुण्य, कर्तव्य अकर्तव्य, धर्म अधर्म, सत्य असत्य, मंगल अमंगलका विचार न करके, अपने ज्ञान, कर्म और साधनाका संपूर्ण भार श्रीकृष्णके अर्पण कर देते हैं, वे गीतामें कहे गये योगके अधिकारी हैं। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, आप अगर गुरुहत्या करनेके लिए भी कहें, तो मुझे यह समझा दीजिये कि यह धर्म और कर्तव्यकर्म है, मैं वही करूंगा। इस गभीर श्रद्धाके बलपर अर्जुन उस समयके सभी महापुरुषोंको लांघ कर गीतामें बतायी शिक्षाके श्रेष्ठ पात्रके रूपमें चुने गये।

उत्तर देते हुए श्रीकृष्णने पहले अर्जुनकी दो आपत्तियोंका खण्डन किया, फिर गुरुका दायित्व ग्रहण करके, उन्होंने सच्चा ज्ञान देना शुरू किया। अड़तीस श्लोकोंतक आपत्तियोंका खण्डन किया है, उसके बाद गीतामें कही शिक्षाका आरंभ होता है। लेकिन आपत्तिके खण्डनमें कई अमूल्य शिक्षाएं मिलती हैं जिन्हें बिना समझे गीताकी शिक्षाको हृदयंगम नहीं किया जा सकता। इन कुछ-बातोंकी विस्तृत व्याख्या करना आवश्यक है।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥९॥

संजयने कहा —

परंतप गुडाकेश (अर्जुन) हृषीकेश (गोविंद) से बोले, "मैं युद्ध नहीं करूंगा" और चुप हो गये।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

श्रीकृष्णने कुछ मुस्कराते हुए दोनों सेनाओंके बीच स्थित दुःखी अर्जुनको यह उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

भगवान्ने कहा —

जिनके लिये शोक करनेका कोई कारण नहीं उनके लिये तुम शोक करते हो और ज्ञानीकी तरह तात्त्विक विषयोंपर वादविवाद करनेकी चेष्टा करते हो, लेकिन तत्त्वज्ञानी मृत या जीवित किसीके लिये भी शोक नहीं करते।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

ऐसा भी नहीं है कि मैं पहले नहीं था या तुम नहीं थे या ये राजा नहीं थे, यह भी नहीं है कि हम सब देहत्याग करनेके बाद फिर नहीं रहेंगे।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

जैसे इस जीव अधिष्ठित शरीरमें बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था कालकी गतिसे आती हैं वैसे ही दूसरी देहप्राप्ति भी कालकी गतिसे होती है, इससे स्थिरबुद्धि ज्ञानी पुरुष चकराते नहीं।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

मृत्यु कुछ भी नहीं है, जिन विषय-स्पर्शोंसे सर्दी, गर्मी, सुख, दुःख आदि संस्कार उत्पन्न होते हैं वे सब स्पर्श अनित्य हैं, आते-जाते रहते हैं, अविचलित रहकर उन सबको ग्रहण करनेका अभ्यास करो।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

जो स्थिरबुद्धि पुरुष इन स्पर्शोंको भोगकर भी दुःखी नहीं होते, इनके द्वारा पैदा हुए सुख-दुःखको समभावसे ग्रहण करते हैं, वही मृत्युको जीतनेमें समर्थ होते हैं।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

जो असत् है उसका अस्तित्व नहीं होता, जो सत् है उसका विनाश नहीं होता, फिर भी सत् और असत् दोनोंका अंत होता है, तत्त्वदर्शियोंने इसका दर्शन किया है।

अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥१७॥

परंतु जिसने इस समस्त दृश्य जगत्का अपने अंदर विस्तार किया है उस आत्माका क्षय नहीं होता, कोई उसका ध्वंस नहीं कर सकता।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्मात् युद्धस्व भारत ॥१८॥

हमेशा देहपर आश्रित आत्माके इन सब शरीरोंका अंत है, आत्मा असीम और अनश्वर है, इसलिये हे भारत, युद्ध करो।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

जो आत्माको मारनेवाला कहते हैं और जो देहके नाशपर आत्माको मरा हुआ समझते हैं वे दोनों ही चकराये हुए हैं, ज्ञानहीन हैं, यह आत्मा न हत्या करती है और न कभी मरती है।

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

इस आत्माका जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, इसका न कभी उद्भव हुआ और न कभी लोप होगा। यह जन्मरहित है, नित्य है, सनातन है, पुरातन है, देहनाश होनेपर मरती नहीं।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

जो इसे नित्य, अनश्वर और अक्षय जानते हैं, वह पुरुष कैसे किसीकी हत्या करते या कराते हैं ?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

जैसे मनुष्य फटे वस्त्र उतार नया वस्त्र पहनता है वैसे ही जीव पुरानी देह छोड़, नयी देहका आश्रय लेता है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

शस्त्र इसे नहीं छेद सकते, आग जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकती ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

आत्माको छेदा नहीं जा सकता, इसे जलाया, भिगाया या सुखाया नहीं जा सकता । यह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है ।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य और विकाररहित है। आत्माको इस रूपमें जानकर शोक करना छोड़ दो।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

और यदि तुम यह मानते हो कि जीव बार-बार जन्म लेता और मरता है, फिर भी उसके लिये शोक करना उचित नहीं है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

जिसका जन्म होता है, उसकी निश्चय ही मृत्यु होती है, जिसकी मृत्यु होती है, उसका निश्चय ही जन्म होता है, इसलिये जब मृत्यु ऐसा परिणाम है जिससे बचा नहीं जा सकता तो उसके लिये शोक करना अनुचित है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना ॥२८॥

सभी प्राणी शुरूमें अव्यक्त होते हैं, मध्यमें व्यक्त होते हैं और फिर अंतमें अव्यक्त होते हैं, इस स्वाभाविक क्रममें शोक करनेका कोई कारण ही नहीं है।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

आत्माको कोई आश्चर्यके रूपमें देखता है, कोई आश्चर्य कहकर

उसके विषयमें बोलता है, कोई आश्चर्य समझकर इसके बारेमें सुनता है, किंतु सुनकर भी कोई आत्माको जान नहीं पाता।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

आत्मा हमेशा सबकी देहमें अवध्य होकर रहती है, इसलिये इन सब प्राणियोंके लिये शोक करना उचित नहीं है।

मृत्युकी असत्यता

अर्जुनकी बात सुनकर श्रीकृष्णके मुंहपर हंसीकी झलक दिखायी दी, वह हंसी रंगमय यानी प्रसन्नतापूर्ण थी—अर्जुनके भ्रममें मानव जातिके पुराने भ्रमको पहचानकर अंतर्यामी हंस पड़े — यह श्रीकृष्णकी ही मायासे उत्पन्न भ्रम है, जगत्में अशुभ, दुःख, और दुर्बलताका योग और संयमद्वारा क्षय करनेके लिए ही उन्होंने मानवको इस मायाके वशीभूत किया। प्राणकी ममता, मरनेका डर, सुख-दुःखकी अधीनता, प्रिय और अप्रिय बोध इत्यादि अर्जुनकी बातोंसे झलकता था, इसी अज्ञानको मनुष्यकी बुद्धिसे दूर करके जगत्को अशुभसे मुक्त करना जरूरी था, इसी शुभ कार्यके लिए, अनुकूल अवस्था लानेके लिए श्रीकृष्ण आये थे, गीताको प्रकट करने जा रहे थे। लेकिन पहले अर्जुनके मनमें जो भ्रम उत्पन्न हुआ था उसका भोगद्वारा क्षय करना आवश्यक था। अर्जुन श्रीकृष्णके सखा थे, मानवजातिके प्रतिनिधि थे, उन्हींके सामने गीताको प्रकट करना था, वही श्रेष्ठ पात्र थे, लेकिन मानवजाति अभीतक गीताका अर्थ ग्रहण करनेके योग्य नहीं बनी थी, अर्जुन भी उसके संपूर्ण अर्थको ग्रहण नहीं कर पाये। जो शोक, दुःख और कातरता उनके मनमें उठे थे, उसे मानवजाति

कलियुगमें पूरी तरहसे भोगती आ रही है, ईसाई धर्म प्रेमसे, बौद्ध धर्म दयासे, इस्लाम धर्म शक्तिसे, इस दुःखभोगको कम करनेमें लगे हैं, आज कलियुगमें सत्ययुगके पहले खंडका आरंभ होगा, भगवान फिरसे भारतको, कुरुजातिके वंशधरोंको गीता प्रदान कर रहे हैं, अगर वे उसे ग्रहण करने, धारण करनेमें समर्थ हों तो भारतका मंगल, जगत्का मंगल इसका सुनिश्चित फल है।

श्रीकृष्णने कहा, अर्जुन तुम पंडितोंकी तरह पाप पुण्यका विचार कर रहे हो, जीवन-मरणके तत्त्वकी बात कर रहे हो, जातिका कल्याण और अकल्याण किससे होता है इस बातको समझानेकी कोशिश कर रहे हो, लेकिन तुम्हारी बातोंसे सच्चे ज्ञानका परिचय नहीं मिल रहा, बल्कि तुम्हारी हर बात बहुत अज्ञानपूर्ण है। साफ-साफ यह कहो कि मेरा हृदय दुर्बल है, शोकसे कातर है, बुद्धि कर्तव्यसे मुंह मोड़े है, ज्ञानकी भाषामें अज्ञेयका तर्क करके अपनी दुर्बलताका समर्थन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हर मनुष्यके हृदयमें शोक उत्पन्न होता है। मनुष्यमात्रके लिए मृत्यु और विच्छेद बहुत भयंकर, जीवन बहुत मूल्यवान्, शोक असह्य, कर्तव्य एक कठोर वस्तु होता है, मनुष्य अपने स्वार्थकी सिद्धिको मधुर जानकर हर्षित होता है, दुःख मानता है, हंसता है, रोता है, लेकिन इन सभी वृत्तियोंको कोई ज्ञानसे उत्पन्न वृत्तियां नहीं कहता। जिन लोगोंके लिए शोक करना अनुचित है उन्हींके लिए तुम शोक कर रहे हो। ज्ञानी किसीके लिए शोक नहीं करता — न मृत व्यक्तिके लिए, न जीवितके लिए। वे इस बातको जानते हैं कि न मृत्यु है, न विच्छेद है न दुःख ही है, हम अमर हैं, हम चिरकालसे एक हैं, हम आनंदकी संतान हैं, अमृत-सन्तान हैं, जीवन-मरणके साथ सुख-दुःखके साथ इस पृथ्वीपर लुका-छिपी खेलने आये हैं — प्रकृतिके विशाल रंगमंचपर हंसने-रोनेका अभिनय करते हैं, शत्रु और मित्र बनकर, युद्ध और शांति, प्रेम और कलहके रसका आस्वादन करते हैं। यह जो थोड़े समयके लिए बचे रहते हैं, कल-परसों देह त्याग कर

कहां चले जायेंगे पता नहीं, यह हमारी अनंत क्रीड़ामें एक मुहूर्त मात्र, क्षणभरका खेल, कुछ ही क्षणोंका प्रेम है। हम थे, हम हैं, हम रहेंगे — सनातन, नित्य, अनश्वर — हम प्रकृतिके ईश्वर हैं, जीवन मरणके कर्ता भगवान्के अंश हैं, भूत वर्तमान और भविष्यके अधिकारी हैं। जिस तरह शरीरकी बाल्य, युवा और वृद्धावस्था होती है उसी तरह दूसरे शरीरकी प्राप्ति बस एक नाम है, नाम सुन कर हम डरते हैं, दुःखी हो जाते हैं, चीजको अगर समझ पाते तो न डरते, न दुःखी होते। अगर हम बालककी यौवनप्राप्तिको मरण समझकर रोते हुए यह कहते कि ओह, हमारा वह प्रिय बालक कहां चला गया, यह युवा पुरुष वह बालक नहीं है, हमारा वह सोनेका चांद कहां चला गया तो हमारे व्यवहारको सभी हास्यास्पद और घोर अज्ञानभरी बात कहेंगे। यह दूसरी अवस्था प्रकृतिका नियम है, बालक और युवकके शरीरमें एक ही पुरुष बाहरी परिवर्तनोंसे परे, स्थिरभावमें विराजमान है, ज्ञानी साधारण मनुष्यमें मृत्युका भय और मृत्युका दुःख देखकर उसके इस व्यवहारको ठीक उसी तरह हास्यास्पद और घोर अज्ञानमय मानता है, क्योंकि देह बदलना प्रकृतिका नियम है, स्थूलदेह और सूक्ष्मदेहमें एक ही पुरुष बाह्य परिवर्तनसे परे स्थिर भावमें विराजमान रहता है। हम अमृतकी संतान हैं, कौन मरता है, कौन मारता है? मृत्यु हमारा स्पर्शतक नहीं कर सकती — मृत्यु खोखला शब्द है, मृत्यु भ्रम है, मृत्यु नहीं है।

मात्रा

पुरुष अचल है, प्रकृति चल है। चल प्रकृतिके अंदर अचल पुरुष स्थित है। प्रकृतिमें स्थित पुरुष पांच इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ देखता, सूंघता, स्वाद लेता, स्पर्श करता, उसीका भोग करनेके लिए

वह प्रकृतिका आश्रय लेता है। हम रूप देखते हैं, शब्द सुनते हैं, गन्ध सूंघते हैं, इसका आस्वाद लेते हैं, स्पर्शका अनुभव करते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांच तन्मात्राएं ही हैं इन्द्रियभोगका विषय। छटी इन्द्रिय मनका विशेष विषय है संस्कार। बुद्धिका विषय है चिंतन। पांच तन्मात्राओं, संस्कार और चिंतनका अनुभव करने, भोग करनेके लिए ही पुरुष और प्रकृतिका परस्पर संभोग और उनकी अनंत क्रीड़ा होती है। यह भोग दो तरहका है — शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध भोगमें सुख-दुःख नहीं होता, पुरुषका चिरन्तन स्वभाव --सिद्ध धर्म आनंद ही होता है। अशुद्ध भोगमें सुख-दुःख होता है, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, हर्ष-शोक इत्यादि द्वन्द्व अशुद्ध भोगको विचलित और विक्षुब्ध करते हैं। कामना अशुद्धताका कारण है। कामी-मात्र ही अशुद्ध है, जो निष्काम है, वह शुद्ध है। कामनासे राग और द्वेष पैदा होते हैं, राग और द्वेषके वशमें आकर पुरुष विषयमें आसक्त होता है और आसक्तिका फल है बंधन। पुरुष इतना विचलित और विक्षुब्ध हो जाता है कि व्यथित और पीड़ित होनेपर भी आसक्तिकी आदतके दोषके कारण अपने क्षोभ, व्यथा या यंत्रणाके कारणको छोड़नेमें असमर्थ होता है।

समभाव

श्रीकृष्णने पहले आत्माकी नित्यताका उल्लेख किया, फिर उन्होंने अज्ञानके बंधनको ढीला करनेका उपाय बताया। मात्रा यानी विषयके नाना रूप हैं स्पर्श, सुख, दुःख इत्यादि और ये ही द्वन्द्वके कारण हैं। ये सभी स्पर्श अनित्य हैं, उनका आरंभ भी है और अंत भी। उन्हें अनित्य मानकर आसक्तिका परित्याग करना होता है। अगर हम अनित्य वस्तुसे आसक्त हों तो उसके आनेमें खुश और उसके नाश या अभावसे दुःखी और पीड़ित होते हैं। इस

अवस्थाको अज्ञान कहते हैं। अज्ञानमें अनश्वर आत्माका सनातन भाव और यथार्थ आनंद छिप जाता है, हम केवल क्षणस्थायी भाव और वस्तुसे मत्त हुए फिरते हैं, उनके नाशके दुःखसे तो शोकके सागरमें डूब जाते हैं। इस तरह अभिभूत न होकर जो विषयके सभी स्पर्शोंको सह सकता है, यानी जो द्वन्द्वोंकी प्राप्ति होनेपर भी सुख दुःख, सर्दी गर्मी, प्रिय अप्रिय, मंगल अमंगल, सिद्धि असिद्धि, सबमें हर्ष शोकका अनुभव न करके उन्हें समान भावसे, प्रफुल्लित चित्तसे, हंसते हुए ग्रहण कर सकता है वह पुरुष रागद्वेषसे मुक्त हो जाता है, वह अज्ञानका बंधन काटकर सनातन भाव और आनंदको पानेमें समर्थ होता है — **अमृतत्वाय कल्पते।**

समताका गुण

यह समता गीताकी पहली शिक्षा है। समता ही गीतामें कही गयी साधनाका आधार है। यूनानके स्टोइक संप्रदायने भारतसे समताकी इसी शिक्षाको प्राप्त कर, यूरोपमें समतावादका प्रचार किया था। यूनानी दार्शनिक एपिक्यूरसने श्रीकृष्णद्वारा फैलायी शिक्षाका एक और छोर पकड़कर शांत भोगकी शिक्षा (एपिक्यूरियेनिजम) या भोगवादका प्रचार किया था। समतावाद और भोगवाद ये दो मत प्राचीन यूरोपके श्रेष्ठ नैतिक बल माने जाते थे और आधुनिक यूरोपमें भी नया रूप धारण करके उन्होंने पवित्रतावाद (प्यूरीटेनिज्म) और मूर्तिपूजावाद (पैगेनिज्म्)के चिरद्वन्द्वको पैदा किया है। लेकिन गीतामें बतायी गयी साधनामें समतावाद और शांत या शुद्ध भोग एक ही बात है। समता कारण है और शुद्ध भोग कार्य। समतासे आसक्ति मर जाती है, रागद्वेष शांत हो जाता है, आसक्तिके नाश और रागद्वेषके शांत होनेसे शुद्धताका जन्म होता है। शुद्ध पुरुषका भोग कामना और आसक्तिरहित होता है

इसलिये शुद्ध होता है। इसी कारण समताका यह गुण है कि समताके साथ आसक्ति और रागद्वेष एक ही आधारपर नहीं रह सकते। समता ही शुद्धिका बीज है।

गीर्वाण वाणी

(अग्निशिखाके नये वर्षके साथ हम यह नया स्तम्भ शुरू कर रहे हैं। संस्कृत सभी भारतीय भाषाओंकी जननी है। हम यहां संस्कृतके माध्यमसे कश्मीरकी मीरा लल्लेश्वरीकी वाणीकी कुछ बानगी आपके सामने रख रहे हैं। कैसी रुची? — सं०)

लल्लाहं निर्गता दूरम्
अन्वेष्टुं शंकरं विभुम्।
भ्रान्त्वा लब्धो मया स्वस्मिन्
देहे देवो गृहे स्थितः॥

मैं लल प्रेमसे उस परमशक्तिको ढूंढ़नेके लिये घरसे निकल पड़ी। उसे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते रात-दिन बीत गये। अंतमें देखा वह पंडित (इष्ट) तो मेरे ही घरमें विद्यमान हैं। बस, तभीसे मेरी अंतर्साधनाका उचित मुहूर्त निकल आया।

कालजालेन साकं चेत् कलना-विलयो भवेत्,
तदा गृही वा वनवासी भव त्वं नात्र बन्धनम्।
जानीहि सर्वगं नाथममलं सर्वतो मुखम्,
तदाज्ञानानुरूपं ते रूपं भावीति निश्चयः॥

कालके जाल (काल-चक्र)के साथ-साथ (रे मनुष्य!) यदि तेरी

कल्पनाएं (इच्छाएं) भी मिट जाएं तो चाहे फिर तू बनवासी बने या गृहस्थ, कोई अंतर नहीं पड़ता। बस, इतना जान ले कि प्रभु सर्वगत और निर्मल है। जैसा उसको समझेगा वैसा ही तुझे प्राप्त होगा।

समागता सरलपथेन विश्वे
निवर्तने राजपथो न विद्यते।
अस्तंगते दिनकरे स्वकरे न देयं
यायां कथं निधनपारमपारतोयम्॥

(इस संसारमें) मैं सीधी राहसे तो आ गयी किंतु (मोह-माया में पड़कर) यहांसे सीधी राहसे लौट न पाई। अभी बीच सेतुसे गुजर ही रही थी कि दिन ढल गया। (साधना रूपी कमाईकी) जेबमें हाथ डाला तो देखा वहां एक कौड़ी भी नहीं। अब भला पार उतरनेके लिये (नाविकको) दूं तो क्या दूं?

स्नातं हसन्तं विविधं विधेयं
कुर्वन्तमेतत्पुर एव सन्तम्
पश्यात्मदेवं निजदेह एव
कृतं प्रदेशान्तरमार्गणेन॥

(रे मनुष्य! यह शिव ही है जो) तेरे भीतर (कभी) हंसता है, कभी छींकता है, कभी अंगड़ाइयां लेता है और कभी खांसता है। वह नित्य (तेरे मनके संकल्प-विकल्प रूपी विचारोंके) तीर्थोंपर स्नान करता है। वर्षभर निर्वसन रहता है। (तेरा शरीर ही उसका वसन है) अर्थात् वह तेरे भीतर (पास) है, उसे (रे मनुष्य!) तू ढूंढ़ ले॥

(भुवन वाणी प्रेस लखनऊसे प्रकाशित 'लल्लद्य' से साभार)

सोसायटी समाचार

घोषणा

उत्तर प्रदेशकी श्रीअरविन्द सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन मथुरामें १७ से २२ अक्तूबरतक होगा। विचार यह है कि यह एक स्वाध्याय-में सत्संग समागम हो। केवल उत्तर प्रदेश ही नहीं, सभी हिन्दी भाषी प्रदेशोंके श्रीअरविन्दके भक्तोंको निमंत्रण है। क्योंकि इसकी सारी कार्यवाही हिन्दीमें होगी।

विशेष जानकारीके लिये श्री वाजपेयी, अमरनाथ विद्या आश्रम, मथुराको लिखें।

सोसायटीकी वार्षिक पत्रिका 'सोसायटी एनुअल' सभी केंद्रों और शाखाओंके नाम पहली जुलाईको भेज दी गयी थी। आशा है आपके यहां पहुंच गयी होगी।

शैक्षिक अन्वेषण और नवविहान

ज्यादा अच्छा कल, संसारमें सच्चा परिवर्तन तभी आ सकता है जब आजके बच्चे उच्चतर आदर्शोंमें रचनात्मक, समृद्ध और प्रेरणा-त्मक वातावरणमें पलेंगे।

शिक्षाकी बालकके विकासमें बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। श्रीअर-विन्द सोसायटी एक नये जगत्के लिये प्रयास कर रही है अतः वह शिक्षाके क्षेत्रमें कुछ काम करना चाहती है। अतः हमने ऐसी सामग्री तैयार करनेकी योजना बनायी है जो बालकके शैक्षिक विकासमें सहा-यक हो।

अधिकाधिक बच्चोंको माताजी और श्रीअरविन्दके साथ सहज स्वा-भाविक संपर्कमें लानेके लिये हर शाखा और केंद्रको छोटे बच्चोंके लिये कुछ कार्य करना चाहिये जो आगे चलकर विद्यालयका रूप धारण कर सके। सोसायटीका यह अन्वेषण कक्ष शिक्षाके इन सभी

प्रदत्तोंमें ताल-मेल बिठाने और उनकी सहायता करनेके सपने देखता है। हमारी इच्छा है कि शिक्षासंबंधी खिलौने, खेल, कैसेट, पुस्तकें और फिल्में तैयार करें। इन चीजोंके तैयार करने और बेचनेकी जिम्मेदारी श्रीअरविन्द बुक डिस्ट्रीब्यूशन एजेंसी (शब्द) के नये कक्ष 'नव विहान'ने अपने ऊपर ली है।

जो लोग इस क्षेत्रमें कार्य कर रहे हैं या करना चाहते हैं वे श्री विजय पोद्दार, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी ६०५००२ से पत्र-व्यवहार करें।

शैक्षिक संस्थाओंकी निदेशिका

माताजी और श्रीअरविन्दके आदर्शोंसे प्रेरित, सोसायटीके केंद्रों या शाखाओंसे संबद्ध सभी शिक्षण संस्थाओंकी एक निदेशिका तैयार की जा रही है। ऐसी संस्थाएं शब्द श्रीअरविंदाश्रम, पांडिचेरीके नाम निम्नलिखित सूचनाएं भेजनेकी कृपा करें: १—संस्थाका नाम, २—पता, ३—विद्यार्थियोंकी संख्या, ४—शिक्षाका स्तर, ५—संपर्क सूत्र।

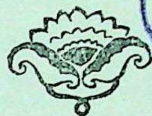
हाथ बना कागज

नव विहानने हाथ बने कागजकी स्टेशनरी बनानेका काम हाथमें लिया है। उसमें सहायता करनेके इच्छुक व्यक्ति और केंद्र नव विहान, द्वारा शब्द, श्रीअरविन्दाश्रम पांडिचेरीसे पत्र-व्यवहार करें।

जिसे भगवान्‌के साथ ऐक्य प्राप्त है उसके लिये हर जगह भगवान्‌का पूर्ण सुख और आनंद है। वह हर जगह और हर परिस्थितिमें हमारे साथ रहता है।

—श्रीमां





तेजीसे पग आगे बढ़ा, क्योंकि लक्ष्य बहुत दूर है; असमय विश्राम ग कर, क्योंकि तेरा मालिक तेरी यात्राके अंतिम छोरपर तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

— श्रीअरविंद

जीवन के सब फीके भोग जब तक मानुष नहीं निरोग



स्वास्थ्य मानव की पहली आवश्यकता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए योजनाएं बनाते समय स्वास्थ्य सेवाओं का विशेष ध्यान रखा गया है।

- सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य की योजना तैयार की गई है।
- देश में पहले ही लगभग डेढ़ लाख स्वास्थ्य रक्षक नियुक्त किए जा चुके हैं और 55 हजार से अधिक उपकेन्द्र और प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोले गए हैं।
- बालक और प्रसूति महिलायें रोग का शिकार जल्दी होती हैं इसके लिए समन्वित बाल विकास सेवा शुरू की गई है। इसके लाभदायक परिणाम सामने आ रहे हैं।
- तंग और गंदी बस्तियों के घुटन और सीलन भरे वातावरण में अनेक बीमारियां पैदा हो जाती हैं। 1990 तक ऐसी बस्तियों में रहने वाले 3 करोड़ लोगों को 20 सूत्री कार्यक्रम के अनुसार स्वच्छ वातावरण उपलब्ध कराया जाएगा।

स्वस्थ नागरिकों से ही सुदृढ़ समाज का निर्माण होता है

विस्तृत जानकारी के लिये कूपन का प्रयोग करें:–

उप-निदेशक,
मास मेलिंग यूनिट,
विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय,
'बी' ब्लाक, कस्तूरबा गांधी मार्ग,
नई दिल्ली-110001.

नये 20 सूत्री कार्यक्रम के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए कृपया मुझे हिन्दी/अंग्रेजी की पुस्तिका भेजें।

नाम ....
पता ....
.... पिन ....

नया 20 सूत्री कार्यक्रम

davp 83/57

Love in her was wider than the universe,
The whole world could take refuge in her single heart.

Sri Aurobindo